गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष: 42, अंक: 1-2, जनवरी - अप्रैल, 2019 (संयुक्तांक)

अमेरिका एवं कनाडा हिंदी लेखन विशेषांक

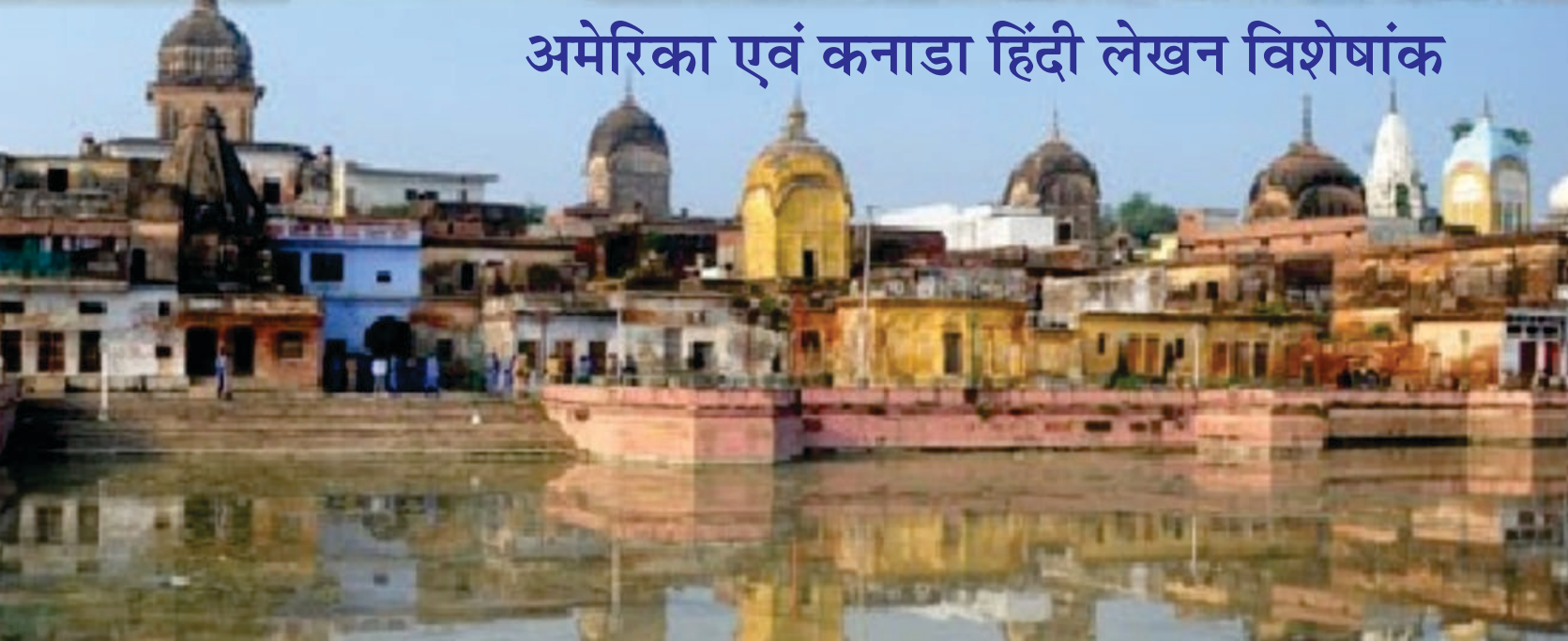

कलियां चटकी, फूल खिल उठे मधुवन लहराया
दिया सँदेस हवा ने आकर
वहाँ हरे पत्तों के अंदर
कोई तड़प रही है सस्वर
कुसुम-बाण लेकर वसंत पल में दौड़ा आया

महाकवि गुलाब खंडेलवाल

जन्म
21.02.1924

देहावसान
02.07.2017

गगनांचल

जनवरी-अप्रैल, 2019

प्रकाशक

अखिलेश मिश्र

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली

संपादक

डॉ. हरीश नवल

सहायक संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

ISSN : 0971-1430

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

ई-मेल: **spdawards.iccr@gov.in**

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों और फोटोग्राफ्स की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

शुल्क दर

वार्षिक	:		₹ 500
		यू.एस.	$ 100
त्रैवार्षिक	:		₹ 1200
		यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : इमेज इंडिया, नई दिल्ली-110002
9953906256

अनुक्रम

विमर्श

अमरीका में हिंदी: एक सिंहावलोकन 7
सुषम बेदी

अमेरिका की तस्वीर वाया प्रवासी हिंदी कहानी 15
विजय शर्मा

सोया हुआ हाथ नहीं 22
शालिग्राम शुक्ल

छठी इंद्रिय हास्य की इंद्रिय 24
मूल: मुश्ताक अहमद यूसुफी
अनुवाद: डॉ. आफताब अहमद

रंगभेद अमरीका में आज भी... 27
कमल कुमार

उषा प्रियंवदा की दो नायिकाएँ 29
अर्पण कुमार

भारतीय सांस्कृतिक ग्रंथों के काव्यानुवाद 34
डॉ. मृदुल कीर्ति

अमेरिका में हिंदी भाषा का स्थान 38
डॉ. विजय गंभीर

व्यक्तित्व

भाषिक दृष्टि से गुलाब खंडेलवाल हिंदी के पहले ग़ज़लकार हैं 43
जहीर कुरेशी

अमेरिकन भाषाविद् हिंदी प्राध्यापक हेर्मान वान ओल्फ़न 46
डॉ. भक्तराम शर्मा

समालाप

साक्षात् वेदप्रकाश वटुक 49
सुधा ओम ढींगरा

समाजशास्त्री दीक्षा नागर से साक्षात्कार 53
आरती स्मित

आलोचक नामवर सिंह से महावीर अग्रवाल की बातचीत 59
महावीर अग्रवाल

संस्मरण

सुषम बेदी से एक छोटी सी मुलाकात 63
मीनाक्षी जोशी

अजनबी शहर: अजनबी रास्ते 65
रंजन कुमार सिंह

पर्यटन

नियाग्रा प्रपात 71
जिया लाल आर्य

कथाक्रम

इंग्लिश चैनल 74
सत्यपाल आनंद

कॉस्मिक की कस्टडी 79
सुधा ओम ढींगरा

सोच नई सुबह की 83
पुष्पा सक्सेना

कौन कितना निकट 88
रेणु राजवंशी

गिद्ध सारे मर गये हैं। 91
डॉ. कविता वाचक्नवी

रौनी, राज और राधा 95
लावण्या दीपक शाह

उसका नाम 102
आस्था नवल

गणेश के पापा 109
विशाखा ठाकर

थोड़ी देर और... 117
डॉ. शैलजा सक्सेना

उपन्यास अंश

कौन देश को वासी: वेणु की डायरी 125
सूर्यबाला

अरी ओ कनिका 133
मूल: सुदर्शन प्रियदर्शनी
प्रस्तुति: विकेश निझावन

सर्कस के क्लाउन की डायरी 137
विजय विक्रांत

लघुकथा कोष

दीपक मशाल की दो लघुकथाएं 138
दीपक मशाल

अनुराग शर्मा की दो लघुकथाएँ 139
अनुराग शर्मा

कृष्णा वर्मा की चार लघुकथाएं 140
कृष्णा वर्मा

जयंती/स्मृति

स्वामी विवेकानंद की प्रथम गूंज अमेरिका से 143
नंद कुमार झा

अभिनेत्री सुचित्रा सेन 146
पंकज शुक्ला

काव्यनिधि

महाकवि गुलाब खंडेलवाल की दो कविताएं 150
महाकवि गुलाब खंडेलवाल

महाकवि हरिशंकर 'आदेश' की दो कविताएं 151
महकवि हरिशंकर

सुखमय जीवन 152
आशा बर्मन

धनंजय कुमार की चार कविताएं 153
धनंजय कुमार

मौन 154
नरेंद्र टंडन

रेखा मैत्र की तीन कविताएं 155
रेखा मैत्र

बस प्रेम ही 156
सुनीता जैन

अशोक सिंह की दो गज़लें 157
अशोक सिंह
अतीतजीवी से 158
गुलशन मधुर
शशि पाधा की दो कविताएं 159
शशि पाधा
सत्य का गणित 160
अशोक व्यास
डॉ. अनिता कपूर की चार कविताएँ 161
डॉ. अनिता कपूर
तीस जनवरी/बापू की याद 163
डॉ. मोक्षराज
आए थे हम 164
मधु माहेश्वरी
रोमेश जोशी के छह छंद 165
रोमेश जोशी
सौंदर्य आधार 166
हरी बाबू बिंदल
रजनी भार्गव की दो कविताएँ 167
रजनी भार्गव
अनूप भार्गव की चार कविताएं 168
अनूप भार्गव
पारले जी 169
अभिनव शुक्ल
मैं कौन हूँ 170
सुनीता चांदला
अंग्रेजी से अनुवाद: 'कमलिका' चांदला बदलानी
अमेरिका हड्डियों में जम जाता है 171
अंजना संधीर
सर्दी की सुबह और वसंत 172
सुमन कुमार घई
राकेश खंडेलवाल की दो कविताएं 173
राकेश खंडेलवाल
अनिल पुरोहित की पांच कविताएँ 174
अनिल पुरोहित
कैसा मानवाधिकार 176
श्याम त्रिपाठी
सरन घई की दो कविताएं 177
सरन घई

व्यंग्य

अमेरिका में रिटायरमेंट 178
उमेश अग्निहोत्री

समीक्षाग्राम

अशोक सिंह कृत 'फिर वसंत आये...' 180
प्रमिला सिंह
अनिलप्रभा कुमार कृत 'कतार से कटा घर' 182
सुधांशु गुप्त

विवरण

मंचन: नाटक 'उधार का सुख' 184
शैलजा सक्सेना
अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद वाराणसी द्वारा प्रवासी भारतीयों का सम्मान 186

आयोजन

अमेरिका की राजधानी में हिंदी कवियों की धूम 187
'दरीचों से झांकती धूप' लोकार्पित 188
वीणा विज 'उदित'

अमेरिका-भारत सूचना सार

कैलिफॉर्निया में भारतीय मेयर निर्वाचित 189
अमेजॉन पॉली अब हिंदी टेक्स्ट भी सुनाएगी 189
भारतवंशी को मिला राष्ट्रपति मेडल 189
गूगल होम हिंदी में भी 189

अंततोगत्वा

उनकी नजरों में हम 190
हरीश नवल

अन्य विशिष्ट

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद गतिविधियां 192
''लोकतंत्र की गोष्ठी'' व्याख्यान से संबंधित झलकियां 194

आवरण परिकल्पना: ममता गोयनका

प्रकाशकीय

अखिलेश मिश्र
महानिदेशक

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारंविदे शिवेतर क्षतये।

किसी व्यक्ति के लिए साहित्यसृजन का अपना अभीष्ट कुछ भी हो सकता है—यश, अथार्जन, समाज का सम्यक मार्गदर्शन, समष्टि का मंगल या बिना किसी विशेष प्रयोजन के स्वांत: सुखाय भी शब्द स्फुटित हो सकते हैं परंतु किसी सरकारी संस्था के द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका की मुख्य भूमिका क्या होनी चाहिए? क्या वह उस संस्था की मुखपत्रिका बन उसके क्रिया-कलापों और जनसंदेशों को मुखरित करे, या एक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका के रूप में भारतीय एवं विदेशी लेखकों के लिए एक मंच की तटस्थ भूमिका निभाये या अहिंदी भाषी भारतीय एवं विदेशी साहित्य के हिंदी अनुवाद को प्रस्तुत कर बृहत्तर सांस्कृतिक एवं वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम बने? इस अनुत्तरित प्रश्न के संकोच के साथ अमेरिका और कनाडा में हिंदी लेखन पर केंद्रित गगनांचल के इस जनवरी-अप्रैल 2019 संयुक्तांक को आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सुधी और चैतन्य पाठक की स्थिति ''आपै गुरू और आपै चेला'' की होती है। 'गगनांचल' की संरचना और कथ्यविषय के बारे में आपके विचारों और सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के नव-नियुक्त महानिदेशक के रूप में साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में परिषद की भूमिका के विषय में भी मैं आपके दिग्दर्शन के लिए आभारी रहूंगा।

'आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:।'

समस्त दिशाओं से मंगलकामनायें आप तक पहुँचे—इसी प्रार्थना के साथ

सादर

अखिलेश मिश्र

संपादकीय

हरीश नवल
संपादक

अक्टूबर 2018 से 'गगनांचल' के 'अमरीका में हिंदी और हिंदी लेखन' संदर्भित विशेषांक निकालने की योजना मैं और सहायक संपादक डॉ. आशीष कंधवे बना रहे थे। मुझे अमरीका कुछ दिनों के लिए जाना था और विचार था कि यदि 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद' के अध्यक्ष और महानिदेशक सहमति प्रदान करें, अमरीका के हिंदी साहित्यकारों से रचनाएं लेकर आऊंगा। हिंदी शिक्षण से जुड़े कुछ परिचित प्रख्यात प्रोफेसरों से 'हिंदी' सम्बंधी कुछ आलेख की विषय देकर लिखवाने की योजना भी मन में भी.....

...मैं अमरीका पहुँचा, वहीं मेरी 'मेल' में अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे द्वारा प्रेषित 'स्वीकृति' प्राप्त हुई और मैं 'हिंदी मिशन' में जुट गया। सबसे पहले श्री गुलशन 'मधुर' से संपर्क किया और फिर श्री धनंजय कुमार से, उनसे रचनाएं मिलीं। गुलशन जी से पचास वर्ष से अधिक पुरानी मैत्री है, उनके साथ तत्संबंधी विमर्श हुआ... कुछ बात बनती नजर आई... तभी नवंबर दस को न्यूजर्सी से अमरीका में हिंदी के राजदूत श्री अनूप भार्गव का संदेश आया कि उनके यहाँ 16 नवंबर को एक साहित्यिक गोष्ठी है और शनिवार 17 नवंबर को एडीसन शहर में 'विश्व हिंदी न्यास' का 'वृहत वार्षिक समारोह' है, जहाँ मुझे सम्मानित किया जायेगा... खबर अच्छी थी, मैं अनूप भाई के घर से 400 किलोमीटर दूर अपनी हिंदी प्राध्यापिका व लेखिका पुत्री आस्था के घर में था। दामाद ललित मेरे न्यूजर्सी पहुंचने की बस यात्रा के प्रबंध तुरंत ऑनलाइन कर दिये।

शुक्रवार 16 नवंबर को ललित और आस्था मुझे वाशिंगटन से न्यूयॉर्क जाने वाली निर्धारित बस में बिठा गए। सुबह 6 बजे लगभग अंधेरे में चली बस, भयंकर शीत लहरों को चीरते बढ़ रही थी, एक रात पूर्व खूब बर्फ पड़ी थी, खुद को पूरी तरह लपेटे-ओढ़े मैं गठरीवत् बस की अंतिम सीटों पर बैठा बाहर के दृश्य जो शनैः-शनैः भगवान भास्कर के उदित होने से दिखाई देने लगे थे, देखते, उंघते निर्दिष्ट स्थल पर पहुंच गया... मुझे लिवाने अमरीका के प्रसिद्ध हास्य और व्यंग्य कवि अभिनव शुक्ल आए थे... अनूप जी के घर की राह में, बल्कि कहें सरे राह मैंने अभिनव से पक्का कर लिया कि उन्हें 'गगनांचल' हेतु रचना देनी है। यह मेरी प्रथम बुकिंग थी।

अनूप भार्गव और रजनी भार्गव वास्तव में 'अनूप युगल' है। भारत, संस्कृति और साहित्य के लिए सर्वदा प्रस्तुत। भारत से अमरीका जाने वाले बहुत कम ऐसे हिंदी साहित्यकार होंगे जिन्हें अनूप भार्गव घर न बुला सके हों और उनके सम्मान में गोष्ठी न आयोजित की हो... उनसे भी कविताएं मांग लीं...

16 नवंबर की संध्या एक यादगार संध्या बनी। कविता, कथा, गीत, गायन, व्यंग्य और अभिनय से गुम्फित एक ऐसी गोष्ठी हुई जिसमें कई जाने-माने व्यक्ति, विशेषतः लेखक सम्मिलित हुए। सुषम बेदी, ग्रेबियाला, राजन राणा, अशोक सिंह, महेश दुबे, अभिनव शुक्ल, अशोक व्यास, सुमन अग्रवाल, शरद अग्रवाल, राकेश रंजन, टी.वी. एशिया के विकास नांगिया और कनाडा से स्वयं कर ड्राईव कार आए हुए आनंद पत्रकार जो प्रसिद्ध हिंदी कथाकार यशपाल जी के सुपुत्र हैं, तथा कुछ अन्य गणमान्य नागरिक...

सबसे 'गगनांचल' संदर्भित चर्चा हुई, उनमें से कुछ मॉरीशस में संपन्न हुए 'विश्व हिंदी सम्मेलन' में भी मिले थे, सभी ने 'गगनांचल' का अभिनंदन किया और सुषम बेदी ने वादा किया कि वे इस अंक विशेष के लिए लेख तैयार करेंगी। अशोक

व्यास, अशोक सिंह और अभिनव शुक्ल ने भी अपनी रचनाएं प्रेषित करने की हामी भरी। आनंद भाई ने कहा कि वे यशपाल जी पर कुछ लिखेंगे।

17 नवंबर को एडीसन में एक विशाल कार्यक्रम का आयोजन 'विश्व हिंदी न्यास' की ओर से चैप्टर अध्यक्ष शरद अग्रवाल ने किया था। विशाल इन मायनों में कि वह हिंदी समारोह प्रातः दस बजे से रात्रि दस बजे तक कई खंडों में विभाजित था। शरद भाई मुझे उसका संदेश यद्यपि भेज चुके था, यहाँ अनूप जी के घर उन्होंने पुनः पुनः आग्रह किया। हम लोग कार्यक्रम में एडीसन यानि 'न्यूजर्सी में भारत' पहुँचे, भव्य आयोजन के प्रतिभागी श्रोता टिकट लेकर भारी संख्या में उपस्थित थे, 'कवि सम्मेलन' के लिए वहाँ सदा भारी मांग रहती है, मुझे 'कवि सम्मेलन' की अध्यक्षता का दायित्व सौंपा गया, मैं जान रहा था कि यह 'हरीश नवल' को नहीं 'संपादक गगनांचल' को मान दिया जा रहा था।

उक्त समारोह में कवि सम्मेलन के अतिरिक्त हिंदी लोक-गीत, भारतीय लोक नृत्य, शास्त्रीय संगीत और हिंदी नाटक भी प्रस्तुत किए गए। भोपाल के प्रसिद्ध नाटककार सतीश मेहता के निर्देशन में नाटक संपन्न हुआ था। इस समारोह में भी कई लेखकों से मुलाकात हुई, जिन्होंने हमारी पत्रिका के लिए रचनाएं दीं।

एशबर्न में हुई कुछ गोष्ठियों में बुलावा आया। एक गोष्ठी बेटी आस्था के घर में भी हुई। इन गोष्ठियों में गुलशन मधुर, नरेंद्र टंडन, मोक्षराज, शशि पाधा, प्रीति गोविंदराज, सुकेश, डॉ. वरदान जैसे वरिष्ठ साहित्यकार और कुछ युवास्वर भी थे, हर्ष का विषय था कि इनमें से प्रायः सभी ने अपनी रचनाएं प्रदान कीं।

नौ दिसंबर को दो साहित्यिक समारोहों में जाना हुआ। शीत लहर प्रबल और प्रचंड थी किन्तु समारोह उष्णता से भरपूर थे। अनाडेल में चैरिटी मुशायरा था जहाँ प्रख्यात साहित्यिक अब्दुला जी से दो वर्ष बाद भेंट हुई, सुकेश वहाँ भी थीं, मेरा 'रचना-निवेदन' वहाँ मंच पर मेरी कविता-प्रस्तुति के दौरान हुआ और सुफल प्राप्त भी हुआ।

चेंटली में धनंजय कुमार जी के 'इंडिया इंटरनेशनल स्कूल' में संपन्न हुई बैठक में तीन साहित्यकारों से भेंट हुई। धनंजय जी साहित्य, शिक्षण और योग के जाने माने विद्वान हैं, उनसे भी रचनाएं उपलब्ध हुईं।

अब विश्वास जागृत हो रहा था कि मिशन सफल हो सकेगा। जब मैं तेरह दिसंबर 2018 को वापिस दिल्ली लौटा, मेरे खजाने में बहुत से साहित्यिक नग थे। तत्कालीन महानिदेशक भा.सां.सं. परिषद श्रीमती रीवादास को रिपोर्ट दी, वे अनेक प्रवासी अमरीकी लेखकों से परिचित थी, वे न्यूयॉर्क में 'भारतीय कौंसिल' में कौंसलाध्यक्ष रही थीं। उपमहानिदेशक सुश्री पदमजा जी प्रसन्न थीं, पत्रिका के संदर्भ में उनसे अक्सर मिलना होता था, उनका परामर्श भी मुझे समृद्ध करता रहा।

तभी कुछ दिन बाद ज्ञात हुआ कि श्रीमती रीवादास परिषद से किसी देश में राजदूत के रूप में जाने वाली हैं... फिर ध्वनि आई पदमजा जी भी राजदूत के रूप में चली जायेंगी... दोनों बड़े मिशन पर हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूं कि उनका प्रचुर सहयोग आत्मीय भाव से मिला।

नव महानिदेशक श्री अखिलेश मिश्र जी से परिचय हुआ, एक विद्वान और सहज मानवता विभूषित मिश्र जी से जब मैं और आशीष कंधवे मिले, 'गगनांचल' संबंधी महत्वपूर्ण विमर्श हुआ, उनके परामर्श मूल्यवान रहे... और फिर 'गगनांचल' का अंक, संयुक्तांक के रूप में निकालने का विचार बना। अब सामग्री दोगुना होगी यानि दो सौ पृष्ठों की होगी। माननीय अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे जो सदा 'बेहतरी' के लिए कृतसंकल्प रहते हैं, ने जब स्वीकृति दी, तब फिर अमेरिका के साथ कनाडा भी जुड़ गया। संयोग कि श्री अखिलेश मिश्र टोरंटो (कनाडा) कौंसलावास में रहे थे और वहाँ के लेखक समुदाय से परिचित हैं। कनाडा की प्रख्यात हिंदी लेखिका और मीडियाकर्मी डॉ. शैलजा सक्सेना का अनूप भार्गवीय सहयोग मिला और बिना कनाडा गए उनके कारण वहाँ के जाने माने साहित्यिकों की रचनाएं उपलब्ध हुई और कारवां गंतव्य तक पहुंचने लगा।

पत्रिका आपके शुभ हाथों में है, आपकी समीक्षा ही हमारा मार्ग प्रशस्त करती रही है। आपके पत्र, पत्रों में दिए सुझाव और समालोचना से हमें कमियों को सुधारने का बल मिलता है, जो 'गगनांचल' का सौभाग्य है।

जिन रचनाकारों का लेखकीय सहयोग मिला उनके प्रति विनम्र आभार, उन्हीं से पत्रिका का रूप निखर रहा है। डॉ. सुधा ओम ढींगरा का साहित्यिक विभूति श्री वेद प्रकाश बटुक से लिया गया साक्षात्कार, महाकवि गुलाब खंडेलवाल जी के ग़ज़लकर्म पर 'गगनांचल' के लिए विशेष रूप से लिखने के लिए जनाब जहीर कुरेशी का धन्यवाद, हाल ही में दिवंगत हिंदी के आलोचना शिखर डॉ. नामवर सिंह के साक्षात्कार के लिए महावीर अग्रवाल का विशेष आभार। अमेरिका की प्रख्यात भाषाविद जोड़ी (प्रो. सुरेंद्र गंभीर और डॉ. विजय गंभीर) का आभार जिन्होंने हिंदी भाषा पर उत्कृष्ट शोध-लेख प्रेषित किया। इस अंक में अमेरिका समायोजन के लिए श्री अनूप भार्गव और कनाडा समायोजन के लिए डॉ. शैलजा सक्सेना के प्रति 'गगनांचल टीम' कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

आशा है भा.सां.सं. परिषद के यशस्वी अध्यक्ष श्री विनय सहस्त्रबुद्धे और मनस्वी महानिदेशक श्री अखिलेश मिश्र के वरद्हस्त 'गगनांचल' का यशोवर्द्धन करते रहेंगे।

सादर अभिनंदन।

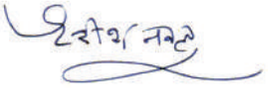

अमरीका में हिंदी: एक सिंहावलोकन

सुषम बेदी

इधर हिंदी का जो नया परिदृश्य बना है, वह है अमरीकी सरकार द्वारा स्टारटॉक कार्यक्रम की शुरुआत जिसके तहत गरमी की छुट्टियों में स्कूलों के लिये हिंदी शिक्षा के कार्यक्रम किये जाते हैं और ये देश के अलग-अलग हिस्सों में किये जाते हैं ताकि उन क्षेत्रों के स्कूलों के छात्र इनमें हिस्सा ले कर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति से वाकिफ़ हो सकें। यह कार्यक्रम काफी लोकप्रिय हो रहे हैं और खासतौर से भारतीय इनमें अपने बच्चों को भेजने के इच्छुक रहते हैं। स्टारटॉक के तहत हिंदी पढ़ाने के लिये अध्यापकों को भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

सम्पर्क: 404, West, 116 Street No. 33 Newyork 10027 U.S.A.

भारत के साथ अमरीका के सांस्कृतिक, राजनैतिक और व्यापारिक संबंध पिछले दस सालों में अचानक कई गुना और कई स्तरों पर बढ़ गये हैं सो भारतीय भाषाओं में रुचि भी उसी हिसाब से कहीं ज्यादा बढ़ रही है, लेकिन जिन वजहों से बुश ने भाषाएं सीखने की घोषणा की थी, उसकी मुख्य वजह एक ही थी और वह थी 'अमरीकी सुरक्षा नीति'। आमतौर पर अपने अमरीकी होने का गर्व रखने वाला औसत अमरीकी नागरिक यह सोचता है कि दुनिया का अंतिम और उच्चतम पड़ाव अमरीका ही है जहां कि वह पहले से पहुंचा हुआ है सो न तो उसे कहीं जाने की जरूरत है न ही किसी दूसरी भाषा या संस्कृति को सीखने की। बहुत समय तक इस देश में यही नीति अपनायी गयी कि यह देश एक मेल्टिंग पॉट है जहां आकर सारी संस्कृतियों के लोग एक ही मुख्यधारा में घुल जाते हैं। यही इस देशवालों का काम्य रहा। इसी से यहां एक ही भाषा, एक सा पहनावा, एक सा खानपान बना रहा। अमरीकी संस्कृति का मूल स्रोत यूरोपीय संस्कृति और रहन-सहन है। चूंकि यहां पहले आप्रवासी इंग्लैंड से आये थे और उसके बाद भी देर तक यूरोप के विभिन्न हिस्सों से वे आते रहे अंग्रेजी संस्कृति का ही प्राधान्य रहा जिसमें फ्रेंच, इतालवी, जर्मन और पूर्वी यूरोपीय तत्व घुलते गये। हिटलर के अनाचारों से बचने के लिये यूरोप से यहूदियों की भी बाढ़ आयी और वे भी अमरीकीपन में काफी हद तक घुल गये।

लेकिन यूरोपीय संस्कृति से बहुत अलग नस्लों का भी आना इस देश में हुआ जो उस तरह से कभी घुलमिल नहीं पाये जैसे कि गोरी जातियां घुल पायीं।

अफ्रीकी नस्लों के लोग तो बहुत पहले से ही दासों के रूप में यहां लाये गये जिन्हें यहीं की संस्कृति में ढाला गया पर अपने शरीर के रंग की वजह से वे अपनी अलग हस्ती बनाये रहे। इसी तरह से चीन, जापान, वियतनाम, कोरिया और फिलीपीन आदि बहुत से एशियाई देशों से आनेवाले आप्रवासी भी अपनी भाषा, रंग और नस्ल की वजह से इस मेल्टिंग पॉट से अलग-थलग पड़ गये।

बाहरी भाषाओं में अमरीका की रुचि दूसरे महायुद्ध के बाद से

ही शुरू हो गयी थी। महायुद्ध के समय ही अमरीका को यह अहसास हुआ कि एक दुनिया बाहर भी है जिसे जानना उनकी अपनी सुरक्षा के लिये जरूरी है। 1947 में यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया में दक्षिण एशियाई विभाग खोला गया जिसके अंतर्गत हिंदी भी शामिल थी। भारत में जब हम हिंदी भाषा का इतिहास पढ़ते हैं विदेशी विद्वानों के काम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह भी नहीं भूल सकते कि शुरू में ईसाई मिशनरियों ने हिंदी को अपनाने और उसमें अनुवाद आदि का काम किया था। यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया के दक्षिण एशियाई विभाग की स्थापना करने वाले नारमन ब्राउन भी मिशनरी पृष्ठभूमि के थे।

छठे दशक में हिंदी का अध्यापन इस देश की लगभग नौ प्रमुख यूनिवर्सिटियों में शुरू हो चुका था जिनमें शिकागो, मेडिसिन, पेन, कोलंबिया, बर्कले इत्यादि शामिल हैं।

पढ़नेवालों की संख्या चाहे बहुत कम थी पर यूनिवर्सिटियों में तथा डिफेंस इंस्टीट्यूट जैसी जगह पर हिंदी की शुरुआत हो गयी थी। आठवें दशक में अमरीका की प्रमुख दस यूनिवर्सिटियों में दक्षिण एशियाई भाषाओं और अन्य विषयों के अध्ययन के विभाग थे। नवें दशक में अचानक यह संख्या और बढ़ी। इसकी कुछ बहुत दिलचस्प वजहें थीं। एक तो यह कि छठे-सातवें दशक में आने वाले भारतीयों के बच्चे अब कॉलेजों में पढ़ने लगे थे। ज्यादातर अमरीकी कॉलेजों में विदेशी भाषा एक अनिवार्य विषय बन गया है और भारतीय मूल के छात्रों की मांग थी कि वे विदेशी भाषा के रूप में (जो उनके कोर्स में अनिवार्य विषय है) हिंदी को लें। नवें दशक में बहुत से कॉलेजों और यूनिवर्सिटी में हिंदी अध्यापन के कार्य शुरू हुए। दूसरे अमेरिकियों के साथ भारतीय मूल के विद्यार्थियों से यह कक्षायें खासतौर पर भर रही थीं।

कई कॉलेज - यूनिवर्सिटियों में, विद्यार्थियों की मांग की वजह से ही हिंदी की पढ़ाई शुरू की गयी। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में नवें दशक में हिंदी की स्थापना के लिये मैं खुद पर जिम्मेदार रही हूं। इस समय 100 से ऊपर कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, भाषासंस्थानों में हिंदी पढ़ाई जा रही है।

पर सच्चाई यह है कि भाषा सीखने की शुरुआत जब कॉलेज में आकर करते हैं तो बहुत देर तक सीखने का समय नहीं रहता। भाषा की विषय के रूप में अनिवार्यता एक या दो साल की होती है जिसमें विद्यार्थी बहुत प्राथमिक स्तर पर ही रहते है। उनका शब्दज्ञान भी बहुत सीमित ही रहता है। सिर्फ इक्के दुक्के छात्र ही दो साल में ठीक से भाषा सीखते हैं। खासतौर से वे जो इस दिशा में विशेषज्ञता हासिल करना चाहते हों। इसलिये साहित्य पढ़ने वाले छात्र गिने-चुने ही होते हैं। दूसरे विषयों को हिंदी माध्यम से पढ़ाई तो दूर की बात रही, हिंदी पर जो भी शोध का काम होता है अंग्रेजी में होता है। जब तक हिंदी स्कूलों में शुरू नहीं हो जाती बहुत कम विद्यार्थी ही भाषा का उच्च स्तर का ज्ञान पा सकते हैं। हाल में यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास, आस्टिन में पहली बार चार साल का हिंदी का कार्यक्रम शुरू किया गया। इससे कुछ स्नातक निकले हैं जिन्होंने साहित्य का पठन भी किया लेकिन जब तक ऐसे कार्यक्रम दूसरे विश्वविद्यालयों में भी शुरू नहीं होते, यह छोटे स्तर पर ही बना रहेगा।

9/11 के हादसे ने निश्चय ही दक्षिण एशियाई और मध्यपूर्व की भाषाओं की ओर सबका ध्यान खींचा क्योंकि अचानक अमेरिकियों को लगा कि भाषा न जानने की वजह से वे इस सारे जाल से बाहर रह गये। हादसे के बाद प्राप्त रिकॉर्डिंग जब सुनी गयीं तो उनकी भाषाएं थी उर्दू, अरबी, पश्तो इत्यादि। तभी यह महसूस किया गया कि दूसरी संस्कृतियों से अपरिचय अमरीका के लिये महंगा पड़ा है और राजनीतिज्ञों का ध्यान तब भाषा अध्यापन की ओर गया।

इधर हिंदी का जो नया परिदृश्य बना है वह है अमरीकी सरकार द्वारा स्टारटॉक कार्यक्रम की शुरुआत जिसके तहत गरमी की छुट्टियों में स्कूलों के लिये हिंदी शिक्षा के कार्यक्रम किये जाते है और ये देश के अलग-अलग हिस्सों में किये जाते हैं ताकि उन क्षेत्रों के स्कूलों के छात्र इनमें हिस्सा ले कर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति से वाकिफ़ हो सकें। यह कार्यक्रम काफी लोकप्रिय हो रहे हैं और खासतौर से भारतीय इनमें अपने बच्चों को भेजने के इच्छुक रहते हैं। स्टाकटॉक के तहत हिंदी पढ़ाने के लिये अध्यापकों को भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

अब हिंदी का अध्यापन न केवल बहुत से कॉलेजों में शुरू हो गया है बल्कि कई संडे स्कूल भी खुल गये हैं जहां हिंदी जाननेवाली भारतीय महिलाएं ही मूलत: पढ़ाती हैं। आजकल इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि इस तरह से हिंदी सीखे हुए छात्रों को परीक्षा के द्वारा भी किसी तरह की मान्यता दी जाये। एकाध राज्य के स्कूलों में ऐसा हुआ भी है पर अभी इस दिशा में काफी कोशिशों की जरूरत है क्योंकि अभी इस अध्यापन का

कोई नियमित पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं है, न शिक्षक ही शिक्षण कला में प्रशिक्षित हैं। पहले पाठ्यक्रम को एक सही आकार देने की जरूरत है। अनगढ़ से अध्यापन में विद्यार्थी कुछ सीख जाते हैं कुछ नहीं। कितना सीखे हैं, कितना नहीं, इसकी कोई विधिवत परीक्षण या मूल्यांकन की भी पद्धति अभी पूरी तरह से विकसित नहीं है। पर इस दिशा में काम जरूर हो रहा है।

यूनिवर्सिटियों के पाठ्यक्रम इन संडे स्कूलों पर लागू हो नहीं सकते क्योंकि यूनिवर्सिटी के छात्र वयस्क हैं और संडे स्कूलों में स्कूली उम्र के बच्चे या किशोर। अमरीकी स्कूलों में हिंदी नियमित स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल है ही नहीं।

शिक्षण सामग्री

अमरीका से कहीं पहले ब्रिटेन में हिंदी पढ़ाने की पुस्तकें तैयार हो चुकी थीं। उन्हीं का इस्तेमाल यहां भी किया जाने लगा लेकिन यह महसूस किया गया कि वे यहां के सीखने वालों के लिये सही नहीं और यहां के हिंदी प्राध्यापकों ने अपनी सामग्री तैयार करनी शुरू की। फैयरबैक्स और मिश्रा की हिंदी शिक्षण की पुस्तक इसी दिशा में उठाये गये शुरुआत के कदम हैं। नार्मन जीद की प्रेमचंद रीडर या वेद वटुक और टेड रिकार्डी की समाज विज्ञान विषयों की पाठ्य पुस्तिका इसी दिशा के प्रथम कदम हैं। आठवें दशक तक काफी पुस्तकें आ चुकी थीं। इनको अमरीकी पाठक की जरूरतों को ध्यान में रखकर लिखा गया था। अमरीकी यूनिवर्सिटी के कैम्पस की सच्चाई और उस हिसाब से भाषा को कांटा छांटा गया था। उन दिनों जो पुस्तकें विशेष रूप से सामने आयीं – वे थीं – – हर्मन वैन आलफन की 'फर्स्ट इयर और सेकंड इयर हिंदी', ऊषा जैन की 'हिंदी ग्रामर', यमुना कचरू और राजेश्वरी पढरीपांडे की 'इंटरमीडिएट हिंदी', ऊषा नील्सन की 'अडवांस हिंदी', शीला वर्मा की 'इंटरमीडिएट हिंदी' तथा पीटर हुक की 'इंटरमीडिएट हिंदी' इत्यादि।

इन सभी किताबों में बोलचाल की सरल हिंदी को अपनाया गया था, साथ ही अमरीकी छात्रों की जरूरतों के अनुरूप अंग्रेजी में अनुवाद और व्याकरण की टिप्पणियां थीं। इनमें से कुछ पाठ्य पुस्तकों के साथ मौखिक ओडियो टेप्स भी उपलब्ध थे जैसे कि ऊषा जैन और वैन आल्फन। ऊषा जैन ने अपनी पाठ्यपुस्तक में व्याकरण को बहुत सरल बनाकर पेश किया है पर इससे व्याकरण की नींव तो अच्छी पड़ती है लेकिन बोलचाल की स्वाभाविकता नहीं आती। व्याकरणिक अभ्यास अच्छे हैं। इनकी इंटरमीडिएट हिंदी में पाठ दिलचस्प हैं। लोककथाओं से लेकर आधुनिक कहानियों को भी शामिल किया है। साथ में शब्दार्थ भी हैं।

हर्मन वैन आल्फन ने अपनी पुस्तक में हिंदी गानों का भी भाषा सीखने के उद्देश्य से खूब इस्तेमाल किया। कई तरह की दिलचस्प तस्वीरों, नारों तथा विज्ञापनों को पुस्तक में शामिल करके इन्होंने आम बोलचाल की हिंदी का भरपूर इस्तेमाल अपनी पाठ्यपुस्तकों में किया। साथ में टेप्स भी है। पुस्तकें दिलचस्प हैं। भाषा सीखने के साथ साथ सांस्कृतिक वातावरण भी देने की कोशिश है।

फ्रैंक साउथवर्थ और विजय तथा सुरेंद्र गंभीर ने एक नया कदम इस दिशा में उठाया और 'नयी दिशायें, नये लोग' शीर्षक से वीडियो टेप्स तैयार किये जिनके साथ पुस्तक भी उपलब्ध करायी। इन टेप्स को भारत की जमीन पर भारतीय अभिनेताओं के साथ मिलकर बनाया गया।

इन वीडियो टेप्स की भाषा को आरंभिक विद्यार्थियों को ध्यान में रख आसान बनाया गया है। वे बोलते भी धीरे हैं ताकि नये सीखनेवाले की समझ में आ जाए।

इनमें दो युवा भाई-बहन हैं सुनीता और अशोक जो भारत यात्रा पर जाते हैं, वहां अपनी मौसी के यहां जाते हैं, दिल्ली की सैर करते हैं, फिर हर नये पाठ के साथ उन्हें नयी-नयी जगह ले जाया जाता है और भाषा के भी तरह-तरह के इस्तेमालों से छात्र अवगत होते हैं। टेप के साथ ट्रांसक्रिप्ट्स भी हैं। लोकप्रिय गाने भी सिखाये गये हैं। चूंकि दोनों भारतीय बच्चे भारत के अनुभव कर रहे हैं इसलिये भारतीय बच्चों को हिंदी सिखाने के लिये इनका अच्छा इस्तेमाल हो सकता है। भाषा और स्थितियों में कभी-कभी बनावट की गंध जरूर आने लगती है। कुछ असहजता भी। चूंकि भाषा सीखने के उद्देश्य से बने वीडियो हैं इसलिये सभी पात्र बहुत साफ-साफ बोलते हैं जो वास्तविक जीवन में नहीं होता पर फिर भी भाषा सीखने के मकसद से वे अच्छे ही हैं।

इनकी अब सीडी भी आ गयी हैं और वेबसाइट भी तैयार हो गयी है।

आठवें दशक के अंत में अमरीकी कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फॉरन लैंग्वेजेस का प्रभाव हिंदी की ओर भी आया जिसके असर में एक ओर भाषा के मौखिक पक्ष पर विशेष जोर दिया

गया और दूसरे पढ़ने और सुनने समझने के लिये भी प्रामाणिक सामग्री तैयार की गयी। यह सामग्री पहले की पाठ्य सामग्री से बहुत अलग थी। पहले की पाठ्य सामग्री तैयार करने के लिये पाठ निर्मित किये जाते थे जिससे उनकी भाषा कई बार बहुत बनावटी हो जाती थी पर यह सामग्री भारतीय फिल्मों और अखबारों, टी.वी कार्यक्रमों इत्यादि से उठायी गयी और इसके पढ़ाने का तरीका भी एकदम अलग था जिसे कि संकलन में समझाया भी गया। जैसे कि यह अपेक्षा कि पाठक हर शब्द को समझने की कोशिश न करें वर्ना उनको निराशा हो सकती है और वे अपनी रुचि खो सकते है। यह कहा गया कि पाठक हर प्रमाणिक टुकड़े के साथ संलग्न सवालों के जवाब देते हुए मूल को समझें पर हर शब्द को समझने की कोशिश न करें ताकि जो अपेक्षित है वही ओझल न हो जाये।

दरअसल यह पाठन की विधि यह मान कर चलती है कि जीवन में जो तरीके हम पढ़ाना-सुनना समझने के लिये अपनाते हैं, उन्हीं को दूसरी भाषा सीखने पर भी आरोपित किया जाये जैसे कि यहां हर पाठ के लिये पूर्वपाठ, पाठ व उत्तरपाठ की विधि चुनी गयी। पूर्वपाठ में छात्र जो पहले से जानता है, उसी को उकसाया जाता है, शीर्षक के जरिये से उसके पूर्वज्ञान या अनुमान को आधार बनाया जाता है, बहुत से शब्द जो उसकी सुप्त स्मृति में होते हैं वे चेतन में आ जाते हैं। फिर उसे पूरा टेक्सट पढ़ने को कहा जाता है। चेतन में आये वे शब्द और कुछ अनुमान उसे नया टेक्सट समझने में मदद देते हैं। और फिर उत्तरपाठ में वह पढ़े को समझता हुआ उसे आगे की सिखलाहट के साथ जोड़ लेता है। पढ़ने या सुनने के अलावा अभ्यासों में टेक्स से जुड़ी लिखने, बात करने की गतिविधियां भी शामिल रहती हैं।

यूं अगर भाषा को स्वाभाविक रूप को सीखना हो तो ये प्रामाणिक वीडियो टेप व टेक्सट ''अमरीकी कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फारन लैंग्वेजेज'' के दफ्तर से प्राप्य है। श्रवण द्वारा भाषा सीखने के लिये ये ''आथैंटिक मैटीरियलज फार टीचिंग लिसनिंग कामपरेहैन्शन इन हिंदी'' हैं और पठन सीखने के लिये ''आथैंटिक मैटीरियलज फार टीचिंग लिसनिंग कामपरेहैन्शन इन हिंदी'' हैं। इसे तैयार करने में पांच हिंदी प्राध्यापकों की कमेटी थी - सुषम बेदी, विजय गंभीर, सुरेंद्र गंभीर, मणींद्र वर्मा और हर्मन वैन आल्फन। इस सामग्री में हिंदी फिल्मों और दूरदर्शन के विभिन्न कार्यक्रमों के दो-चार मिनटों के टुकड़े/क्लिपस हैं जिनके साथ भाषा की समझ को सिखाने के लिये सवालों की पुस्तिका है। ऐसी ही प्रामाणिक शिक्षण की हिंदी भाषा सामग्री रीडिंग काम्प्रेहेंशन के लिये भी हमारी कमेटी ने तैयार की। इस सामग्री में नये कोण से भाषा सिखाने का प्रयास है और वह यह कि जिस तरह भाषा भाषा के मौलिक बोलने वाले सीखते हैं उन्हीं तरीकों से छात्रों को सिखाया जाये बजाय कि ड्रिल वगैरह के बनावटी तरीके तैयार किये जायें। साथ ही भाषा सीखते हुए छात्र पढ़ने और सुनने की बेहतर समझ बनाने की स्ट्रैटजीज़ भी सीखते हैं। आखिरकार अपने जीवन में जूझना तो उनको प्रामाणिक भाषा रूपों से ही है तो शुरू से उन्हीं को क्यों न सिखया जाये। यही मूल सिद्धांत है इस पद्धति के पीछे। क्रैषन इस पद्धति के हिमायती हैं कि दूसरी भाषा सीखने में अपनी पहली भाषा सीखने के नियमों को ही लागू करने से सिखलाहट बेहतर और सफल होती है।

कुछ विद्यार्थी पढ़ने के परंपरागत तरीकों से ज्यादा अच्छा सीखते हैं। इसलिये मैं एक से ज्यादा पढ़ाने की विधियों के इस्तेमाल के पक्ष में हूं। हां उनमें एक संतुलन और दृष्टि रखनी बहुत जरूरी है। कोशिश यही होनी चाहिये कि उन तरीकों से छात्रों पर बोझ के बजाय भाषा के रीइनफोर्समेंट का ध्येय अपनाया जाये। यानि कि उदाहरण के लिये अगर विद्यार्थी भोजन के बारे में पाठ्यपुस्तक में पढ़ रहे हैं तो वीडियो का क्लिप किसी रेस्तरां में बैठे खाना आर्डर करने की बातचीत के बारे में हों! रीडिंग काम्प्रेहेंशन मेन्यू या सब्जी तथा अन्य ऐसे भोज्य पदार्थों के बारे में हो तो अपने आप रीइनफोर्समेंट होती रहेगी।

व्याकरण और ड्रिल वगैरह के इस्तेमाल के पक्ष में जो लोग हों उनके लिये बर्कले में ऊषा जैन ने प्राथमिक हिंदी शिक्षण की व्याकरण के ज्ञान के साथ पुस्तक तैयार की है जिसके साथ ओडियो टेप भी है। व्याकरण की समझ के साथ सीखनेवालों के लिये लंदन यूनिवर्सिटी के रयूपर्ट स्नेल और वेटमैन की किताब ''टीच योअर सेल्फ हिंदी'' पुस्तक आरंभिक शिक्षण के लिये बहुत दुरूस्त है। इनमें बातचीत व्याकरण की कठिनाई को ध्यान में रखकर आसान से दुरूहतर की ओर क्रमशः आयोजित की गई है। मैं कई वर्षों से स्नैल जी की ही किताब का इस्तेमाल कर रही हूँ ऐकेडमिक झुकाव वाले विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बहुत काम की है।

करीन शोमर के साथ मिल कर ऊषा जैन ने इंटरमीडियेट स्तर की पुस्तक तैयार की है जिसमें, व्रतकथायें, लोककथायें, महाभारत और रामायण की कहानियों के साथ-साथ हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों की भी कहानियां हैं। इसी तरह की इंटरमीडियेट/

माध्यमिक स्तर की किताब यमुना कचरू और राजेश्वरी पंडररिपांडे की है। आर. सी. जोसन की जातक कथायें और पंचतंत्र कथायें बच्चों के लिये बहुत उपयोगी होंगी। जिन बच्चों को पहले से हिंदी आती हो उनके लिये ये पुस्तकें उपयोगी होंगी। कहानियां सरल संस्कृतमयी भाषा में लिखी गयी हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास ऑस्टिन के प्रोफेसर हर्मन वैन आल्फन ने प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की बहुत सुंदर पाठ्य पुस्तकें तैयार की हैं जो कई यूनिवर्सिटियों में हिंदी पढ़ाने के कार्यक्रम में सफलतापूर्वक इस्तेमाल की जा रही हैं। इन्हें बच्चों के लिये भी इस्तेमाल किया जा सकता है क्योंकि इनकी भाषा बोलचाल की है और तस्वीरें रुचिकर हैं। साथ में ओडियो टेप्स भी हैं जिनमें लोकप्रिय हिंदी गाने भी शामिल है। शीला वर्मा ने मैडिसिन, विस्काउन्सन में प्राथमिक और माध्यमिक और उच्चतर स्तर पर टेक्सट बुक्स तैयार की हुई हैं। जो भाषा के साथ-साथ व्याकरण में भी रुचि रखते हों उनके लिये प्रोफेसर पीटर ब्रुक्स (ईस्ट, लैंसिग, मिशिगन) की इंटरमीडियेट और एडवांस लेवल की किताब बहुत अच्छी रहेगी। सुरेंद्र गंभीर ने भी उच्च स्तर की बोलचाल की हिंदी की पुस्तक तैयार की है।

हमारे कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने घर में सुन-सुनकर हिंदी सीखी होती हैं। वे बोल लेते हैं पर पढ़ना-लिखना नहीं आता। बहुत बार ये छात्र लिपि भर ही सीखने में रुचि रखते हैं। यह स्थिति बाहर रहने वाले भारतीय बच्चों की खास तौर से होती है। दूसरी विदेशी भाषाओं की भी अमरीका में यही स्थिति है। इसलिये ऐसी सामग्री भी है जो देवनागरी लिपि से परिचित कराती है-हाल ही में रयूपर्ट स्नैल की एक पुस्तिका निकली है सिर्फ लिपि सिखाने के लिये। रयूपर्ट स्नेल अमरीकी नहीं हैं, अंग्रेज हैं, लेकिन इनकी पुस्तकों का इस्तेमाल अमरीका में खूब होता है। बहुत साल तक लंदन में हिंदी पढ़ाने के बाद अब वे यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास, आस्टिन में हर्मन वैन आल्फन के साथ मिलकर काम कर रहे हैं। हर्मन वैन आल्फन ने भी लिपि सिखाने के लिये आरंभिक हिंदी की पुस्तक कुछ साल पहले निकाली थी जो बच्चों के लिये बहुत उपयोगी हो सकती है क्योंकि उसमें हिंदुस्तान की दुकानों, इश्तहारों इत्यादि की दिलचस्प तस्वीरें हैं। साथ ही लिखने का अभ्यास कराने के खाली स्थान भी हैं। गंभीर दंपत्ति ने लिपि सिखाने का एक वीडियो टेप भी तैयार किया है जो पेन यूनिवर्सिटी से उपलब्ध किया जा सकता है। लिपि सिखाने के लिये अब वेब पर भी उनका पृष्ठ देखा जा सकता है। सिराक्यूज यूनिवर्सिटी की वेबसाईट पर भी लिपि सिखाने का पद्धति है।

इधर कम्प्यूटर पर हिंदी शिक्षण की तेजी से शुरुआत हो गयी है। आज की पीढ़ी कम्प्यूटर से शैशवकाल से ही परिचित है इसलिये कम्प्यूटर हिंदी सीखने का बड़ा जोरदार माध्यम बन गये हैं। इंटरनेट पर पढ़ाने की अब बहुत सी सामग्री उपलब्ध है तथा बहुत सी नयी सामग्री तैयार की जा रही है। जिस तेजी से अमरीका में पुराना काम पुराना पड़ता जाता है अत: अब टेप्स वगैरह का इस्तेमाल कोई नहीं करता। कई यूनिर्विसिटियों में इंटरनेट पर पाठ्य सामग्री लगायी जा रही है। टेक्सास, आस्टिन में आज कल रयूपर्ट स्नैल, जिष्णु शंकर आदि के द्वारा इस दिशा में बहुत काम हो रहा है। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर गेबरियेला इलेवा स्टाकटॉक के प्राध्यापकों के लिये खास तौर से प्रामाणिक सामग्री फेसबुक पर लगाती रहती है तथा उनके पढ़ाने में इस्तेमाल के तरीके भी बताती है। उनका सारा जोर प्रोजेक्टबेस्ड लरनिंग पर है। किसी एक विषय को चुनकर न केवल उससे जुड़ी भाषा ही सिखायी जाती है साथ ही उस विषय का भी अच्छा ज्ञान कराया जाता है। सभी तरह के दृश्य और श्रव्य उपकरणों (फिल्म, डाक्यूमेंट्री, विडियो, टेक्सट आदि) का इस्तेमाल किया जाता है। इस तरह छात्र भाषा और संस्कृति दोनों का ही ज्ञान साथ-साथ पाते हैं। जरूरी है कि इंटरनेट के लिये सही और बढ़िया शिक्षण सामग्री इजाद की जाये। भावी दिशा यही है। यूपेन, आस्टिन, टेक्सस, येल तथा कई दूसरी यूनिवर्सिटी में ये काम हो रहा है। जिम बेकर ने हिंदी की सारी शिक्षण संबंधी वेबसाईट को एक ही जगह इकट्ठा कर दिया है जो बहुत लाभदायक वेबसाईट है। इसका नाम रखा है सुपर हिंदी वेबसाईट।

कई यूनिवसिटियों के अपने वेबपेज हैं। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की गैबरियेला इलेवा ने भी तस्वीरों के साथ कहानियों के जरिये से हिंदी सिखाने का वेब पृष्ठ बनाया है। यहां प्रारंभिक और इंटरमीडियेट तथा एडवांस लेवेल की कहानियां हैं जिनको पढ़ा व सुना जा सकता है। साथ ही शब्दार्थ सूची भी उपलब्ध है। भारतीय लोककथायें इत्यादि इस शिक्षण को सांस्कृतिक दृष्टि से सघन बनाती हैं। इस वेबसाईट का नाम है 'वर्चुअल हिंदी'।

अफरोज ताज ने 'अ डोर टू' हिंदी नाम से शिक्षण की वेबसाईट तैयार की है नार्थ कैरोलाईना विश्वविद्यालय की ओर से। शुरू के पाठ जो पूरे हो चुके हैं, वे उपयोगी हैं। अलग-अलग शहरों

में जाकर वहां के प्रामाणिक दृश्य दर्शाते हुए भाषा सिखाने की कोशिश है। एक तरह से कई शहरों की सैर करते हुए छात्र हिंदी सीखता है। भारत के अलावा इसमें पाकिस्तान के शहरों का दर्शन भी शामिल है।

इसके अलावा कार्ला (यूनिवर्सिटी ऑफ मिनीसोटा की वेबसाईट) के माध्यम से भी सामग्री उपलब्ध की जा सकती है। ये कई स्तर के हैं और विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप शिक्षक इनका प्रयोग करते हैं। यूं अब तो अगर अंतरजाल पर जायें तो नर्सरी राईम्स से लेकर महाभारत और रामायण तक की कथाओं के कितने ही तरह के हिंदी रूपांतर मिल जाते हैं, साहित्य के वैविध्य को जानने के लिये 'हिंदी समय' पर साहित्य सामग्री या हिंदी की अंतरजाल पत्रिकायें पढ़ने को मिल जाती हैं। बात चुनाव की हो गयी है वर्ना बहुत कुछ उपलब्ध है जिसे शिक्षक छात्रों के रुचि के अनुरूप तैयार कर सकते हैं।

भाषा शिक्षण के लिये शब्दकोष और व्याकरण की पुस्तकें बहुत सहायक होती हैं। चूंकि यहां ज्यादातर पढ़ने-पढ़ानेवाले अंग्रेजी बोलने वाले हैं इसलिये आर. एस. मैकग्रैगर का 'हिंदी व्याकरण' या माइकेल शपीरो का 'हिंदी व्याकरण' हिंदी के व्याकरण को समझने-समझाने में बहुत मदद करेंगे। इसी तरह मैकग्रैगर, बाहरी या चतुर्वेदी का हिंदी-अंग्रेजी या कामिल बुल्के और सुरेश अवस्थी का अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोष विद्यार्थियों के लिये मददगार है। यह अच्छा रहेगा कि उनको इन शब्दकोषों का ज्ञान दिया जाये वर्ना घटिया सा शब्दकोष उठा लेते हैं जिनमें उनको न तो सही अर्थ मिलते हैं न ही पूरे शब्द। इंटरनेट पर भी शब्दकोष तैयार हो गया है। यूं तो लोगबाग गूगल अनुवाद पर भी निर्भर करने लगे हैं जो हमेशा सही नहीं होता।

पाठ्यक्रम की एकरूपता का सवाल

अमरीका में भाषा शिक्षण के स्तरों में एकरूपता लाने का काम कर रही है एक अमरीकी संस्था 'अमेरिकन कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फारन लैंग्वेजेस'। इसी अमरीकी कौंसिल ने हिंदी की मौखिक परीक्षा के भी प्रतिमान बनाये हुए हैं जो देश भर में मान्य हैं और चार अध्यापक इस परीक्षा को प्रशासित करने के लिये कौंसिल द्वारा सर्टीफाइड हैं (विजय गंभीर, सुषम बेदी, ऊषा जैन और नसीम हाईन्स)। पेन यूनि. से लिखित परीक्षाओं की भी सामग्री मिल सकती है। सुषम बेदी तथा विजय गंभीर अमरीकन कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फारन लैग्वेजेस की ओर से मौखिक परीक्षण कला सिखाने के लिये प्रशिक्षक के रूप में भी सर्टीफाईड हैं। समय-समय पर ये दोनों अमरीका में हिंदी पढ़ानेवालों के लिये प्रशिक्षण कार्यशालाएं देती रहती हैं। इसके अलावा दक्षिण एशियाई भाषाओं के शिक्षकों की भी एक संस्था बनी है--'साल्टा' यानि साउथ एशियन लैग्वेज टीचर असोसिएशन जो दूसरी अमरीकी भाषा संस्थानों के साथ मिलकर काम करती है। आजकल ज्ञानम महाजन इसकी अध्यक्ष हैं। इनका भाषा शिक्षण संबंधी सूचनाओं का एक न्यूजलैटर भी निकलता है। इन्होंने वाशिंगटन के नेशनल फॉरन लैंग्वेज सेंटर के साथ मिल कर हिंदी पढ़ाने की सामग्री का ब्यौरा लैंगनैट नाम के वेब पर दिया हुआ है। इसके अलावा कार्ला ने भी हिंदी शिक्षकों की एक इंटरनेट सूची बनायी हुई है।

कुछ साल यह संस्था गतिशील नहीं रही। अब गेबिरयेला इलेवा, जिष्णु शंकर, सीमा खुराना तथा गौतमी शाह और ज्ञानम महाजन इत्यादि नयी पीढ़ी के शिक्षकों के नेतृत्व में फिर से इसे जीवंत बनाया जा रहा है। लेकिन पाठ्यक्रम की एकरूपता अमरीकी यूनिवर्सिटी में नहीं है। यहां का प्रजातांत्रिक ढंग हर संस्था को अपने मानदंड खुद गढ़ने देता है। पर सबसे ऊपर जो एक तरीका इन मानदंडों की एकरूपता का दर्शन कराता है वह है परीक्षण प्रणाली। अमरीकी इंस्ट्टियूट ऑफ इंडियन स्टडीज ने कुछ परीक्षण पत्र तैयार किये हुए हैं पर उनका इस्तेमाल वे अपने लिये ही करते हैं। इस तरह सारे विश्वविद्यालय अपने स्वतंत्र परीक्षा पत्र तैयार करते हैं।

हिंदी में भी ऐसे इम्तिहान तैयार किये जा रहे हैं जो किसी भी जगह पढ़े हुए छात्र के स्तर को बता सकते हैं। अमरीकी कौंसिल के द्वारा ही दिये गये ये मानदंड हैं जिनके आधार पर विभिन्न स्तर निर्धारित किये जाते हैं। मौखिक परीक्षा के मानदंड तो काफी सालों से मौजूद हैं। अभी रीडिंग तथा राईटिंग काम्प्रेहेंशन की परीक्षा का भी टेस्ट तैयार हुआ है। ये इम्तिहान कम्प्यूटर पर दिये जाते हैं।

हिंदी शिक्षण को लेकर आज जो बहुत महत्वपूर्ण सवाल उठाया जा रहा है वह है 'भारतीय मूल के छात्र'। जब से भारतीय मूल के छात्र बड़ी मात्रा में हिंदी की कक्षाओं में पहुंच रहे हैं, शिक्षण की विधि आमूलचूल परिवर्तन की मांग कर रही है जबकि ऐसे साधन अभी उपलब्ध नहीं कि इनके लिये अलग से सामग्री तैयार की जाये। अभी तो क्विकफिक्स जैसा ही चल रहा है और पहले से मौजूद शिक्षण सामग्री को ही थोड़े कल्पनात्मक ढंग से

इस्तेमाल किया जा रहा है। यूं कुछ लोग इस के लिये विशिष्ट सामग्री की तैयारी का भी प्रयास कर रहे हैं।

हैरिटेज छात्रों को नजर में रखकर थोड़ी बहुत नयी सामग्री तैयार की जा रही है वह मूलत: इंटरनेट पर है। इंटरनेट पर शिक्षण की विधि लीनियर के बजाय सर्कुलर है इसलिये हर मूल के विद्यार्थी अपनी योग्यता के अनुरूप कुछ न कुछ पा सकते हैं। भविष्य में यही अधिक लोकप्रिय और उपादेय होगी। अमरीकी शिक्षा का वातावरण भी इंटरनेट को गले लगाता दीखता है। मैंने स्वयं भी हिंदी महिला कथाकारों की वेबसाईट तैयार की है जो हिंदी उर्दू फ्लैगशिप (आस्टिन, टेक्सास) वेबसाईट पर लगी है। सुरेंद्र गंभीर ने हाल ही में एक बहुत महत्वपूर्ण कम्प्यूटर पर पाठ्यक्रम तैयार किया है 'बिजनेस हिंदी।' इसका इस्तेमाल व्हार्टन बिजनेस स्कूल, फिलाडेलफिया में हो रहा है। 'बिजनेस हिंदी', या 'समाज विज्ञान और विज्ञान की हिंदी', ये सारी नयी दिशायें हैं जिनकी ओर हिंदी पाठ्यक्रम को अग्रसर किया जा रहा है।

इस समय भारतीय बच्चे इतनी बड़ी तादाद में हिंदी की मांग कर रहे हैं कि सारे अमरीका में जगह-जगह मंदिरों, घरों इत्यादि में बहुत से उत्साही माता- पिता उन्हें हिंदी सिखलाने का यत्न कर रहे हैं। बात यह है कि जहां यूनिवर्सिटियों में हिंदी पढ़ाने का इंतजाम है, वहां अमरीका के स्कूलों में हिंदी शिक्षण का कोई स्थान नहीं है। कोशिश यह है कि ये बच्चे अगर स्कूलों में ही हिंदी सीख जायें तो यूनिवर्सिटी जाकर वे साहित्य शिक्षा पा सकते हैं जबकि अभी सबको कखग से ही शुरू करना पड़ता है। दूसरा यह भी है कि कॉलेज जाने का इंतजार करने से पहले ये बच्चे हिंदी घर से ही जान लें ताकि कॉलेज में दूसरे विषयों पर ध्यान लगायें। खैर दोनों बातें सही हैं।

इस दिशा में जो पहला कदम उठाया गया वह था शिक्षा के मानकी करण का इसके लिये पूरे देश से दस सदस्य चुने गये। यूनिवर्सिटी तथा संडे स्कूल में कार्यरत शिक्षकों ने मिलजुल कर यह काम किया।

काम मानक निर्धारण का था ताकि एक बार ये मानक बन जायें तो संडे स्कूलों या आगे चल कर मान्यता प्राप्त अमरीकी स्कूलों में जो मानक अपनाये जायें उनका आधार पहले से मौजूद हो। कॉलेजों में भी यही मानक इस्तेमाल किये जाने का विचार है। यह काम भी अमरीकी कौंसिल की मदद से हुआ। अमरीकी कौंसिल यह काम बहुत सी भाषाओं - अरबी, फ्रेंच, चीनी, जापानी, जर्मन इत्यादि के लिये पहले से हो कर चुकी है और हमारे इस काम का भी मूलाधार यही नींव है जिस पर हिंदी के मानक ठहराये जायेंगे। अभी यह काम समाप्त हुआ जो अमरीकी कौंसिल ऑफ फारन लैंग्वेजेस द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है।

जहां तक शोध का सवाल है, यूरोप के भाषा वैज्ञानिक पहले से ही भाषा के शोध में लगे हुए थे। यहां भी भाषावैज्ञानिकों ने इस ओर ध्यान दिया।

ज्यादातर यूनिवर्सिटियों में छठे दशक में ही हिंदी का शिक्षण शुरू हुआ था। शुरू में विद्यार्थी अमरीकी स्नातकोत्तर छात्र होते थे। लेकिन हिंदी पर विशेष शोध नहीं हुआ। हां अनुवाद कार्य काफी हुआ। जिन प्रमुख नौ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ायी जाने लगी थी वहां दो तरह के कार्य हुए- - हिंदी शिक्षण की सामग्री तैयार करना तथा अनुवाद कार्य।

1961 में 'अमरीकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज' की स्थापना हुई जिसके माध्यम से यूनिवर्सिटी में शोध के इच्छुक छात्रों के लिये अनुदान की व्यवस्था थी। इससे बहुत तरह के शोध को बढ़ावा मिला। इस संस्था ने लगभग 6000 छात्रों को शोध के लिये सहायता दी है। इनमें से कुछ हिंदी का काम करनेवाले भी हैं। इस संस्था के द्वारा भारत में ही भारतीय भाषाओं को सिखाने का भी विधान है। पहले यह काम दिल्ली, बनारस में होता रहा, अब राजस्थान में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। इस संस्था का दफ्तर डिफेंस कालॉनी दिल्ली में है और अब गुरूग्राम में बड़ा दफ्तर खुल गया है।

सातवें - आठवें दशक में कुछ अनुवाद कार्य प्रकाशित हुए जैसे कि डेविड रयूबिन का प्रेमचंद की कहानियों का अनुवाद, गौरडन रौडरमल का नयी कहानियों का अनुवाद। यूं तो रौडरमल की डाक्टरेट के शोध प्रबंध का विषय भी नयी कहानी था पर वह शोध अभी तक अप्रकाशित है। डेविड रयूबिन मृत्युपर्यन्त अनुवाद का भरपूर काम करते रहे। प्रेमचंद के बाद उनका निराला की कविताओं का अनूदित संग्रह कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुआ। इन्होंने चारों छायावादी प्रमुख कवियों का अनुवाद किया जो कि अब आक्सफोर्ड प्रेस, दिल्ली से 'रिटर्न ऑफ सरस्वती' नाम से प्रकाशित हुआ है। नवें दशक में उनका प्रेमचंद की कहानियों का दूसरा संग्रह प्रकाशित हुआ आक्सफोर्ड

प्रेस से ही। इससे पहले 'निर्मला' उपन्यास का अनुवाद भी छपा। डेविड रयूबिन ने मेरे भी दो हिंदी उपन्यासों, 'हवन' तथा 'लौटना' का अंग्रेजी अनुवाद किया है। 'हवन दा फायर सेक्रिफाईस' नाम से हाइन्मन, इंग्लैंड से छपा तथा 'लौटना' 'पोर्ट्रेट ऑफ मीरा' नाम से बुक्स इंटरनेशनल ने छापा।

आदित्य बहल ने कृष्णा सोबती, फोसेस प्रिचिट ने प्रेमचंद, बॉब हक्सटेड ने मुद्राराक्षस और जेसन ग्रुनबाम ने उदयप्रकाश की रचनाओं के अनुवाद किए हैं।

महादेवी वर्मा पर करीन शोमर ने भी बर्कले यूनिवर्सिटी से अपना शोध ग्रंथ लिखा। केथी हैन्सन का मुख्य काम थियेटर पर है। उनकी नौटंकी ड्रामा पर लिखित किताब भी शोध का बहुत महत्वपूर्ण काम है। इसके अलावा इन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों का अनुवाद किया है। शायद यहां यह कहना भी सही होगा कि आधुनिक हिंदी साहित्य के अलावा प्राचीन हिंदी साहित्य पर भी अमरीकी विद्वानों ने काम किया है। विशेष रूप से भक्ति साहित्य पर। इस दिशा में जॉन सट्रैटन हाली का सूर पर, लिंडा हेंस का कबीर पर काम उल्लेखनीय है।

ऐलिसन बुश रीति साहित्य में केशवदास पर काम कर रही है। कुछ और विद्वान भी इस दिशा में काम कर रहे हैं।

अमरीका की ज्यादातर यूनिवर्सिटियों में हिंदी उर्दू एक भाषा के रूप में ही पढ़ाये जाते हैं। उनके अलग-अलग विभाग नहीं हैं।

मेरी अपनी कोलंबिया यूनिवर्सिटी को ही लीजिये। यहां पहले वर्ष में विद्यार्थी केवल देवनागरी लिपि में हिंदी - उर्दू सीखते हैं। दूसरे साल में हम उनको उर्दू की लिपि भी सिखला देते हैं। उसके बाद हिंदी साहित्य का कोर्स अलग होता है और उर्दू साहित्य का अलग। अब तो पहले साल में ही उर्दू भी पढ़ायी जाने लगी है। कभी-कभी इनको मिला कर भी कोर्स दिया जाता है। खासतौर से प्रगतिवादी लेखकों को मिलाना आसान हो जाता है चूंकि उनकी भाषा हिंदुस्तानी थी, न हिंदी न उर्दू। प्रेमचंद, मंटो, यशपाल, इस्मत चुगताई, कृश्ण चंदर इत्यादि को दोनों लिपियों में पढ़ना संभव है। अंग्रेज विद्वान शैकल की एक पाठ्य पुस्तक भी है जिसमें दोनों लिपियों का इस्तेमाल है और यह पुस्तक अमरीका में भी प्रिय है। इनकी शुरुआत इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' से है जिसने सचमुच ऐसी भाषा देनी चाही जिसमें हिंदी को छोड़ और किसी भाषा का पुट न हो। न फारसी, न संस्कृत का ही।

यूं अब कई यूनिवर्सिटियों में अलग-अलग भाषा रूप में भी इन्हें पढ़ाया जाता है जैसे कि यूपेन, मेडिसन और न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में।

ज्यों-ज्यों शिक्षण का प्रसार बढ़ेगा, त्यों-त्यों अनुवादों का काम भी तथा आलोचना का भी बढ़ेगा। यह सही है कि चाहे भारतीय मूल के विद्यार्थियों की तादाद बढ़ रही है पर इनका ज्यादातर ध्येय होता है बोलचाल भर की भाषा सीख लेने का। शोध के कार्य में ज्यादा भारतीय मूल के छात्र नहीं जाना चाहते। उनकी दिशायें कम्प्यूटर, इंजीनियरिंग, मेडिकल या अर्थशास्त्र पढ़ने की होती है। शोध की दिशा में इक्के-दुक्के अमरीकी मूल के ही छात्र जाते है। जब तक भारतीय छात्र इस दिशा में नहीं आयेंगे, शोधकर्ताओं की गिनती गिनी-चुनी ही रहेगी और इस क्षेत्र में काम भी नाम मात्र का। जब तक भारतीय स्वयं इस दिशा में आगे नहीं बढ़ते, हिंदी सिर्फ बोलचाल की भाषा बन कर ही जीवित रहेगी। क्योंकि फिल्में समझने या नानी दादी से बात करने के लिये उतनी ही भाषा काफी होती है। जो भारत संबंधी शोध अमरीका में होता है उसका ज्यादा जोर समाज विज्ञान, मानव विज्ञान, राजनीति या इतिहास आदि पर है जिसके लिये हिंदी एक सहायक भाषा के रूप में शोध के छात्र सीखते हैं। पर उनका सीखना भी ग्रंथ पढ़ने भर का होता है। हिंदी साहित्य पर काम करना ध्येय नहीं होता। हिंदी को जब तक भारत में प्रमुखता नहीं मिलेगी, हम जितना भी कोशिश कर लें वह बोलचाल की, आम जरूरतों की भाषा से आगे नहीं बढ़ेगी। उसे गंभीर विचार और चिंतन की भाषा नहीं माना जायेगा। यह बात हम आम सुनते हैं कि हिंदी में तो इतने शब्द ही नहीं इसलिये विचार और चिंतन के लिये अंग्रेजी को ही चुना जाता है। ज्यादा से ज्यादा हिंदी भाषा भाषी भी उच्च स्तर की हिंदी को खो रहे हैं क्योंकि विचार चिंतन के लिये वे अंग्रेजी का ही इस्तेमाल करना पसंद करते हैं। भारत में हिंदी को ज्यादा से ज्यादा हल्का बनाने और उसमें अंग्रेजी जोड़ने का ढर्रा बन गया है। यहां के लोग जब शुद्ध हिंदी बोलते हैं तो उनका मजाक बनाया जाता है। जब तक भारत में ही हिंदी को उठाया नहीं जायेगा और वह बुद्धिजीवियों की आम भाषा नहीं बनेगी उसका विस्तार एक माध्यमिक स्तर से ऊपर नहीं होगा और अमरीका में उसका अध्ययन-अध्यापन भी वहीं तक सीमित रहेगा।

✠✠✠

अमेरिका की तस्वीर वाया प्रवासी हिंदी कहानी

विजय शर्मा

समाजशास्त्री बताते हैं और स्वीकार करते हैं कि पूरब और पश्चिम की संस्कृति में मूलभूत अंतर है। ये दो अलग दुनिया हैं। दोनों दुनिया के लोगों के संस्कार, आचार-विचार और मूल्य सब भिन्न हैं। पूरब और पश्चिम के लोगों की सामाजिक-मानसिक बनावट-बुनावट भिन्न है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, अपनी-अपनी सीमाएँ हैं पूर्व में भारत, चीन, जापान आदि देश आते हैं जबकि पश्चिम कहते ही द यूनाइटेड स्टेट्स, ग्रेट ब्रिटेन और कनाडा अर्थात अमेरिका और यूरोप की छवि उभरती है। दोनों समाजों में मूलभूत अंतर है।

सम्पर्क: 326, न्यूले आऊट, सीताराम डेरा, एग्रिको, जमशेदपुर-831009, झारखंड, मो. 9430381718, ई-मेल: vijshain@gmail.com

'न तो प्रवास कोई नई स्थिति है ना ही प्रवासी साहित्य कोई नई खोज है। लेकिन बीसवीं शताब्दी में भारतीय मूल के लोगों ने एक देश में नहीं बल्कि लगभग संसार के हर कोने में जिस अस्मिता को जगाया है और जो पहचान स्थापित की है, वह इससे पहले संभव न थी। आज का भारतीय प्रवासी पहले के प्रवासी से भिन्न है। प्रवास के इस युग में तकनीकी और विज्ञान ने दूरियों को कम करने के साथ-साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान के रास्ते को प्रशस्त भी किया है। आज प्रवासी भारतीय के लिए भारत दूर होते हुए पास भी है। प्रवास देश की संस्कृति से भी उसका जीवंत संबंध बना हुआ है।' कथाकार-समीक्षक असगर वजाहत का यह कथन आज के संदर्भ में प्रवास और प्रवासी को बहुत अच्छी तरह से व्यक्त करता है।

दुनिया भर में फैले हुए भारतवासियों ने भारतीय सोच और समझ का दायरा बढ़ाया है। सरकार और सत्ता संस्थान प्रवासियों को सम्मान दे रहे हैं, यह आर्थिक कारणों से अधिक हो रहा है। बात आर्थिक मुद्दों पर ही समाप्त हो जाती है। जब उनके साहित्यिक अवदान पर काम होगा तो यह साहित्य और संस्कृति दोनों को समृद्ध करेगा। साहित्य और संस्कृति का मूल्यांकन इस अवदान को स्थायित्व प्रदान करेगा। आर्थिक रूप से उनसे अपेक्षा रखना अच्छी बात है, मगर उनके साहित्यिक और सांस्कृतिक मूल्यगत अवदान को यदि ध्यान में नहीं रखा गया तो यह उनकी अवमानना होगी और हमारी अपूर्णीय क्षति।

भारत के बाहर विदेशों में अनेक रचनाकार हिंदी में लेखन कर रहे हैं। यह लेखन परिमाण की दृष्टि से विपुलता और विविधता लिये हुए है। इसमें शक नहीं है कि आने वाले समय में यह साहित्य हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला है। क्या तब यह साहित्य आज की तरह अलग-थलग पड़ा होगा। नहीं, मुझे नहीं लगता है। तब यह हिंदी साहित्य का एक अंग होगा। तब इसे 'प्रवासी साहित्य' क्यों कहा जाए? इसका बहुत सटीक उत्तर राजेंद्र यादव ने यमुनानगर में दिया था। जिसे बाद में उन्होंने अपने 'हंस' के संपादकीय का अंग भी बनाया था। उन्होंने कहा था कि साहित्य, साहित्य होता है और उसे

बाँटना गलत है, मगर चीजों को समझने या विश्लेषण के लिए समग्र को तोड़ना ही पड़ता है। साहित्य में भी यही होता है। दलित लेखन, स्त्री लेखन की तरह प्रवासी लेखन की भी धारा है, उसकी अपनी विशिष्टिता को समझने के लिए शायद यह जरूरी भी है।'

जब हम आधुनिक प्रवासी हिंदी कथा-साहित्य की बात करते हैं तो इसमें वे रचनाकर आते हैं, जो बेहतर जीवन शैली की तलाश में अपनी मर्जी से दूसरे देशों में गए। वे बंधुआ मजदूरों की तरह प्रवास में नहीं ले जाए गए। उच्च आमदनी के लिए जिन देशों में भारतीय गए उनमें अमेरिका और ब्रिटेन प्रमुख है। जब तेल का उत्पादन होने लगा, भारतीय खाड़ी के देशों में भी जाने लगे। प्रवासी लेखन में महिलाओं की संख्या अधिक है। क्यों? शोध का विषय हो सकता है। यह संयोग है कि इस आलेख में जिन प्रवासी कहानियों की चर्चा है वे स्त्रियों द्वारा रचित है। यहाँ कहानियों की आलोचना से अधिक कहानियों में जो है उसे सामने लाने का प्रयास है।

समाजशास्त्री बताते हैं और स्वीकार करते हैं कि पूरब और पश्चिम की संस्कृति में मूलभूत अंतर है। ये दो अलग दुनिया हैं। दोनों दुनिया के लोगों के संस्कार, आचार-विचार और मूल्य सब भिन्न हैं। पूरब और पश्चिम के लोगों की सामाजिक-मानसिक बनावट-बुनावट भिन्न है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, अपनी-अपनी सीमाएँ हैं भारत, चीन, जापान आदि देश आते हैं जबकि पश्चिम कहते ही द यूनाइटेड स्टेट्स, ग्रेट ब्रिटेन और कनाडा अर्थात अमेरिका और यूरोप की छवि उभरती है। दोनों समाजों में मूलभूत अंतर है। पूर्व समूहवादी समाज का पोषक है, जहाँ रिश्ते-नाते प्रमुखता पाते हैं। अमेरिकी समाज व्यक्तिवादी समाज है, जहाँ संबंध लेन-देन पर आधारित होते हैं। पारिवारिक संबंध भी अक्सर इसी मापदंड पर तौला जाता है।

गुणसूत्रों के अलावा व्यक्तित्व निखारने में पर्यावरण का हाथ होता है। पर्यावरण अर्थात् उसके चारों ओर का सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण। सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण मिलकर संस्कृति का निर्माण करते हैं। इस तरह संस्कृति व्यक्तित्व निर्माण का एक प्रमुख घटक है। व्यक्ति अपनी संस्कृति से अपने मूल्य ग्रहण करता है। अत: इन दोनों संस्कृति में पले-बढ़े मनुष्य का व्यक्तित्व भी भिन्न-भिन्न होता है। समूहवादी संस्कृति में लोग अपने समूह के द्वारा जाने जाते हैं, समूह पर निर्भर करते हैं। ग्रुप ओरिएंटेशन महत्वपूर्ण होता है। इस तरह के समाज में लोग विस्तृत परिवार को भी अपना परिवार मानते हैं। वे उनसे निकट का संबंध मानते हैं और उनके दु:ख-सुख में शामिल होते हैं। इस व्यापक परिवार के प्रति निष्ठा को बहुत महत्व दिया जाता है, परिवार की चिंता को व्यक्ति की चिंता से पहले स्थान दिया जाता है। व्यक्तिवाद में व्यक्ति आत्मकेंद्रित होता है, वह केवल अपने बारे में ही सोचता है। वह दूसरों से विशेष अपेक्षा नहीं रखता है और न ही दूसरों की ज्यादा चिंता करता है। पास-पड़ोस उसके लिए कोई खास मायने नहीं रखता है। न वह पास-पड़ोस के जीवन में दिलचस्पी लेता है और न ही चाहता है कि कोई उसके जीवन में ताक-झांक करे। अगर कोई ऐसा करता है तो वह उसे अनाधिकार चेष्टा लगती है।

अब एक ऐसे व्यक्ति की बात सोचिए जिसका जन्म भारत में हुआ है। लालन-पालन भारतीय परिवेश में हुआ है परंतु जो वयस्क होने पर अमेरिका में रह रहा है। एक भारतीय मन जो शारीरिक रूप से अमेरिका में प्रवास कर रहा है। जिसकी आदतें, मूल्य, रीति-रिवाज सब भारतीय है। अमेरिका में निवास करते हुए कितने सारे द्वंद्वों का सामना करना पड़ता होगा ऐसे व्यक्ति को। अमेरिका में रह रही सुदर्शन प्रियदर्शनी अपनी कहानी 'अखबार वाला' में एक ऐसे ही व्यक्ति के मनोभावों को चित्रित करती हैं। उन्होंने छोटी-सी घटना के इर्द-गिर्द एक बहुत संवेदनशील और विशिष्ट कहानी की रचना की है। इस कहानी के द्वारा उन्होंने प्रवासी मन को समझने-समझाने का काम किया है।

'अखबार वाला' की जया काफी समय में अमेरिका में रह रही है। यहाँ की सामाजिकता का तकाजा है कि अपने दु:ख-दर्द को अपने घर के दरवाजे के भीतर तक ही समेट कर रखा जाए। दूसरी ओर ताक-झाँक भारतीय का स्वभाव है। जया की जिज्ञासु आँखें सड़क, गली और सामने वाले घरों पर गाहे-बगाहे नजर रहती थी। पहले घर में बच्चे थे, अब अपनी-अपनी ज़िंदग़ी में व्यस्त हो गए हैं और जया अकेली पड़ गई है। कहानी काव्य-गुण समा कर खूबसूरत हो जाती है जब सुबह-सुबह रंग, गंध, ध्वनि, स्वाद, स्पर्श सारी ज्ञानेंद्रियाँ जाग्रत हो जया को भारत की सुबह का स्मरण कराती हैं।

वर्तमान इसके विपरीत सन्नाटे से भरा हुआ है। जया रोज उठ कर सबसे पहले सन्नाटों से समझौता करती है। जया को लोगों का रिश्ता एक दूसरे से जुड़ता हुआ नहीं वरन एक-दूसरे को काटता

हुआ लगता है। समूह व्यक्ति को शारीरिक और भावात्मक दोनों प्रकार की सुरक्षा देता है। वह अपनी ओर से रिश्ता बनाने की कोशिश करती है मगर हर बार वही ढाक के तीन पात। उसका प्रयास उसे बौड़म और पुशी संज्ञा दिलाता है। जया को एक बार जरूरत पड़ गई थी और जरूरत पर पड़ोसी सहायता करते भी हैं। वे बुरे नहीं हैं, न ही इरादतन उसे अनदेखा करते हैं। उनकी संस्कृति उन्हें किसी की निजी ज़िंदग़ी में झाँकने की इजाजत नहीं देती है। इसीलिए, अब वह मृत पड़ोसी के बारे में दूसरे पड़ोसी से अता-पता करना चाहती है तो उसे निराशा हाथ लगती है। बीमार होना, दु:खी होना व्यक्तिगत मामला है।

सुबह उठ कर जब वह अखबार उठाने गई तो भौंचक रह गई। पड़ौस में फ्यूनेरल वैन खड़ी थी। कहानीकार जिस दुनिया में रहता है जिस असलियत को जानता-समझता है, भोगता है वही उसकी कहानियों में विस्तार पाता है। लाहौर में जन्मी सुदर्शन प्रियदर्शनी सुनेजा काफी समय से अमेरिका में रह रही हैं। उनकी कथा नायिका जया का लालन-पालन भारतीय समूहवादी समाज में हुआ है। भारतीय संस्कार, मूल्य-व्यवहार उसे घुट्टी में मिले हैं। भारतीय का उत्साहधर्मी मन दूसरों में अपनापन खोजता है। 'अखबार वाला' एक ऐसी ही कहानी है जो प्रवासी भारतीय स्त्री मन की कसक, उसकी छटपटाहट को शब्द में ढालती है। उसके मन में संशय है, वह समझ नहीं पाती है कि उसके ससुर का जीवन दर्शन सही है जो बिना किसी जान-पहचान के एक व्यक्ति की मृत्यु की खबर सुनते ही उसके घर पर अपनी संवेदना प्रकट करने चल देते हैं अथवा इन अमेरिकी लोगों का जीवन दर्शन उचित है, जो पड़ोसी की मौत पर एक शब्द नहीं कहते हैं, एक आँसू नहीं गिराते हैं। यह भावात्मक जीवन के केवल क्षरण की नहीं वरन् भावात्मक जीवन के अभाव की कहानी है। अजनबीपन और संवादहीनता से उत्पन्न त्रास की कहानी है।

जया का मरने वाले से बड़ा झीना-सा रिश्ता था। इस पहचान में कहीं भी अपनत्व या पड़ोसीपन नहीं था। जया उसे तब तक मिस नहीं करती है जब तक कि उसे उसकी मृत्यु का पता नहीं चलता है। फिर क्यों इस व्यक्ति की मृत्यु से विचलित है जया? कहानीकार इसका उत्तर देती है कि एक ही योनी का प्राणी होने का उनका नाता था, क्या यह कम बड़ी बात है? वह अपने पड़ोसी का नाम नहीं जानती थी मगर उसकी मृत्यु पर वह छटपटाती है, उसे अफसोस होता है कि क्यों नहीं वह उसे जान सकी।

मृत्यु के आसपास सन्नाटा होता है, आश्चर्य नहीं कि 'अखबार वाला' कहानी में अनेक बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है। पड़ोसी की मृत्यु जया को अस्तित्वगत उद्विग्नता से भर देती है। उसका भारतीय मन मृत्यु पर दो बूंद आँसू गिरने की प्रतीक्षा करता है। पता नहीं क्यों उसे इंतजार है कुछ सिसकियों का... जया के मन में उस व्यक्ति को लेकर तमाम जिज्ञासाएँ हैं मगर जिज्ञासा मिटाए बिना ही वह व्यक्ति चला गया। जितना ही वह उनके विषय में सोचती है उतना ही भावुक होती जाती है। उसके भीतर उनके लिए एक दयार्द्र-सी व्यथा उभर आती है। इस आदमी का एक बेटा भी था। एक आम भारतीय रिश्तों में जीता है, रिश्तों के सहारे जीता है। जया कयास लगाती है, अपनी ओर से उन्हें रिश्तों में बाँधती है। वह अमेरिकी लोगों के व्यवहार को समझ नहीं पाती है और उनका मूल्यांकन अपने हिसाब से करती है। अनजाने में वह बार-बार भारत के जीवन की पृष्ठभूमि में अमेरिकी जीवन को देखती है। जया अभी तक स्वयं को अमेरिकी नहीं मानती हैं इसीलिए अमेरिकन के लिए 'उन्हें' और अपने लिए 'हमारे' जैसे शब्दों का प्रयोग करती है। भारतीयों का शोक में डूबना, रोना-धोना उसे आकर्षित करता है, वह ये भावनाएँ, भावनाओं का खुला प्रदर्शन अमेरिका में चाहती है। दूसरी ओर भारतीय संस्कृति में अंतिम संस्कार से जुड़े सालों साल चलने वाले रीति-रिवाज उसे आडंबर लगते हैं। वह अमेरिकन जीवन में दु:ख-दर्द न व्यापने को लेकर परेशान है। वह चाहती है कि मरने वाले के संबंध में लोग उससे बातें करें, उसकी जिज्ञासाओं को शांत करें। उसे भारतीयों द्वारा मरे हुए व्यक्ति की स्मृतियों को समेट-समेट कर रखना खलता भी है। अजनबी व्यक्ति की मृत्यु से जया का हृदय भर आता है। उसकी आँखें नम हो जाती हैं। जब तक एक भी आँख में आँसू शेष है मानवता मर नहीं सकती है। यह मानवता के जीवित रहने के विश्वास की संवेदनशील कहानी है।

परिवेश कथा-साहित्य का एक प्रमुख तत्व होता है। परिवेश बदलने से कहानी बदल जाती है, उसकी तासीर बदल जाती है। अत: प्रवासी लेखन एक नया परिवेश रचता है। प्रवासी कहानीकार एक नए परिवेश में एक नई कहानी रचता है। इला प्रसाद की कहानी 'कॉलेज' वैसे तो एक लेक्चरर की है पर इसमें कॉलेज में हाल में दाखिला लिए किशोरों की बात हो रही है। पढ़ने में इनकी रुचि नहीं है, न ही इनमें उच्च शिक्षा की योग्यता है। कारण अमेरिका की शिक्षा व्यवस्था है। शिक्षा

व्यवस्था जिसकी दुहाई देते हम नहीं थकते हैं और जिसे बड़े गर्व के साथ हम अपना रहे हैं। यह शिक्षा पद्धति कई सवाल खड़े करती है, विमर्श उत्पन्न करती है। वहाँ स्कूल में छात्रों को फेल करने का नियम नहीं है, यही सिस्टम हमारे यहाँ भी लागू हो रहा है। अमेरिका में स्कूली शिक्षा के अंतिम साल परीक्षा में नब्बे प्रतिशत से ज्यादा अंक मिलते हैं, मगर ज्ञान के नाम पर ये शून्य होते हैं। साधारण गुणा जोड़-घटा भी बिना कैल्कुलेटर के नहीं कर सकते हैं। अमेरिका में जो छात्र उच्च शिक्षा चाहते हैं और हायर एजुकेशन की महंगी फीस वहन कर सकते हैं वे यूनिवर्सिटी में पढ़ने जाते हैं। जो फीस अफोर्ड नहीं कर सकते हैं वे कम्यूनिटी कॉलेज जाते हैं। अमेरिकी संस्कृति में माता-पिता बच्चों की उच्च शिक्षा के लिए जिम्मेदार नहीं होते हैं, बच्चे को खुद इसका इंतजाम करना होता है और अक्सर ऐसे बच्चे पढ़ने के साथ-साथ फीस का इंतजाम करने के लिए कोई पार्ट टाइम जॉब या नाइट शिफ्ट में काम करते हैं। सैंडर्स, कैथी, रिक, विलियम, केनेथ, डेविड और उहान नई-नई शिक्षिका बनी तनु के ऐसे ही विद्यार्थी हैं।

व्यक्तित्व का निर्माण वंशानुक्रमण तथा पर्यावरण से मिलकर होता है। इसमें जितना हाथ व्यक्ति के गुणसूत्र का होता है उससे कम उसके वातावरण का नहीं होता है। इसीलिए किशोरावस्था में बालक का विकास कैसा होगा यह उसके पारिवारिक वातावरण पर भी काफी हद तक निर्भर करता है। मानवशास्त्री मार्ग्रेट मीड किशोर के व्यवहार को उसकी संस्कृति और उसके लालन-पालन से जोड़ कर देखती हैं। इन अमेरिकी छात्रों को अपने अधिकार बखूबी ज्ञात हैं, चाहे जाने-न-जाने, निभाएँ या न निभाएँ। सैंडर्स देर तक सोता रहा, अत: टेस्ट देने समय पर न आ सका, बाद में पहुँच कर फोन से माँग करता है कि उसे प्रश्न पत्र दिया जाए, क्योंकि उसने टेस्ट की पूरी तैयारी की है। वह कॉलेज में है। तनु घर पहुँच चुकी है। तनु परीक्षा नियंत्रण कक्ष को प्रश्न पत्र भेजती है। कैथी इतनी गरीब है कि किताब कॉपी नहीं खरीद सकती है। किताब खरीदने के लिए नौकरी कर रही है, जब पैसे जुटेंगे तब खरीदेगी, तब तक क्या करें? तनु उसे अपनी किताब जो पढ़ने के लिए देती है और कैथी उसे लेकर गायब। अब तनु सेमिस्टर समाप्त होने पर किताब कहाँ से लौटाए? रिक ने बिना किसी कैल्कुलेशन से सवाल में मात्र उत्तर लिखा है, मगर जिद कर रहा है कि उसे पूरे अंक क्यों नहीं दिए गए। टेस्ट में वही सवाल पूछने हैं, जो क्लास में कराए गए हैं, तब भी रिक और विलियम उससे उलझते हैं। वह छात्रों के कहे अनुसार ग्रेडिंग्स नहीं करती है और एक छात्र डैनियल के साथ पूरी क्लास बाहर चली जाती है। कैनेथ क्लास में तीसरी बेंच पर बैठ कर मजे से खर्राटे भरता है। उहान का कैल्कुलेटर काम नहीं कर रहा है वह मौका मिलते ही तनु के कैल्कुलेटर से अपना वाला बदल लेती है। इतने पर ही तनु की समस्या समाप्त नहीं होती है, ये छात्र न केवल विभागाध्यक्ष से उसकी शिकायत करते हैं अपितु सोशल नेटवर्किंग का प्रयोग भी टीचर के प्रति अपनी भड़ास निकलने के लिए करते हैं।

तनु वर्मा के अध्यापन की निगरानी होती है, उसमें वह सफल हो जाती है और छात्रों को वार्निंग मिलती है कि यदि उन्होंने मिस बिहेव किया तो सिक्योरिटी पुलिस को बुलाया जाएगा। शिक्षा मॉरल पुलिसिंग तथा सिक्योरिटी पुलिस की निगरानी में शिक्षा संपन्न नहीं हो सकती है। अधिकांश छात्र तनु की गणित की क्लास छोड़ देते हैं कुछ इस लिये रुके रहते हैं क्योंकि उन्होंने उस सिड सेमेस्टर तक की फीस भरी हुई थी। शिक्षा इनके लिए एक कमोडिटी है। अधिकार के प्रति हद से ज्यादा आग्रही हैं, कर्तव्य की ओर से शून्य हैं। ये छात्र नशा करते हैं, क्लास में फोन पर बातें और वीडियो गेम खेलते हैं, डिस्को जाते हैं, गर्ल फ्रैंड्स के साथ घूमते हैं। टीचर का नजरिया इनके प्रति सकारात्मक नहीं हैं, तनु के अनुसार जीवन में इनका कोई ऊँचा ध्येय नहीं है। हद-से-हद मैक्डोनेल में काम करेंगे, सेल्समैन या फिर डिलीवरी ब्वाय बनेंगे। शिक्षा का लक्ष्य मात्र ऊँची नौकरी पाना नहीं होना चाहिए।

तनु ने कैल्कुलेटर और प्रोजेक्टर से पढ़ाने का प्रयास किया, नतीजा कुछ खास न निकला। अमेरिकी शिक्षा पद्धति की एक और विशेषता हमारे देश में भी लागू हो चुकी है, छात्रों द्वारा शिक्षक का मूल्यांकन। जाहिर-सी बात है जिस छात्र को कम नंबर आएँगे अथवा फेल होगा वह शिक्षक का मूल्यांकन नकारात्मक ही करेगा। मजे की बात है कि सारे समय मैनेजमेंट तनु से कहता है कि वह उसके साथ है, सेमेस्टर की समाप्ति पर उसे बधाई दी जाती है, डीन ने प्यार से भेंटा, हेड ने तारीफ की। लेकिन उसे अगले सेमेस्टर में पढ़ाने के लिए नहीं बुलाया गया। कहानी एक नकारात्मक नोट पर समाप्त होती है। बाद में उसे एक दूसरे कॉलेज में पढ़ाने के लिए कहा जाता है मगर वह नहीं जाती है। उसे फिर से इंटरव्यू देने के लिए बुलाया आता है मगर वह वहाँ भी नहीं जाती है। पाठक को लगता है

कि उसे इस तरह हार नहीं माननी चाहिए थी। खास करके जब उसने अगले सेमेस्टर में अपने पढ़ाने की स्ट्रेटजी बदलने की सोच रखी थी। अगर कुशल शिक्षक पढ़ाने से दूर हट जाएँगे तो युवाओं का क्या होगा। पहले ही वे दिग्भ्रमित हैं, उनका भविष्य तो और अंधकारमय हो जाएगा। तनु ने अनुभवहीन होने के कारण एकाध गलतियाँ की हैं मगर अनुभव होने के कारण वह छात्रों के लिए उपयोगी साबित हो सकती है, युवाओं को दिशा निर्देश दे सकती है। उनके अंदर जीवन के सकारात्मक विचारों, जीवन मूल्यों, उद्देश्यों के बीज डाल सकती है। खैर, यहाँ बात हो रही है किशोरों की। इस कहानी के किशोर दिशा भ्रमित, रुचि के विपरीत पढ़ने के नाम पर समय काटते, किसी के प्रति आदर सम्मान का भाव न रखने वाले हैं। जिस देश के ढेर सारे युवाओं की स्थिति ऐसी हो उस देश के भविष्य की दुर्दशा की कल्पना करना कठिन नहीं है। यदि समय रहते इस युवा पीढ़ी को संवेदनशील और जिम्मेदार न बनाया गया तो मानवता के भविष्य को खतरा हो सकता है।

सुषम बेदी की कहानी 'काला लिबास' भी शिक्षक-छात्र संबंध पर आधारित है लेकिन इसमें माता-पिता और संतान का संबंध प्रमुख है। भारतीय डॉक्टर दम्पति की अमेरिका में उत्पन्न संतान एक किशोरी की कहानी है यह। प्रारंभ से माता-पिता का, खासकर माँ का दबाव था कि वह उनकी तरह डॉक्टर बने। मगर अनन्या की इसमें रुचि नहीं है और वह अमेरिका के एक अन्य शहर में आकर भाषा पढ़ने लगती है। इसी वजह से वह कथावाचिका के संपर्क में आती है। जहाँ अन्य छात्र इस प्रोफेसर से तनिक डरे-सहमे रहते हैं अनन्या उसके ऑफिस में बहुत सहज अनुभव करती है। बच्चों की दृष्टि से कुछ नहीं छुपता है, अनन्या देखती है कि उसकी माँ भारतीय होते हुए भी स्वयं को किसी अमेरिकन जैसा दिखाना चाहती है। अनन्या अपनी प्रोफेसर को बताती है कि उसकी माँ के लिए सबसे ज्यादा अहं उसका करियर है... बाकी सब उसके बाद आते हैं।

बेटी को प्रोफेसर के कमरे में जितना अपनापन लगता है, उसकी माँ वहाँ उतना सहज अनुभव नहीं करती है। माँ बेटी का रूप-रंग एक जैसा है, उनकी मुद्रा दोनों के भिन्न स्वभाव को स्पष्ट करती है। माँ को बेटी की सुध तब आई जब बेटी हाथ से निकल चुकी है, मानसिक अस्पताल में भर्ती है। इसके पहले उसे बेटी के लिए फुरसत न थी। माँ को पता है कि बेटी अपनी इस प्रोफेसर के बहुत करीब थी अत: अब वह उससे मदद माँगने आई है। प्रोफेसर अनन्या से लगाव अनुभव करती थी और उसकी वर्तमान हालत से दु:खी थी। माँ के अनुसार किसी ने बच्ची पर कभी कोई दबाव नहीं डाला था। वह सारा दोष अनन्या के भारत जाने पर मढ़ती है।

अनन्या को भारत से लगाव था। हिंदी भाषा पढ़ती है और यूनिवर्सिटी के जूनियर 'इयर अब्रॉड प्रोग्राम' के तहत साल भर के लिए भारत जाती है। पढ़ाई के साथ-साथ कत्थक नृत्य सीखती है। वह भाषा या नृत्य पर अपनी थीसिस लिखना चाहती है। भारत से लौटने के बाद वह हर बात में भारत और अमेरिका में तुलना करती है और हर मामले में भारत को उच्च ठहराती है। वह जानती है कि वह अमेरिकन है लेकिन उसे वह देश पसंद नहीं है, वहाँ के लोग पसंद नहीं हैं। उसका दर्द है कि भारत में वह किसी को विदेशी नहीं लगती है जबकि जहाँ वह पैदा हुई, जहाँ उसका घर है, वहाँ हर नया मिलने वाला सबसे पहले यह पूछता है कि वह किस देश से है। जबकि वह उन्हीं की तरह वहाँ की नागरिक है। रूप-रंग-नस्ल व्यक्ति के अपना चुनाव न होते हुए भी उसकी सामाजिक स्थिति में मायने रखते हैं। उसे यह बात और भी बुरी लगती है कि उसके माँ-पिता भी इनके जैसे हैं। बड़ी बहन ने एक गोरे से शादी की। यूँ उसे इसमें कोई आपत्ति नहीं लगती है। अमेरिकी संस्कृति में पलने के कारण उसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करना अच्छा लगता है। उसे आपत्ति है कि उसके घर वाले अपने आपको गोरों जैसा समझते हैं। वह पढ़ाई के बाद भारत लौट जाना चाहती है। अमेरिका में जन्म ले कर भी वह प्रवासी है और प्रवासी जीवन के त्रास को भोग रही है।

संवेगात्मक अस्थिरता, ड्रग्स, अवसाद, आक्रामक व्यवहार, चिंता, तनाव, नींद की अस्थिरता और यौन संबंधित क्रियाकलाप, सामाजिक क्रियाकलापों में रुचि न लेना, उनसे दूर हो जाना, आत्महत्या की प्रवृत्ति, खंडित व्यक्तित्व आदि किशोरावस्था की प्रमुख समस्याएँ हैं। असल में अनन्या बहुत भ्रमित है। वह उम्र के उस दौर से गुजर रही है जब व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, अपनी जड़ों को जानना चाहता है। माता-पिता का मुखौटा वाला व्यवहार उसे उनसे विमुख करता है, वहीं विभागाध्यक्ष का भारत विरोधी रवैया उसे और बेचैन कर देता है। वह विद्रोह का खुल्लमखुल्ला बिगुल बजा देती है। काले लोगों की बस्ती हारलम में जाकर रहने लगती है। एक काले लड़के से दोस्ती कर लेती है। वह दूसरों को शॉक्ड करना चाहती

है। उसे उस काले लड़के का परिवार बहुत विनीत और सुसंस्कृत लगता है, सबसे बड़ी बात है, उसका पूरा परिवार संगीतमय है। खुद उसे भी संगीत अच्छा लगता है, बचपन में वह पियानो सीखती थी।

युवा अपना विद्रोह विभिन्न तरीकों से अभिव्यक्त करता है। अनन्या जबसे भारत से लौटी है उसने चटकीले रंगों के कपड़े पहनने शुरू कर दिए हैं। अपने विद्रोह को प्रकट करने के लिए एक दिन वह पूरे काले लिबास में कॉलेज आती है। वह जिद्दी और अड़ियल होती जा रही है। बात चलने पर वह कहती है कि भारत में स्त्रियों पर कोई जुल्म नहीं होता है, वे बहुत स्वतंत्र हैं, अमेरिकी स्त्री ज्यादा बंधन में है। अमेरिकी स्त्री की छवि भिन्न पेश की जाती है। उसकी प्रोफेसर यह कह कर बात समाप्त करती है कि जब वह भारत में रहने लगेगी तब उसे वहाँ की स्त्री की असली हालत पता चलेगी। अनन्या को शिकायत है कि जब भी भारत की बात आती है, केवल उसके नकारात्मक पक्ष को ही प्रस्तुत किया जाता है।

धीरे-धीरे अनन्या क्लास से गायब रहने लगती है। जब आती है, मानसिक रूप से कहीं और होती है। वह असहज और कठिन होती जा रही है। और एक दिन आता है जब वह विभागाध्यक्ष से लड़ पड़ती है। उसे लगता है कि वे इंडिया का अपमान करती हैं। वह एक टैक्सी में बैठकर एयरोड्रम जाना चाहती है ताकि भारत जा सके पर ड्राइवर उसे मेंटल अस्पताल में छोड़ आता है। चरम विद्रोह में व्यक्ति आत्मघाती हो उठता है। कई दिन से अनन्या का इलाज चल रहा है, डॉक्टर कहते हैं कि वह ठीक हो जायेगी। डीन ने उसके यूनिवर्सिटी में घुसने पर रोक लगा दी है। अस्पताल में उसके माता-पिता के अलावा उससे कोई और नहीं मिल सकता है। लड़की तनाव-दबाव में है उसे नर्वस ब्रेकडाउन हो गया है। किसी को उसकी संवेगात्मक स्थिति से कुछ लेना-देना नहीं है। माँ को चिंता है तो बस उसके साल नष्ट होने की, अत: वह किसी भी तरह उसकी डिग्री का इंतजाम करना चाहती है। इसके लिए वह सारे काम करवा लेने को तैयार है। अनन्या बहुत भ्रमित है। भारत के प्रति व्यामोह, माता-पिता द्वारा उपेक्षा, शिक्षकों द्वारा न समझे जाने की कसम, अंतत: वह स्वयं को सजा दे कर अपना विद्रोह प्रकट करती है। क्या वह कभी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो सकेगी?

आठ उपन्यास और दो कहानी संग्रह की रचनाकार सुषम बेदी भी 1979 में अमेरिका आ गई और 1985 से न्यूयॉर्क की कोलंबिया यूनिवर्सिटी में पढ़ाती रही हैं। इंग्लिश और हिंदी दोनों भाषाओं में बराबर लेखन करती हैं। साहित्य के अलावा वे नाटक में भी सक्रिय हैं। अमेरिका का भारतीय प्रवासी युवा, भले ही वह वहीं जन्मा हो, किन मानसिक-सामाजिक और संवेगात्मक संघर्षों से गुजर रही है 'काला लिबास' में वे इसे बखूबी चित्रित करती हैं।

सुधा ओम ढींगरा कहानी लिखने के सिवा और भी कई कार्य करती हैं। वे पत्रकार हैं तथा उत्तरी अमेरिकी की त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी चेतना' की संपादक रही हैं। अमेरिका में बसी सुधा अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति के कवि सम्मेलनों की संयोजक, 'विभूति' की सलाहकार हैं तथा 'प्रथम' की कार्यकारिणी सदस्या हैं। ये हिंदी तथा पंजाबी दोनों भाषाओं में समान रूप से लिखती हैं तथा अनुवाद कार्य भी करती हैं। अमेरिका का एक और चेहरा दिखाती है उनकी कहानी 'सूरज क्यों निकलता है'। परिवेश बदलने से कहानी के विषय में विविधता आती है। अमेरिका की चमक-दमक की शान-पट्टी खोलती सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' अपने छोटे से कलेवर में बहुत कुछ कह जाती है। कहानी का शुरुआती हिस्सा किसी भी अविकसित अथवा विकासशील देश की दृश्यावलि प्रस्तुत करता है। सड़क किनारे भीख माँगते लोग अमेरिका के तो नहीं हो सकते हैं। मगर हैं ये अमेरिका के लोग, यह दृश्य अमेरिका का है। अमेरिका ठहरा एक समृद्ध देश, भला वहाँ भिखमंगे क्यों होंगे? पर वास्तविकता वह नहीं है जिसे अमेरिका प्रदर्शित करता है, विज्ञापित करता है। इस खुशहाल देश में भी गरीबी, बेरोजगारी है। गरीबी और बेरोजगारी के अमेरिकी आँकड़े चौंकाने वाले हैं। मेहनतकश लोगों को प्रोजेक्ट करने वाले देश में भी कामचोर, आलसी लोग हैं। ऐसे लोग हैं जिन्हें मुफ्त की खाने की आदत पड़ गई है, जो मेहनत से कतराते हैं। काम करने के नाम से जिनकी नानी मरती है।

मगर ये लोग ऐसे क्यों हैं? पीटर और जेम्स ऐसे क्यों हैं? कहानी इसकी पड़ताल न करते हुए भी कुछ सूत्र थमा देती है। वेलफेयर स्टेट लोगों के भीतर काहिली पैदा करता है। किसी भी योजना को भुनाया जा सकता है, उसका दुरुपयोग किया जा सकता है। अमेरिकी सरकार सोचती है कि गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को फूड स्टैम्प देकर वह उनका भला कर रही है, इससे वे भूखे नहीं रहेंगे और खाना ही खाएंगे, अगर पैसा देंगे तो शराब व

सिगरेट खरीद लेंगे, पर निकालने वाले तो यहाँ भी रास्ता निकाल लेते हैं। दोनों भाई काहिल भले हों पर उनके दिमाग शातिर हैं।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' जेम्स और पीटर नामक ऐसे किरदारों को प्रस्तुत करती है जो कल्याणकारी राज्य की योजनाओं की धज्जी उड़ाते हैं। ये जुड़वां भाई भीख माँगते हैं, इसलिए नहीं कि इनके पास खाने को नहीं है, वरन् भीख माँगते हैं ताकि उनके कई दिन से सूखे गले को शराब और तने हुए शरीर को राहत मिल सके। जब लोग भीख नहीं देते हैं तो ये लोगों को अपशब्द कहते हैं, अमेरिका की मंदी को कोसते हैं। बदले में लोग भी इन्हें गालियाँ देते और धिक्कारते हैं, जिससे इन्हें ज्यादा फर्क नहीं पड़ता है। मुफ्त खाने के लिए मिले कूपन ये आधे दाम में बेच डालते हैं और खरीदार उससे अपना फायदा उठाते हैं। शैल्टर होम में सोना और सूप किचेन में मुफ्त का खाना खा कर ये बचत करते हैं। बैठे ठाले सरकार की आलोचना करना, मुफ्त के खाने में मीन-मेख निकालना, यही इनका काम है और इनकी हाँ-में-हाँ मिलाने वालों की कमी नहीं है। मतलब पूरी-की-पूरी पीढ़ी निकम्मी और बेगैरत है। कुछ भीख और खाने के कुछ कूपन बेचकर उससे मिले डॉलर से ये मस्ती करने निकलते हैं।

कहानीकार इसी समय इनके इतिहास को प्रस्तुत करती हैं। ये अपने नाना-नानी के घर में पले हैं, इनकी माँ ने इन लोगों की कभी परवाह नहीं की, इन्हें अपने पिता का भी पता नहीं है। ग्यारह भाई-बहनों में ये सबसे छोटे हैं। बहनें माँ के रास्ते पर चल रही हैं। उनके कई-कई बच्चे हैं। सरकार चूंकि बच्चों और अविवाहित माताओं का खर्च उठाती है अत: चिंता नहीं। कोई नशे की लत में है, कोई जेल में। यहीं इस बात का भी संकेत मिलता है कि ये अश्वेत हैं। पीटर और जेम्स की माँ टेरी अपनी माँ से कहती है कि वह क्यों काम करें, उसके पूर्वजों ने बरसों इन लोगों (इशारा श्वेत अमेरिकी लोगों की ओर है) की गुलामी की है। पूर्वजों के साथ दुर्व्यवहार हुआ है इसका बदला काम न करके लिया जाए? इस तरह की मानसिकता व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए कितनी खतरनाक हो सकती है, यह सोचने की बात है।

खैर दोनों भाई सज-धज कर एक सस्ते क्लब पहुँचते हैं। शराब पीकर लड़कियों के संग रात गुजारने के ख्वाब देखते हैं। शराब पी लेते हैं, जिन लड़कियों को तफरी के लिए चुनते हैं वे इनकी जेब साफ करके नौ-दो ग्यारह हो जाती हैं। पैसे न मिलने पर क्लब इन्हें उठाकर बाहर फेंक देता है। सुबह जब सूरज चढ़ आता है सफाई कर्मचारी इन्हें उठाते हैं तो इन दोनों को दिन उगना बड़ा नागवार गुजरता है। वे सूरज को भला-बुरा कहते हैं, उन्हें लगता है सूरज नाहक उन्हें परेशान करने चला आता है। क्यों उगता है यह सूरज। कहानी में प्रेमचंद के घीसू-माधव की झलक मिलती है। दोनों भाई जब देखते हैं कि उनकी जेबें साफ हो चुकी हैं तो वे उन दोनों लड़कियों को भी कोसते हैं। कहानी यहीं समाप्त होती है पर क्या असल में समाप्त होती है?

रचनाकार का परिवेश उसकी रचना को प्रभावित करता है। रचना का अध्ययन उस परिवेश से परिचय का एक बहुत अच्छा माध्यम है। प्रवासी हिंदी साहित्य के अध्ययन से हिंदी का कैनवास बड़ा होता है। उसमें विभिन्न रंग और रेखाएँ, नए-नए दृश्य नजर आते हैं। उनकी बहुरंगी हिंदी, हिंदी साहित्य को एक नया आकाश, उनकी रचनाएँ हिंदी साहित्य को एक नई धरती प्रदान करती हैं। हिंदी के क्षितिज का विस्तार होता है। सुदर्शन प्रियदर्शनी की 'अखबारवाला', इला प्रसाद की 'कॉलेज', सुषम बेदी की 'काला लिबास' और सुधा ओम ढींगरा की 'सूरज क्यों निकलता है' कहानियों में शिल्प का चमत्कार नहीं है। ये कहानियाँ अपनी सीधी-सरल शैली में अपना कथानक प्रस्तुत करती हैं और अमेरिका के अलग-अलग चेहरों को प्रस्तुत करती हैं। इन चेहरों को मिलाकर अमेरिका की जो तस्वीर उभरती है वह कतई काबिले-तारीफ नहीं है। दूर के ढोल सुहावने लग सकते हैं मगर वास्तविकता कुछ और है। यह तस्वीर भयानक है, इससे सावधान रहने की जरूरत है। कहानी जीवन को व्यक्त करती है, प्रवासी कहानी प्रवासी जीवन को व्यक्त करती है। इन कहानियों में अनुभव की विविधता है, ये वैश्विक अनुभव की कहानियाँ हैं। जैसा कि आजकल हिंदी में चलन है उसके विपरीत यहाँ किसी खास विचारधारा का आग्रह नजर नहीं आता है, ये किसी आंदोलन का अंग नजर नहीं आती हैं। ये कहानियाँ प्रवासी जीवन को शब्द दे रही हैं। इनमें ताजगी है। प्रवासी भारतीय के मूल्यों के द्वंद्व और अमेरिका की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक-शैक्षिक स्थिति को दर्शाती ये कहानियाँ हिंदी कथा साहित्य को रचनात्मक ऊर्जा से भरती हैं। प्रवासी कहानीकारों को लिखते जाना है क्योंकि अंतत: काम बोलता है।

✠✠✠

सोया हुआ हाथ नहीं

शालिग्राम शुक्ल

कौन यहां वाशिंगटन, लास ऐंजल्स, या न्यूयॉर्क में जानता है कि हम हिंदी के कवि या कथाकार हैं। कौन है जो हमें यहां या कहीं भी पढ़ता है। हम विदेश में रुक गए लेखक कई धरातलों पर जीते हैं। एक धरातल पर हिंदी साहित्य की परंपरा का बोध है जिससे न जाने कब जुड़ गई हैं अन्य साहित्य-परंपराएं। वहीं कहीं हैं स्वदेश की स्मृतियां जिनसे मिल गई हैं विदेश के प्रियजनों के रक्त, उनके दिल की धड़कनें और उनकी शंकाएं। और वे लोग भी वहीं कहीं हैं जिनसे यह जानते हुए भी अब हम कभी नहीं मिलेंगे हम बार-बार मिलने का वचन लिख दुहराते हैं, और जिनसे मिलकर भी हम मिल नहीं पाते।

सम्पर्क: 5018N, 11th Street Arlington, Virginia-22205, USA

स्वदेश के हिंदी लेखकों में कई वर्ग हैं। वहां कोई साहित्य की मैनेजरी करता है तो कोई साहित्य का व्यापार। ये मैनेजर और व्यवसायी साहित्य में दादागिरी करते प्राय: प्रकाशकों की दलाली करते हैं। हिंदी में कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं जो साहित्य की चौकीदारी करते हैं। क्या मजाल है कि कोई केवल अपनी रचना के बल पर हिंदी साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश कर सके। वहां कुछ ऐसे भी हैं जो साहित्य का पान चबाते सरकारी पदों पर आसीन हैं। वे प्राय: प्रतिष्ठित शक्तिहीन साहित्यकारों पर कृपा कर और उनकी कृतज्ञता की भंग छान अपने को भी काव्य-कृति समझते हैं। कई साहित्यकार ऐसे हैं जो हिंदी साहित्य के इन मैनेजरों, व्यवसाइयों और चौकीदारों से वाग्युद्ध करते-करते वृद्ध होते जा रहे हैं। इन सबके बीच कुछ ऐसे भी हैं जो इन कई दलों को प्रसन्न किए साहित्य-क्रिया में लगे हार-जीत के गोते खाते प्रकाशकों की स्वार्थ सिद्धि का माध्यम बने अपने बचे-खुचे अहंकार के सहारे जिए जा रहे हैं। हिंदी साहित्य की इस सामयिक पृष्ठभूमि में हम और हमारी रचनाएं कहां बैठती हैं, कहां फिट होती हैं, यह समय ही बतलाएगा। बहरहाल, इस समय तो हम इन सबसे दूर विदेश में हैं।

कहां विदेश का साफ-सुथरा चमकता माहौल और कहां स्वदेश का धूल-भरा मैला आंचल। जब यहां की हरियाली देखता हूं तो अक्सर बनारस की गायें याद आती हैं। वे यहां कितनी सुखी और संतुष्ट होतीं। पर वे यहां सिवा मांस के टुकड़ों के और किसी रूप में न देखी जातीं। इसलिए अच्छा ही है कि वे बनारस में ही हैं, दुर्बल ही सही। यहां की हरी घास चरते भारतीयों से पूछें कि क्या वे सुखी और संतुष्ट हैं? जिनका सर्वनाश हो चुका है वे कहेंगे कि हां वे संतुष्ट हैं। पर जिनका सर्वनाश नहीं हुआ है उनमें कुछ बनारस की गायों की ईर्ष्या करते हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा में साहित्य रचना करते हैं। साहित्य किसी को सर्वनाश से बचा भी सकता है इसका विदेश के ये कुछ अच्छा-बुरा लिखते भारतीय प्रमाण हैं।

विदेश एक बड़ा शीशा है जिसमें प्रकाश है, तरल धाराएं हैं, स्मृतियां हैं और नए भ्रमित कर देने वाले अनुभव हैं। साहित्य ही हमें अपनी खबर देता है; वरना इस शीशे में तैरते अपने होने से भी हम बेखबर रहते। पर क्या साहित्य एक ऐसी प्यास नहीं है जो कभी नहीं बुझती? एक अंतहीन हवस। साहित्य लेखा-जोखा

है जीवन की अनिवार्य हार का, किसी को दी गई भोगी गई क्रूरताओं का, अदम्य जीवनदायिनी वासनाओं का, जीवन को समझने के प्रयासों का, और उस उदासी का जो गोधूलि-सी पेड़ों पर, आकाश में, पानी पर—सर्वत्र छाई रहती है। साहित्य दूर की चीजों के लिए मन में घर कर गया पछतावा है। हमें पुकारती हुई खो गई पुकार है और उसकी प्रतिध्वनि भी।

कौन यहां वाशिंगटन, लास ऐंजल्स या न्यूयॉर्क में जानता है कि हम हिंदी के कवि या कथाकार हैं। कौन है जो हमें यहां या कहीं भी पढ़ता है। हम विदेश में रुक गए लेखक कई धरातलों पर जीते हैं। एक धरातल पर हिंदी साहित्य की परंपरा का बोध है जिससे न जाने कब जुड़ गई हैं अन्य साहित्य-परंपराएं। वहीं कहीं हैं स्वदेश की स्मृतियां जिनसे मिल गई हैं विदेश के प्रियजनों के रक्त, उनके दिल की धड़कनें और उनकी शंकाएं। और वे लोग भी वहीं कहीं हैं जिनसे यह जानते हुए भी अब हम कभी नहीं मिलेंगे, हम बार-बार मिलने का वचन लिख दुहराते हैं, और जिनसे मिलकर भी हम मिल नहीं पाते। न जाने कितनी गलियों की गूंज लिये गलियां हैं जो हमें भटकाती घर तक पहुंचाने की आवाज देती हैं। इन्हीं गलियों की गूंज को रुपायित करते हम कवि और कथाकार हैं। साहित्य हमारे लिए न तो व्यवसाय है, न टूटे हुए अहंकार की कांच का रंगीन टुकड़ा। वह हमारी एक आवश्यक आवश्यकता है। हमारी रचनाएं कसी मुट्ठी की तरह हो गए हमारे दिलों को एकांत में हलके से सहलाती है, उन्हें ढीला करने का भ्रम पैदा करती हैं।

हमारे होने के केंद्र में कौन-सा रहस्य हैं? प्रकृति में क्यों हम अपनी पुकारों की प्रतिध्वनि पाते हैं? बचपन में स्मृतियां और वासनाओं की गंध और रंग लिये हमारी रचनाएं जीवन में दिग्भ्रमित होने से कब तक हमारी रक्षा कर सकेंगी? लट्टू की तरह चक्कर खाते हम कब चारों दिशाओं में आंखें गड़ाए हिंदी भाषा में विश्वास करते रहेंगे? सूर्यास्त हमें यहां भी उसी तरह आधे मिटे सपनों की याद दिलाता है और रात होते यहां भी बहुत कुछ आकारहीन हो जाता है और तब अवयव में पीड़ा भरी कमान उतर आती है।

हमारे हर अनुभव और अभिव्यक्ति का मूल अभी भी स्वदेश की भूमि में सिंचित होता है बावजूद इसके कि उन्हें विदेश में ही आकर मिलता है। इसमें कोई विरोधाभास नहीं—यह हमारे कृतित्व और व्यक्तित्व की पहचान है। सत्य तो यह है कि एक ही साथ हमारी कृतियां यहां हैं और अन्यत्र भी और हमारा जीवन यहां हैं और अन्यत्र भी। इसमें भी हमारे कृतित्व और व्यक्तित्व की पहचान है। अतीत हमारे वर्तमान में भी है और भविष्य में भी। और उस अतीत में केवल बंधु-बांधव ही नहीं हैं बल्कि शहर हैं, पेड़ हैं, और राहें हैं जिन पर अब लोग केवल विचारों में चलते हैं। इस तरह बहुत कुछ हममें जीवित हमारी संवेदना में चैतन्य है, जैसे दिन का दहकता प्रचंड सूरज रात के पत्तों में।

हमारे बच्चे यहां दो अलग भाषाओं और सभ्यताओं में जीते बड़े हो रहे हैं। उनके आने वाले दिनों की चिंता में जब हमें नींद नहीं आती, और रातें बड़ी देर से आतीं, और आई नहीं कि खत्म हो जाती हैं, तब हम शब्दार्थों के भ्रम में न पड़ें तो जिएं कैसे। जिस्म की हरारत से कहीं अधिक जानलेवा होती है मन की हरारत, जिसकी दवा केवल कला में है, खासकर उनके लिए जो अब अनिकेतन हो चले हैं। ज़िंदग़ी का ताल्लुक जब ऐसे समयों में हो चला हो जो हमेशा अब अतीत में ही रहेंगे ता फिर ज़िंदग़ी को कायम करने का साहित्य के अलावा और कौन-सा जरिया है। मरना इतना आसान नहीं—चट्टान पर भी दूब उगती है। ढेर से साधारण दिनों बीच किसी असाधारण दिन की किसे प्रतीक्षा नहीं होती। हम किसी दिन जब कुछ ढंग का लिख लेते हैं तो वह दिन हमारा प्रतीक्षित असाधारण दिन हो जाता है। अगर किसी को यहां अक्सर स्वदेश की कोई नदी दिखाई पड़े जहां किसी की चिता जले अब साल-भर हो चले हैं, और उसकी याद हर रात आए, और इसकी चर्चा वह किसी से न कर सके तो वह क्या करे?

हिंदी साहित्य में संभवत: उतना वैविध्य न मिले जितना विदेश में लिखे जाते हिंदी साहित्य में। यहां तो कोई छायावाद के भी पहले का है, तो कोई छायावादी है, तो कोई फिल्म के स्तर के गीत लिख अपने को कलम का सिपाही समझे बैठा है। यहां जगह-जगह होती गोष्ठियों में साहित्य के इतिहास का समय थम-सा गया लगता है।

लेकिन सफल कविता या कहानी लिखना किसी अदृश्य के साथ युद्ध करना है जिसमें हमारी हार निश्चित है। कला के क्षेत्र में कोई सफल नहीं होता—कोई बुरी तरह हारता है तो कोई बहुत बुरी तरह। संभवत: यहां विदेश में हमारी हार कुछ आसानी से हो जाती है। हम स्वदेश की ऐंठती चैतन्य भाषा को केवल नींद में पाते हैं। नई उक्तियां, नई लक्षणा और व्यंजना हमारी भाषा में न होने से हम स्वदेश के पाठकों को पराए लगते हैं—जबकि हम पराए नहीं हैं। दूर देश में उड़ गए परिंदों से हमने बड़ी दूरियां तय की हैं और न जाने कितने विभिन्न सूर्यास्त देखे हैं। उन सूर्यास्तों के रंग हमारी अभिव्यक्तियों की विशेषता है। हमने बहुत कुछ खोकर कुछ पाया भी है जो विशिष्ट हैं। हममें जो निर्मम आत्म-आलोचक हैं, जिन्हें अपने साहित्य की तथा अन्य साहित्यों की परंपरा का बोध है, जो गोष्ठी में मात्र मनोरंजन करने-करानेवालों की गणना में नहीं आते, और जिनके लिए साहित्य सांस लेने की तरह है, उनकी रचनाएं हिंदी साहित्य का चैतन्य अंग हैं—सिरहाने धरा सोया हुआ हाथ नहीं। ✠✠✠

छठी इंद्रिय हास्य की इंद्रिय

मूलः मुश्ताक अहमद यूसुफी
अनुवादः डॉ. आफताब अहमद

अमेरिका में हिंदी और उर्दू को वैसा भिन्न नहीं मानते जैसा भारत में है। शिक्षण में हिंदी पढ़ने वालों को उर्दू भी पढ़ना होता है। दोनों भाषाओं के विभाग भी कई विश्वविद्यालयों में एक है। कैसी उर्दू वहाँ हिंदी के साथ है, उसके एक प्रतीक रूप में यह लेख है जो न्यूयार्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से संबंद्ध व्याख्याता द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिनके विभाग का नाम है 'हिंदी-उर्दू विभाग'
—संपादक

अंग्रेजी के महान लेखक डॉक्टर सैमुएल जॉनसन का यह कथन दिल की स्याही से लिखने योग्य है कि जो व्यक्ति रुपये के लालच के अलावा किसी और भावना के तहत किताब लिखता है, उससे बड़ा मूर्ख धरती पर कोई नहीं। हम भी इस सिद्धांत से शब्दशः सहमत हैं, बशर्ते कि किताब से तात्पर्य वही है जो हम समझे हैं, यानी चेक-बुक या रोकड़-बही। प्रस्तावना में यह स्पष्टीकरण अत्यंत आवश्यक है कि यह किताब किस माली या इल्हामी दबाव से निढाल होकर लिखी गयी। चुनांचे जो लिखारी जहीन हैं, वे मुश्क की तरह खुद बोलते हैं। जो जराज् या दाजहीन हैं, वे अपने कन्धों पर दूसरों से बंदूक चलवाते हैं। स्वयं प्रस्तावना लिखने में वही सुविधा और लाभ निहित हैं, जो आत्महत्या में होते हैं। यानी मृत्यु की तिथि, हत्या का हथियार और दुर्घटना-स्थल का चुनाव संबद्ध व्यक्ति स्वयं करता है। और पाकिस्तानी दंड संहिता में यह एकमात्र अपराध है, जिसकी सजा सिर्फ इस स्थिति में मिलती है कि मुल्जिम जुर्म अंजाम देने में कामयाब न हो। 1961 में पहली नाकाम कोशिश के बाद अल्लाह का शुक्र है कि हमें एक बार फिर यह अपने हाथ से लिखने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तीशे बगैर मर न सका कोहकन असद।

इंसान को हैवान-ए-जरीफ कहा गया है। लेकिन यह जानवरों के साथ बड़ी नाइंसाफी है, इसलिए कि देखा जाए तो इंसान एकमात्र जानवर है जो मुसीबत पड़ने से पहले मायूस हो जाता है। इंसान एकमात्र जानदार है, जिसे सृष्टा ने अपने हाल पर रोने के लिए विलाप-ग्रंथियाँ प्रदान की हैं। अधिक प्रयोग से ये बढ़ जाएँ तो संवेदनशील व्यंग्यकार दुनिया से यूँ खफा हो जाते हैं जैसे पिछले जमाने में मालिक नमक-हरामों से रुठ जाया करते थे। दूसरों की लड़खड़ाहट पर उन्हें हँसी के बजाए क्रोध आ जाता है। बुद्धिमान लोगों का एक वर्ग वह भी है जो मूर्खों का अस्तित्व सिरे से बर्दाश्त ही नहीं कर सकता। लेकिन जैसा कि मार्को-द-साद (Marcos De Sade) ने कहा था, वे यह भूल जाते हैं कि सभी मनुष्य मूर्ख होते हैं। महोदय ने तो यह मशवरा भी दिया है कि अगर तुम वाकई किसी मूर्ख की सूरत नहीं देखना चाहते तो खुद को अपने कमरे में ताला लगाकर बंद कर लो और आईना तोड़कर फेंक दो।

सम्पर्कः व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क

लेकिन हास्य-लेखक के लिए नाराजगी, नसीहत और निंदा हराम है। वह अपने और कड़वी हकीकतों के बीच कहकहों (ठहाकों) की एक आदम-कद दीवार खड़ी कर लेता है। वह अपना हँसता हुआ मुखड़ा, सूरजमुखी फूल की मानिंद, हमेशा प्रकाश के स्रोत की ओर रखता है और जब उसका सूरज डूब जाता है तो अपना रुख उस दिशा में कर-लेता है, जिधर से वह फिर उदय होगा।

हर जगह सूरज देखता हूँ, हर चीज को सूरज कहता हूँ
न रात हूँ, न रात का पुजारी, कि ख्वाबों की बात करता हूँ

हास्य की इन्द्रिय ही दरअसल इंसान की छठी इन्द्रिय है। यह हो तो इंसान हर मुकाम से आसानी से गुजर जाता है।

यूँ तो हास्य, धर्म और अल्कोहल हर चीज में आसानी से घुल जाते हैं, विशेष रूप से उर्दू साहित्य में। लेकिन हास्य के अपने तकाजे, अपनी संस्कृति, अपने शिष्टाचार हैं। पहली शर्त यह कि आक्रोश, खीज और द्वेष दिल में राह न पाए। वर्ना यह बूमरैंग पलटकर खुद शिकारी का काम तमाम कर देता है। मजा तो जब है कि आग भी लगे और कोई उंगली न उठा सके कि 'यह धुआँ सा कहाँ से उठता है?' हास्य-लेखक उस समय तक मंद-मुस्कान का पात्र नहीं, जब तक उसने दुनिया और दुनिया वालों से रज-के प्यार न किया हो। उनसे, उनकी संगदिली और उपेक्षा से। उनके पाप और पवित्रता से। एक पैगम्बर के दामन पर पड़ने वाला हाथ गुस्ताख जरूर है, मगर प्रेमासक्त व अनुरागी भी है। यह जुलेखा का हाथ है। सपने को छूकर देखने वाला हाथ।

हवा के हाथ में नरमी है उनके हाथों की

एक शैलीकार लेखक ने, जो काव्य-मर्मज्ञ होने के अतिरिक्त हमारे पक्षधर भी हैं (तुझे हम वली समझते जो न सूदखोर होता—की हद-तक) एक पत्रिका में दबी जबान से यह शिकायत की कि हमारा ललित-लेखन वर्तमान समस्याओं के प्रतिबम्ब और राजनीतिक भावना व संवेदनशीलता से रिक्त है। अपनी सफाई में हम संक्षेप में इतना ही निवेदन करेंगे कि ताने व गाली से यदि दूसरों का सुधार हो जाता तो बारूद ईजाद करने की जरुरत पेश न आती। मौलाना रूमी जो संकेतों में सब कुछ कह जाते हैं, एक अंधेरी रात की बात सुनाते हैं। फरमाते हैं कि जंगल-बियाबान में एक बच्चा अपनी माँ से चिमटकर कहने लगा कि माँ! अँधेरे में मुझे एक काला देव नजर आता है और मारे डर के मेरी तो घिग्घी बंध जाती है। माँ ने जवाब दिया, बेटा तू मर्द बच्चा है। खौफ को दिल से निकाल दे। अबकी दफा वह जैसे ही दिखाई दे, आगे बढ़ के हमला कर देना। वहीं पता चल जाएगा कि हकीकत है या तेरा वहम। बच्चे ने पूछा, माँ! अगर उस काले देव की माँ ने भी उसे यही नसीहत दे कर रखी हो तो— ?

कुछ इलाज इसका भी ऐ शीशा-गराँ है कि नहीं?

कुछ दिन बाद वह पत्रिका जो बुद्धजीवियों की अगुआ थी और जिसमें प्रस्तुत लेखक की राजनीतिक असंवेदनशीलता व अरुचि का निदान किया गया था, नवाब काला बाग के हुक्म से बंद कर दी गई। हमारे कद्रदान ने एक पी.डबल्यू.डी. के ठेकेदार के यहाँ पब्लिसिटी मैनेजर की हैसियत से नौकरी कर ली। इस फकीर ने भी स्नेह-हीन मित्रों और अशांत शहर से विदाई ली और बोरिया बधनी बाँध, दाता की नगरी (लाहौर) की राह ली।

वह रेगिस्तान को गया और हम गलियों में रुसवा हो रहे हैं।

'प्रोफेसर', 'बारे आलू का कुछ बयाँ हो जाए' और 'बाइफोकल क्लब' इसी प्रेम-यात्रा की यादगार हैं। पढ़ने वालों को इनका रंग अलग नजर आए तो यह जिन्दा-दिलान-ए-लाहौर की संगत का फल है।

लोग क्यों, कब और कैसे हँसते हैं? जिस दिन इन सवालों का सही-सही जवाब मालूम हो जाएगा, इंसान हँसना छोड़ देगा। रहा यह सवाल कि किस पर हँसते हैं? तो यह सरकार की सहन शक्ति व सहिष्णुता पर निर्भर है। अंग्रेज सिर्फ उन चीजों पर हँसते हैं, जो उनकी समझ में नहीं आतीं----पंच के चुटकले, मौसम, औरत, अमूर्त-कला। इसके विपरीत, हम लोग उन चीजों पर हँसते हैं, जो अब हमारी समझ में आ गयी हैं। मसलन अंग्रेज, इश्क या शायरी, रूपया कमाने के उपाय, मौलिक लोकतंत्र।

फकीर की गाली, औरत के थप्पड़ और मसखरे की बात से दुखी या क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। यह निर्णायक कथन हमारा नहीं, मौलाना ऊबैदजाकानी का है। (अज दुश्नाम-ए-गदायाँ वसै लिए जनाँवजबान-ए-शायराँ व मसखर गाँमरंजीद) हास्य-लेखक इस लिहाज से भी फायदे में रहता है कि उसकी बड़ी-से-बड़ी गलती के बारे में भी पढ़ने वाले को यह अंदेशा लगा रहता है कि मुमकिन है, इसमें भी मजाक या मनोरंजन का

कोई सूक्ष्म पहलू पोशीदा हो, जो शायद मौसम की खराबी के सबब उसकी समझ में नहीं आ रहा। इस मौलिक अधिकार से हाथ खींचे बिना, यह स्वीकार कर लेने में बिल्कुल हर्ज नहीं कि हम भाषा और व्याकरण की पाबंदी को व्यर्थ का प्रयास नहीं मानते। अपनी अयोग्यता स्वीकार करना इसलिए और भी जरूरी है कि आजकल कुछ लिखारी बड़े प्रयास व परिश्रम से गलत भाषा लिख रहे हैं। हाँ, कभी-कभार बे ध्यानी या सिर्फ आलस्य में सही भाषा लिख जाएँ तो और बात है। भूल-चूक किस से नहीं होती?

परम आदरणीय विद्वान जनाब शानुल-हक-हक्की साहब ने जिस ध्यान और प्रेम से मेरे लेखों का अध्ययन फरमाया उसके लिए यह लेखक अत्यंत कृतज्ञ है। उन्होंने न सिर्फ मुफीद मशवरों से नवाजा, बल्कि यह कहकर लेखक का दिल बढ़ाया कि आप कहीं-कहीं घिसे-पिटे मुहावरे प्रयोग कर जाते हैं, मगर आपका इमला बेहद ''ओरिजिनल'' है। चुनांचे कई शब्दों का इमला हमने उन्हीं से सीखा। मसलन यह उन्हीं से मालूम हुआ कि ''तोता'' का सही इमला 'ते' अक्षर के बजाय 'तो' से है! इमला सुधारने के जोश में हम तो 'तवायफ' को भी 'ते' से लिखने पर तैयार थे, मगर इसमें तोते वाली बात दिल को नहीं लगी। इसलिए कि 'तोते' को अगर 'तो' से लिखा जाए तो न सिर्फ यह कि ज्यादा हरा मालूम होता है, बल्कि 'तो' का दायरा जरा ढंग से बनाएँ तो चोंच भी नजर आने लगती है।

और झूठ क्यों बोलें, तावायफुल-मुलूकी (अराजकता) का सही अर्थ भी हक्की साहब ही ने बताया वर्ना हम तो कुछ और समझे बैठे थे। अरबी और फारसी में बस इतनी शुद-बुद है कि मैट्रिक तक हम 'ऐजन' (वही) को किसी आशु-शायर का तखल्लुस (उपनाम) समझकर हर-हर ग़ज़ल के 'ऐजन' पर अपना खून खौलाते रहे। अल्लाह उनका भला करे! 'राहजन' (लुटेरा) के शाब्दिक अर्थ मिर्जा ने उसी जमाने में 'जन-ए-बाजारी' (वेश्या) बताए थे! और सच तो यह है कि जबसे इसके सही मतलब मालूम हुए हैं, 'गालिब' और 'आतिश' के मिसरों 'होकर असीर दाबते हैं राहजन के पाँव और 'हजार रहजन-ए-उम्मीदवार राह में है' का सारा मजा ही जाता रहा! अब कहाँ से लाऊँ वो अज्ञानता के मजे?

चूँकि हक्की साहब शोध के मैदान के मर्द हैं, उन्हें प्राचीन शब्दों और घटनाओं के अलावा कोई और बात मुश्किल से याद रहती है। मसलन वे यह फौरन बता देंगे कि अमुक शब्द कब अप्रचलित हुआ। उस्ताद (गालिब) के कलाम में 'आईना' कितनी दफा आया है। 'सितम-पेशा डोमनी' ने 'मुगल बच्चा' (गालिब) को किस सन में विरह का घाव दिया। 'उस्ताद' के मकान का पता और बकाया किराया क्या था। लेकिन अपने मकान का नम्बर बताने के लिए उन्हें बेगम से संदेहों का आदान प्रदान करना पड़ता है। वे खुद भी अपनी गैर-हाजिर दिमागी के चुटकलों, का खूब मजा लेते हैं। एक दिन The Absent Minded Professor फिल्म की अग्रिम बुकिंग के 'क्यू' में मुलाकात हो गयी। थोड़ी देर बाद हम दोनों क्यू से इस पर बहस करते हुए गुत्थम-गुत्था निकले, बल्कि निकाले गए, कि सही लफ्ज 'कमीज' है या 'कमीस'। मिर्जा से संपर्क किया तो फरमाया, सही पहनावा बुशर्ट है! बाहर निकले तो हमने अपनी कार का दरवाजा खोला और हक्की साहब शुक्रिया करते हुए दाखिल हो गए। दाखिल ही नहीं हुए बल्कि स्टीयरिंग व्हील सँभाल लिया। अपने जेब की अंदरूनी और बाहरी जेबों को खंगालने के बाद हाथ की इत्तिफाकी रगड़ से हमारी पतलून की जेब को भी टटोल लिया। आखिरकार अपने / अपनी कमीज/ कमीस की जेब से एक चाबी बरामद की। पूरा जोर लगाने के बावजूद यह चाबी न लगी तो फरमाया इस कमबख्त ड्राइवर को हजार बार कह चुका हूँ कि किसी और वर्कशॉप में सर्विसिंग कराये। जब भी सर्विस होती है एक नई खराबी पैदा हो जाती है। हमने हिम्मत करके निवेदन किया, कुसूर दरसल हमारी कार के सूराख का है, जो आपकी चाबी में फिट नहीं हो रहा। चमककर बोले, हाँ! कुसूर पर खूब याद आया! आपने एक जगह 'फोतीदगी' (मृत्यु) लिखा है। यह मारवाड़ियों जैसी उर्दू आपने कहाँ से सीखी? निवेदन किया, मारवाड़ में जहाँ हम पैदा हुए। हमें कार से उतारकर फुटपाथ पर गले लगाते हुए बोले, तो यानी उर्दू आपकी मादरी जबान (मातृभाषा) नहीं है! हालाँकि आपकी अहलिया (बीवी) तो अहल-ए-जबान (मातृभाषी) हैं!

खुदा उन्हें खुश रखे कि उन्होंने हमारी उर्दू की नोक-पलक सँवारने में हमारी बेगम का हाथ बटाया है।

✠✠✠

रंगभेद अमरीका में आज भी...

कमल कुमार

सन् 1960-70 तक अफ्रीकी और श्वेतों के बीच घमासान लड़ाईयाँ होती थीं। स्कूलों में अमरीकी छात्र और अफ्रीकी छात्रों के बीच जब-तब खून की होली खेली जाती थी। सबके रोकने पर भी मैं नीग्रो बस्ती में गई थी थोड़ा-सा जोखिम उठाकर! वहाँ वैसी ही बदहाली थी जैसी हमारी झोपड़-पट्टी बस्तियों में होती है। मैंने देखा था इस फर्स्ट वर्ल्ड कंटरी में, सुख समृद्धि के देश में आज भी अफ्रीकी नागरिक गरीबी, भुखमरी, बदहाली और शर्मिंदगी में जी रहा है।

सम्पर्क: डी-38, प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नई दिल्ली-110017, मो: 9810093217

कुछ समय पहले अमरीका गई थी, मैंने सबके विरोध में ग्रेहाउंड में लम्बी यात्रा की थी। वांशिगटन डी.सी. से मैं जार्जिया अटलांटा तक गई थी। ग्रेहाउंड बसों में आमतौर पर नीग्रो यात्री और कॉलेज के छात्र अथवा थोड़े से एशियन मूल के उनमें ज्यादातर भारतीय, पाकिस्तानी यात्री होते हैं। अपवाद स्वरूप इक्का-दुक्का श्वेत यात्री भी कभी कभार आ जाते हैं। यूँ इन बसों में पूरा आराम है, सारी सुवधिाएं हैं। यहाँ तक कि जन सुविधाएं भी हैं।

एक जगह बस रुकी थी। कुछ सवारियाँ उतरी थीं और दूसरी चढ़ गई थीं। बस चलने लगी तो एक अफ्रीकी स्त्री के इशारे पर बस रोक कर ड्राईवर ने उसे चढ़ाया था। मेरे सामने वाली सीट पर एक श्वेत स्त्री पहले से बैठी हुई थी। वह अफ्रीकी स्त्री श्वेत स्त्री के साथ ही खाली सीट पर बैठ गई थी। श्वेत स्त्री एकाएक पलटी थी और उसने उस अफ्रीकी औरत के मुँह पर थूक दिया था। सब ने देखा पर किसी ने कुछ नहीं कहा। वह अफ्रीकी स्त्री उठी थी और पीछे जाकर कोने की एक खाली सीट पर बैठ गई थी। पर्स से उसने पेपर का रूमाल निकाला था और अपना चेहरा पोंछ लिया था। वह सामान्य होकर बैठ गई थी। मैं हकबका कर उठ खड़ी हुई थी। परेशान सब की तरफ देख रही थी लेकिन सब बेपरवाह थे। वहाँ बैठी एक छात्रा ने मेरी बेचैनी को देखकर कहा था ''आप बैठ जाइये! यहाँ यह आम बात है। सार्वजनिक रूप से इन्हें तिरस्कृत किया जाता है। इनकी यही नियति है। इस अफ्रीकी औरत को उस अमरीकी औरत की बगल में बैठना ही नहीं चाहिए था।''

न्यूयार्क में 'स्टैचु आफ लिबर्टी' देखने हज़ारों दर्शक आते-जाते हैं। उसके पास खुली जगह में मैंने देखा था वहाँ अफ्रीकी युवा लड़के लड़कियां टी-शर्ट, हॉफ पैन्टस, रूमाल जैसी छोटी-छोटी जरूरत की चीज़ें बेच रहे थे। मैंने वाशिंगटन डी.सी. में, जार्जिया में और न्यूयार्क मैनहटन में कई शैंटी मार्केट देखी थी, जहाँ की सभी दुकानें अफ्रीकी नागरिकों की थी।

न्यूयार्क में मेरी मुलाकात एक 'मॉल' में नामज़ा, एक अफ्रीकी युवती से हुई थी। वह बड़ी भावुक सी, प्यारी सी युवती थी। वह

कविता भी लिखती थी उसने मुझे बताया था। वह जल्दी ही मेरे बहुत करीब आ गई थी। उस दिन मैं देर शाम 'मॉल' पर पहुँची तो 'मॉल' ग्राहकों के लिए बंद हो चुका था। मुझे वह शाम नोमजा के साथ ही गुजारनी थी। वहाँ नोमज़ा के साथ दो-तीन अफ्रीकी लड़कियाँ थीं जो सबके जाने के बाद फर्श की सफाई, बाथरूम की धुलाई और फर्नीचर, अलमारियों की झाड़-पोंछ के काम में लगी हुई थीं। उनको दिन भर की सभी चीज़ों को व्यवस्थित करना था। दिन में वहाँ दूसरी श्वेत लड़कियां भी थीं, लेकिन इस समय वहाँ यही अफ्रीकन चार लड़कियां थीं। नोमज़ा ने बताया था, ये काम हमीं को करना होता है। यह बिना लिखी शर्त है और भी कई ऐसी शर्तें होती हैं जो हमारे लिए और श्वेत कर्मियों के लिए अलग-अलग होती हैं। पर हम इस सबको स्वीकारते हैं। हमारे पास दूसरा कोई चारा नहीं होता। वास्तविकता यह है कि सन् 1955 तक सार्वजनिक परिवहनों में, बसों, स्कूलों, रेस्तरां में सार्वजनिक स्थानों पर अफ्रीकी नागरिकों के साथ भेदभाव किया जाता था, उनका तिरस्कार करना, उनको अपमानित करना आम बात होती थी। यूँ इसके विरोध में आंदोलन भी हुए, पर बहुत कम ही अफ्रीकी थे जो किसी सम्मानित ऊँचे पद पर पहुँच कर थोड़ा सा आदर पा सकने की योग्यता प्राप्त करते थे पर आदर पाने की गारंटी नहीं।

सन् 1960-70 तक अफ्रीकी और श्वेतों के बीच घमासान लड़ाइयाँ होती थीं। स्कूलों में अमरीकी छात्र और अफ्रीकी छात्रों के बीच जब-तब खून की होली खेली जाती थी। सबके रोकने पर भी मैं नीग्रो बस्ती में गई थी थोड़ा-सा जोखिम उठाकर! वहाँ वैसी ही बदहाली थी जैसी हमारी झोपड़-पट्टी बस्तियों में होती है। मैंने देखा था इस फर्स्ट वर्ल्ड कंटरी में, सुख समृद्धि के देश में आज भी अफ्रीकी नागरिक गरीबी, भुखमरी, बदहाली और शर्मिंदगी में जी रहा है। अलगाववाद, अन्याय और उत्पीड़न सह रहा है। सवैंधानिक दृष्टि से, राजनैतिक नीतियों के तहत हर नागरिक को समानता का अधिकार है। दिखाने के लिए वहाँ मीडिया में, टी.वी. अखबारों में, दीवारों पर बड़ी-बड़ी होर्डिंगों में, विज्ञापनों में श्वेत और अश्वेत नागरिकों को साथ-साथ दिखाया जाता है। सौ साल हुए जब आज़ादी के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर हुए थे। पर आज भी वहाँ अफ्रीकी नागरिक गुलामी की और भेदभाव की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। सन् 1960 में मार्टिन लूथर ने एक सपना देखा था जार्जिया (इस देश) में सभी नागरिक, काले गुलाम भी इंसान की तरह जी सकेंगे (जिन्हें खेती और खनन के लिए गुलाम बनाकर लाया गया था)। उनकी चमड़ी के रंग के आधार पर उनसे भेदभाव नहीं किया जाएगा। उन्हें सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक न्याय और आजादी मिलेगी। उनके सम्मान की रक्षा होगी। वे अपने को इस देश का नागरिक होने में गौरव का अनुभव करेंगे। साथ ही देश के विकास और समृद्धि में अपना योगदान दे सकेंगे। यूँ संगीत और खेलों के क्षेत्र में अफ्रीकन का बहुत बड़ा योगदान है। संगीत इनकी नसों में खून की तरह दौड़ता है। वहीं इनकी मांसपेशियों और शरीर की पुख्ता बनावट इन्हें पहले दर्जे का खिलाड़ी होने का मौका देती हैं।

कॉसस की श्वेत माँ और केन्या के प्रोफेसर लेखक का बेटा ओबामा का अमरीका के 44वें राष्ट्रपति का चुनाव जीतना और व्हाईट हाऊस में उनका प्रवेश इस देश के सौ वर्ष के रंगभेद के इतिहास में एक नयी सुबह की दस्तक थी। यह विजय दस प्रतिशत की नहीं बल्कि उस 90 प्रतिशत आबादी को साथ लेकर परिवर्तन की प्रक्रिया में एक चमत्कारिक घटना थी, जो भविष्य में अमरीका में अफ्रीकी नागरिकों के खिलाफ रंगभेद, अन्याय और अलगाववाद को खत्म करके उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति भी बदली थी। अलिखित भेदभाव के संविधान की अपेक्षा लिखित संविधान ही लागू होगा जहाँ एक मानवीय भाव से जुड़कर सभी साथ-साथ देश की प्रगति में अपना योगदान देंगे। अतीत का भेदभाव भी भयावह स्मृतियों से मुक्त हो सकेगा। इसका सकारात्मक प्रभाव विश्व के दूसरे देशों पर भी पड़ेगा जहाँ नस्लवाद, जातिवाद, धर्म और सम्प्रदाय के कारण एक वर्ग दूसरे वर्ग को प्रताड़ित और उत्पीड़ित करता है। ओबामा का विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सम्मान और लगाव उनकी माँ की देन है। उनकी माँ ने भारतीय ग्रामीण विकास के क्षेत्र में भी कार्य किया था। वे महात्मा गांधी की कार्य प्रणाली से भी प्रभावित हुए। राम मनोहर लोहिया की विचारधारा के प्रति भी आकृष्ट थे। उन की विजय में श्वेत, ऐशियन, भारतीय मूल के लोग (सोनल साह) और संस्थाओं, हिन्दू संगठनों का भी हाथ रहा है। इस आशा के साथ कि भविष्य में किसी भी प्रकार के भेदभाव से परे सम्मान के साथ जी सके, सभी एक साथ चाहे वे कोई भी हों, किसी वर्ग, वर्ण या जाति के हों। ग्रेहाउंड की इस यात्रा ने मुझे समस्या का साक्षात कराया था और यथार्थ का परिचय दिया था।

✠✠✠

उषा प्रियंवदा की दो नायिकाएँ

अर्पण कुमार

साठोत्तरी काल में बतौर कथाकार उषा प्रियंवदा का अपना विशिष्ट स्थान है। उनकी कहानियों और उनके उपन्यासों में अन्य युगीन प्रवृत्तियों सहित तात्कालिक समाज में व्याप्त संक्रमण का भी अंकन संभव हो सका है। आधुनिक विचारों से संपन्न नायिका की उलझनों को भी लेखिका ने बखूबी पकड़ा है।

अमरीका की प्रवासी हिंदी कथाकार उषा प्रियंवदा हिंदी के उन महत्वपूर्ण रचनाकारों में हैं, जिनके उपन्यासों और कहानियों में हमें आधुनिक जीवन के कई तत्व शुरू से ही देखने को मिले हैं। सशक्त संवेदनाओं और तर्कजनित बौद्धिकता के बीच अंतत: व्यक्ति के अकेलेपन को उभारता उनका कथा-चित्रण, पाठकों को देर तक आलोड़ित करता रह जाता है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'अंतर-वंशी', 'भया कबीर उदास', 'नदी' जैसे उनके उपन्यासों की खूब चर्चा रही है। मगर यह आलेख उनके शुरुआती दो उपन्यासों की नायिकाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर केंद्रित है।

उषा के कथा-जगत में चाहे उनकी कहानियाँ हों या उपन्यास, उनमें जीवन और खासकर स्त्री-जीवन से जुड़ी छोटी-छोटी चीजें अपने पूरे प्रभाव के साथ अभिव्यक्त होती हैं। उनके यहाँ घर की चाहत और घर के भीतर का अकेलापन दोनों समान तीव्रता से चित्रित होता है। अपेक्षा और वास्तविकता के इस तनाव से उनके युवा महिला-पात्र सुषमा ('पचपन खंभे लाल दीवारें') और राधिका ('रुकोगी नहीं राधिका') तो ग्रस्त हैं ही, इसके शिकार वृद्ध पुरुष-पात्र गजाधर बाबू ('वापसी' कहानी) जैसे लोग भी होते हैं। हालाँकि हर जगह परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं और उनसे निकलने/निबटने के पात्रों के तरीके भी अलग-अलग हैं।

'पचपन खंभे लाल दीवारें', उषा प्रियंवदा का पहला उपन्यास है और इसे पाठकों ने हाथों-हाथ लिया। विदित है कि इस पर बना टी.वी. धारावाहिक भी खूब लोकप्रिय हुआ। पारिवारिक-सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों के बीच रहते हुए एक सुशिक्षित और स्वावलंबी स्त्री, जिन अंतर्विरोधों से गुजरती है, उसे प्रोटैगोनिस्ट 'सुषमा' के माध्यम से लेखिका ने बखूबी उकेरा है। सुषमा बतौर प्राध्यापिका और होस्टल-वार्डन अपने कॉलेज के जिस छात्रावास में रहती है, वहाँ पचपन खंभे हैं और उसकी लाल दीवारें हैं। सुषमा के लिए मानो वह होस्टल ही उसके लिए किसी कारागार सरीखा हो उठता है। एक सी परिस्थितियों में रहते हुए व्यक्ति की किस तरह 'कंडीशनिंग' हो जाती है, इसका एक उदाहरण सुषमा का व्यक्तित्व भी है, जो उड़ान की हसरत रखने के

सम्पर्क: फ्लैट संख्या 102, गणेश हेरिटेज, स्वर्ण जयंती नगर, आर.बी. हॉस्पीटल के समीप, (पत्रकार कॉलोनी), गौरव पथ, बिलासपुर, पिन: 495001, मो: 0-9413396755, ई-मेल: arpankumarr@gmail.com

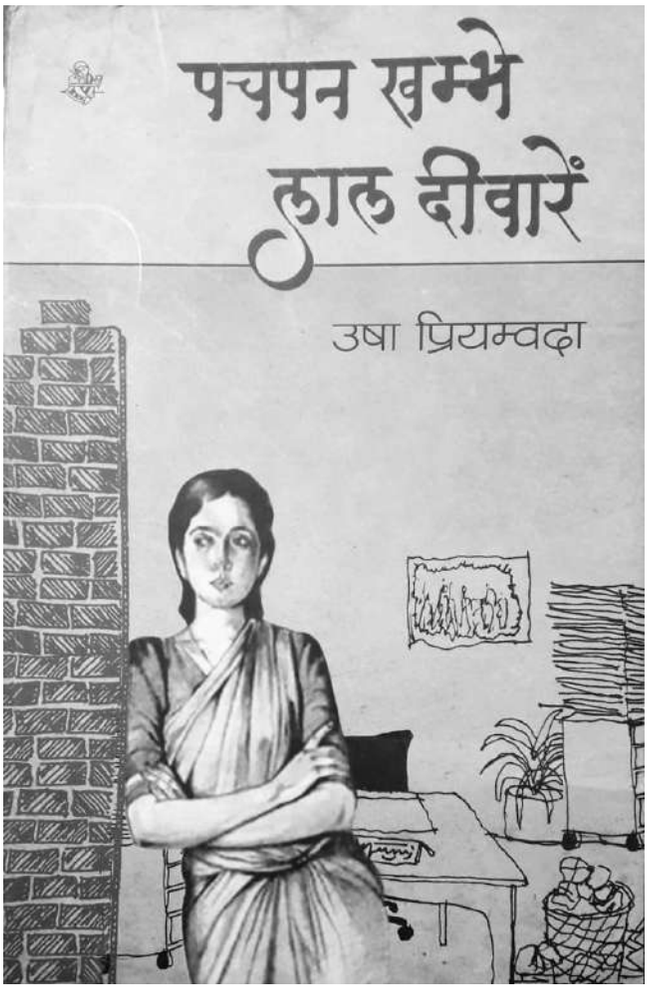

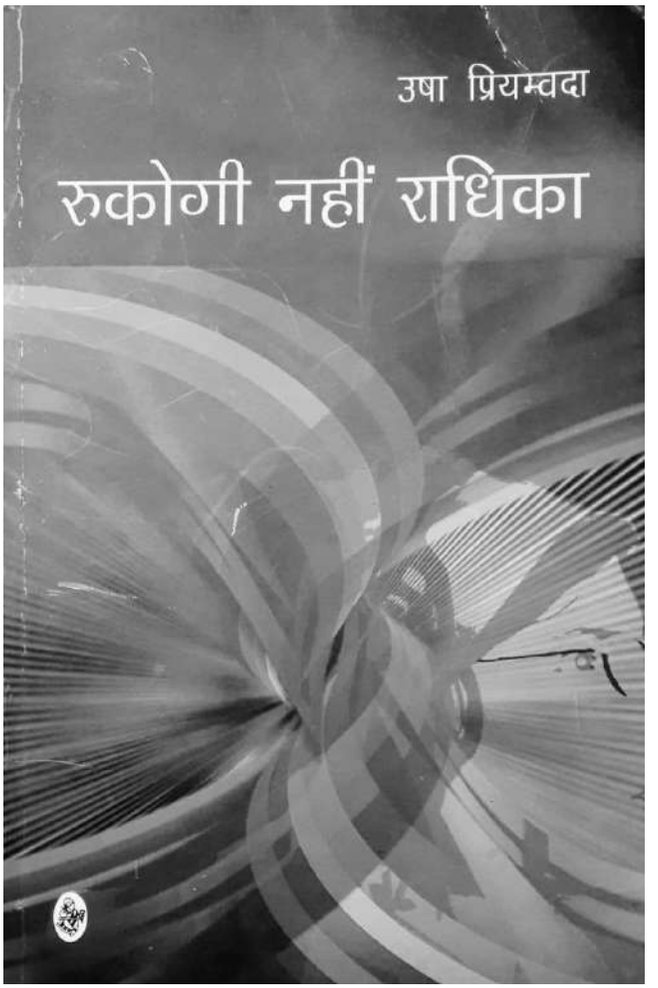

बावजूद बार-बार वहीं आकर सिमटती चली जाती है। 'जैसे उड़े जहाज का पंछी फिर जहाज पर आए।' अपनी ही निर्मित बेड़ियों से स्वयं मुक्त न हो पाने की सुषमा की त्रासदी, आज भी हम कई स्त्रियों में देखते हैं। यहाँ इस विरोधाभास को उठाना ही लेखिका का उद्देश्य है, जिसमें व्यक्ति अपनी अनिच्छा के बावजूद अपने वर्तमान का त्याग नहीं कर पाता है। छोटे-छोटे कुल 21 अध्यायों में बँटा यह उपन्यास, हॉस्टल-वार्डन नायिका के भीतर की उदासी को शुरू में ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। नायिका की यह उदासी कभी उसके अनिर्णय तो कभी उसकी झुंझलाहट के रूप में अंत तक तारी रहती है। हाँ, बीच-बीच में नील के साथ किसी अल्हड़ युवती के से उसके व्यवहार हमारे बीच अवश्य प्रकट होते हैं, मगर अंततः वे भी कसी-कसी रहनेवाली सुषमा के चयनित एकांत के नीचे असहाय और कारुणिक ही प्रतीत होते हैं। पहले अध्याय का यह अंश सुषमा की मनोदशा को प्रस्तुत करता हुआ उसका यथार्थ बन जाता है:-

'सुषमा को लगा कि उसके प्राणों और रात्रि की आत्मा में घना साम्य है। वैसे ही कुछ मद्धिम स्वरों की प्रतिध्वनियाँ गूँजती हैं, मन में कुछ करवट लेता है और चुप हो जाता है, ऐसा ही अभेद्य, सर्वग्रासी अंधकार जीवन में सिमटता आता है।' (पृष्ठ 8, 'पचपन खंभे लाल दीवारें', पेपरबैक्स में पाँचवाँ संस्करण, 2015)।

'पचपन खंभे लाल दीवारें' और 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास क्रमशः 1961 और 1966 में प्रकाशित हुए और इनकी लोकप्रियता आज भी समान रूप से बनी हुई है। उस समय में स्त्री-अनुभूति की ऐसी स्वतंत्र प्रस्तुति, आज के सशक्त स्त्री-स्वर को अपने तईं संपोषित करती है। मिस शास्त्री, मीनाक्षी, मिस कृपलानी और मिसेज अग्रवाल सुषमा की सहकर्मी हैं और उनके निजी रूटीन और घरेलू जरूरतों के साथ क्लास लेने को लेकर होनेवाले बँटवारे से संबंधित विवादों के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। सुषमा, अपने घर की पूरी जिम्मेदारी उठाती है। उसकी सुंदर

मगर मंदबुद्धि बहन निरुपमा (नीरू) की शादी भी अंततः सुषमा की मदद से हो जाती है। भाई को भी स्थापित करने के प्रयास में वह लगी हुई है। एक बड़ी और अनब्याही बेटी के भीतर की चिड़चिड़ाहट और अकेलेपन को लेखिका यहाँ उठाती है, जो घर की जिम्मेदारी को उठाती हुई अपनी कोमल भावनाओं को कहीं गहरे भीतर दबाती हुई स्वयं भी बोझिल और एकांतिक होती चली जाती है। लेखिका ने सुषमा की उस मनोग्रंथि को पकड़ते हुए लिखा है, 'वह गाँठ जो सबसे छिपाकर सुषमा पालती आई है। वह एक तरुण किशोरी का स्वप्न था, जोकि अनुकूल जलवायु न पा कुम्हला गया।' (पृष्ठ 18)।

कृष्णा मौसी और सुषमा के बीच संक्षेप में ही सही, लिव-इन रिलेशनशीप की बात भी हो जाती है। वे उसे अपने बारे में भी सोचने के लिए कहती रहती हैं। सुषमा और उसकी माँ के बीच के तनावजन्य रिश्ते की मनोवैज्ञानिक पड़ताल भी यहाँ की गई है, जिसमें बेटी पर निर्भर माँ के स्वार्थ का अकुंठ चित्रण हुआ है। निम्न मध्यमवर्गीय परिवार से आई सुषमा अपने से पाँच साल छोटे नील के साथ काफी आगे तक जाकर भी अंततः अपने को रोक लेती हैं। नारायण के यहाँ जब पुत्र होता है, तब सुषमा उस समय कानपुर में ही रहती है। वह भी उसके यहाँ जाती है। कभी नारायण के साथ सुषमा की शादी की बात की जाती थी। अब उसी बाल-बच्चेदार नारायण के यहाँ अब तक कुँवारी सुषमा का जाना, उसे अपने दुःखद अतीत में भी ले जाता है। एक सफल स्त्री के भीतर की सुकोमल लड़की तब सहज ही जाग उठती है।

साठोत्तरी काल में बतौर कथाकार उषा प्रियंवदा का अपना विशिष्ट स्थान है। उनकी कहानियों और उनके उपन्यासों में हमें अन्य युगीन प्रवृत्तियों सहित तात्कालिक समाज में व्याप्त संक्रमण का भी अंकन वहाँ संभव हो सका है। आधुनिक विचारों से संपन्न नायिका की उलझनों को भी लेखिका ने बखूबी पकड़ा है। एक तरफ उनके पात्र जहाँ आधुनिक भाव-बोध से संपन्न हैं, वहीं उनके भीतर एकाकीपन का आकाश भी विस्तृत है। उनकी नायिकाएँ अपनी किशोरावस्था की स्मृतियों से बँधी हुई आगे बढ़ती हैं। वे अपने घर और परिवारजनों के साथ रहना चाहती हैं, मगर उनकी वह चाहत अपने मूल रूप में पूरी नहीं हो पाती है। निम्न मध्यवर्ग और उच्च मध्यवर्ग से आई ये स्त्रियाँ अपना एक मुकम्मल वजूद बनाती हैं या फिर उसके लिए संघर्षरत दिखती हैं। वे स्वतंत्र तो हैं, मगर स्वच्छंद नहीं। वे विचार के स्तर पर काफी परिपक्व हैं और उनका व्यक्तित्व सँभला हुआ है। मगर यह एकमेव से नहीं हुआ है। अपने वर्तमान तक पहुँचते हुए वे कई बार लहूलुहान और चोटिल हुई हैं। उनके आँचल धूल-धूसरित भी हुए हैं और किसी पुरुष की ही तरह उनकी अपनी थकान और उनके सही-गलत मगर अपने निर्णय भी हैं। पुरुषों की तरह उनमें भी अपने स्वत्व को लेकर एक चेतना और स्वाभिमान है मगर वहीं पर उनके अंदर अनिर्णय की कई कंदराएँ हैं और उन्हें 'स्प्लिट पर्सनाल्टी' कहना भी गलत न होगा। असमंजस की यह स्थिति राधिका और सुषमा दोनों में है। बीसवीं सदी में साठ की इन बनती हुई स्त्रियों की परवर्ती पीढ़ियाँ अब नए आत्मविश्वास से दिपदिप कर रही हैं, मगर आज भी हमारे पास कई सुषमाएँ और राधिकाएँ देखने को मिल जाएँगी। मतलब यह कि हमारा समाज एक साथ कई कालों में साँस ले रहा होता है।

उषा, व्यक्ति के मनोविज्ञान का मार्मिक और वास्तविक चित्रण करती हैं और यह चित्रण, व्यक्ति की अंतर्यात्राओं से होकर गुजरता है। दुनियावी सफलता के आवरण के भीतर व्यक्ति की निजी आकांक्षाएँ कैसे कहीं जमी होती और आकार ली हुई हैं और अपने एकाकीपन में घुटती चली जाती हैं, इसे हम उषा के इन दोनों उपन्यासों में स्पष्ट रूप से घटित होता देखते हैं। राधिका कई बार अपने घटनाविहीन जीवन को लेकर कुछ न कुछ सोचती रहती है। जब राधिका के पास मनीष का फोन आता है। राधिका की दुहरी मनःस्थिति को चित्रित करते हुए कथा में वह वर्णन निम्न प्रकार से आता है; 'पुरुषहीन जीवन में एक उकताहट तो अवश्य होती है, पर साथ ही एक निश्चिंतता भी, जो कि राधिका को काफी सुखद लगने लगी थी। अब मनीष उस संतुलन को फिर गड़बड़ कर देगा। वह चाहता क्या है? उसे न मित्रों की कमी है न लड़कियों की। फिर बार-बार राधिका को क्यों झकझोरता है?...।'

जब राधिका के पिता अपने से कोई बीस साल छोटी विद्या से शादी करते हैं, तब पिता-पुत्री का रिश्ता सहज नहीं रहता है। राधिका एक प्रौढ़ अमेरिकी पत्रकार के साथ अमेरिका चली जाती है। राधिका के यूँ अमेरिका जाने को एक बड़ी घटना के रूप में लिया जाता है। हालाँकि, उपन्यास में एक जगह रमा से बातचीत में राधिका इसका टका सा जवाब देती हुई कहती है, 'मैं अपनी जिम्मेदारी पर गई थी। किसी और पर निर्भर होकर नहीं।' (पृष्ठ 63)।

कोई तीन वर्षों बाद जब वह वापस अपने देश और शहर लौटती है, तब कई चीजें बदली हुई पाती हैं। उसके पिता, उसकी विमाता से अलग किसी और घर में रह रहे होते हैं। अंतत: नींद की ढेर सी गोलियाँ खाकर विद्या इस दुनिया से दूर चली जाती है और एक बार फिर से राधिका के पिता अकेले हो जाते हैं। मगर बाप-बेटी के बीच इस दौरान आई दूरी पट नहीं पाती है और राधिका अपने अकेले पिता का साथ देने के लिए उनके साथ नहीं रह पाती है। दूसरे उपन्यास तक आते-आते उषा की नायिका में यह एक खास बदलाव नजर आता है। पाँच वर्षों के भीतर आए इन दो उपन्यासों की यात्रा के साथ लेखिका भी अपनी यात्रा करती है। सर्वस्व त्याग की प्रतिमूर्ति सुषमा, कुछ अपने लिए भी जीवन बचाए रखने वाली राधिका बन जाती है।

एक सिद्धहस्त किस्सागो की तरह उषा, दो पात्रों के संवादों के बीच भी व्यक्ति के मनोभाव का चित्रण करती चलती हैं। विमान में सहयात्री रहे एक अमेरिकन के इस सवाल पर कि लंबी अवधि के बाद स्वदेश लौटना कैसा लग रहा है, राधिका कुछ ही देर में बहुत कुछ सोचने के बाद एक संक्षित सा जवाब देती है, ''जस्ट वंडरफुल!''

यहाँ लेखिका यह दोहराना चाहती है कि उद्‌गारित किसी संक्षिप्त कथन के पीछे वास्तव में उस मनुष्य के भीतर कितने तरह के संश्लिष्ट भाव चल रहे होते हैं। मनोभाव-विश्लेषण से इतर उषा के कथा-लेखन में परिवेश का चित्रण भी जीवंत, सूक्ष्म और प्रभावकारी है। वह चित्रण, गाँव-शहर का हो, रेलवे स्टेशन-हवाई अड्डे का हो या घर-बाजार का, हर जगह अपने पात्रों के माध्यम से उषा उन दृश्यों को जीती-देखती चली जाती हैं और पाठक भी उनसे पढ़ते हुए तादात्म्य स्थापित करते चलते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास से यह चित्रण:-

'बहुत दिनों बाद, राधिका भारतीय स्टेशनों का एक अपना ही शोरगुल सुन रही थी, उनकी एक अपनी ही गंध, बर्फ में जमी मछलियों की सड़ांध, कच्चे-पक्के फलों, पसीने और मैले कपड़ों की गंध और कोयले का महीन चूरा भी उसे अब अप्रिय नहीं लग रहा था।'। (पृष्ठ 18, 'रुकोगी नहीं राधिका')।

भारत-प्रवास के अपने उन दिनों में राधिका कुछ निश्चिंत सी हो गई है। अवकाश के उस विलासपूर्ण अवधि में वह स्वयं को और अपने इर्द-गिर्द के लोगों को अलग-अलग कोणों से जानने-समझने का प्रयत्न करती है। बीच-बीच में उसके अमेरिका-प्रवास के किस्से/प्रसंग फ्लैशबैक में किसी-न-किसी अवसर के अनुकूल आते रहते हैं। मसलन, राधिका ने किस तरह अपनी फ्लैटमेट और यहूदी लड़की जूडिथ से मितव्ययिता सीखी, जिसका कुशलतापूर्वक उपयोग उसने भारत में भी किया। या फिर मनीष के यहाँ देशी-विदेशी मित्रों के बीच हुई पार्टी में दोनों देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों को लेकर हुई बहस भी कुछ कम रोचक नहीं है।

भारतीय मध्य-वर्ग के विचारों और उनके अंतर्द्वंद्वों को पहले उपन्यास में उभारा गया है, जहाँ परिवार का अवसरवाद कैसे अपनी एक कमाऊ बेटी को कुछ अतिरिक्त जिम्मेदारी के बोझ से थका देता है। सुषमा का माँ के साथ संबंध सहज नहीं है और उनके बीच यह संबंध कहीं-न-कहीं माता-पुत्री से आगे जाकर शोषक-शोषित का भी बन उठता है। वहीं दूसरे उपन्यास में अर्थिक स्तर पर पात्रों के बीच कोई विशेष कशमकश नहीं है, हाँ, स्वयं की पहचान के लिए संघर्ष वहाँ भी जारी है। भारत में या भारत से बाहर बसने को लेकर राधिका, मनीष सहित कुछ विदेशी पात्रों में भी असमंजस की स्थितियाँ रहती हैं और इस बहाने प्रवासी भारतीयों की दुविधा को भी यहाँ समुचित रूप में प्रस्तुत किया गया है। दोनों ही उपन्यासों के एक-एक दृश्य हमारे सामने सिनेमाई अंदाज में प्रस्तुत होते चलते हैं। उषा का 'नैरेटिव' जीवंत है और वह मनोविज्ञान के ठोस चबूतरे पर निर्मित है। यह भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है कि आरंभ के उनके ये दोनों उपन्यास, पाठकों के सामने दो अलग-अलग दुनियाओं को प्रस्तुत करते हैं। भिन्न आर्थिक, पारिवारिक पृष्ठभूमि से आए इन दोनों स्त्री-चरित्रों के माध्यम से लेखिका, स्त्रीवाद को बिना आक्रामक और श्लोगनात्मक हुए अपने तई प्रस्तुत करती हैं। अमेरिका के खुलेपन और पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से उनके किरदार प्रभावित हैं मगर उन्होंने ज्यादातर उनकी सकारात्मक प्रवृत्तियाँ ही ग्रहण की हैं। दोनों ही रचनओं में स्त्री-पुरुष के बीच के संबंधों में एक खुलापन है मगर वह खुलापन कभी हल्केपन में तब्दील नहीं होता। लेखिका, स्त्री-पुरुष दोनों को समान स्पेस देती हुई चलती हैं। वे संबंध इकहरे और स्थायी नहीं हैं। जिस अमेरिकी पत्रकार के साथ राधिका अमेरिका जाती है, साल भर के भीतर ही वह उससे अलग रहने लगती है। बाद में उसके जीवन में मनीष और अक्षय भी आता है। अक्षय की गंभीरता और उसका शांत मन जहाँ उसे प्रभावित करता है, वहीं मनीष के जादुई व्यक्तित्व और उसकी लाइव जीवन-शैली की ओर वह खिंचती चली जाती है। अपने प्रेमी में वह कई बार अपने पिता

को देखती है तो कई बार, उसके व्यवहार में पिता के प्रति प्रतिरोध की कुछ दबी हुई भावना भी काम कर रही होती है। उषा प्रियंवदा की रचनाओं में पुरुष, स्त्री की तुलना में कई बार कुछ अधिक रूढ़ीवादी और पारंपरिक दिखते हैं। राधिका जहाँ अमेरिका से पढ़कर लौटी है और वह अपनी मिट्टी की स्मृतियों और उसके वर्तमान के बीच कहीं उलझी हुई है, वहीं सुषमा अपने घर की बड़ी बेटी की जिम्मेदारी को यंत्रवत निभाती अपनी स्त्री-सुलभ कोमलता को भी क्रमशः खोती चली जा रही है।

दोनों ही उपन्यासों में नायिका और नायक कार में किसी सुनसान जगह पर रुकते हैं। कई बार लेखिका को पता नहीं चलता, मगर उसकी अपनी स्मृतियाँ या उसका अपना अवचेतन उसके सर्जक के साथ जुड़ा होता है। संभ्रांत घरों में नौकरों की गहमागहमी, प्रेमी युगलों का रेस्टोरेंट में बैठकर गप-शप करना, कार में घूमना, कुछ बौद्धिक चर्चाएँ जैसे चित्र दोनों उपन्यासों में हमें समान रूप से दिखते हैं। सुषमा की नौकरानी भौंरी ('पचपन खंभे लाल दीवारें') हो या अक्षय का नौकर सोनाम ('रुकोगी नहीं राधिका'), इन सभी का कथा-प्रवाह में अपना एक निश्चित स्थान है और वे घर के शेष सदस्यों की ही तरह सहजतापूर्वक आते हैं।

इन दोनों उपन्यासों का अंत अलग-अलग है। टैक्सी मँगाकर भी सुषमा हॉलैंड जा रहे नील से मिलने हवाई-अड्डे पर नहीं जाती है, वहीं राधिका अपनी विमाता की मौत के बाद अकेले हो गए अपने पिता से दूर जाते हुए अपने मित्र मनीष का हवाला देती है। सुषमा अंततः नील से बिछड़ जाती है, वहीं राधिका और मनीष के बीच मैत्री की स्थिति/संभावना बनी हुई है। दो भिन्न आर्थिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आई इन दो स्त्रियों के निर्णय भी कदाचित् उन्हीं के स्वभाव के अनुरूप हैं। पहला उपन्यास दुःखांत है, वहीं दूसरे उपन्यास के सिरे खुले हुए हैं। पाठक, सुषमा के निर्णय से जहाँ दुःखी होता है, वहीं राधिका के निर्णय में उसे उसका व्यावहारिक पक्ष देखता है। हाँ, दोनों ही स्थितियों में, पाठक उनकी भावनाओं के साथ एकमेव अवश्य हो पाते हैं। यह लेखिका की सफलता ही कही जाएगी। भाषा, उषा के रचानाकार का एक सशक्त पक्ष है।

प्रवासन, अकेलापन, ऊब और इनसे उत्पन्न त्रासदी, हमारे जीवन का निरंतर अभिन्न हिस्सा बनती चली जा रही है, जो आज के समय में कुछ अधिक ही घनीभूत और मारक है। कह सकते हैं कि इन उपन्यासों का यह चित्रण कहीं न कहीं अपने समय से आगे का है और यही इनकी प्रासंगिकता है। निःसंदेह, कोई कृति जब अपने समय से आगे रहती है, तो वह पाठकों के बीच लोकप्रिय और मानीखेज होती है। तभी तो साहित्य को प्रेमचंद ने समाज के लिए राह दिखानेवाली जलती हुई मशाल कहा था।

✠✠✠

परिषद द्वारा दिनांक 15 मार्च 2019 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन

भारतीय सांस्कृतिक ग्रंथों के काव्यानुवाद

डॉ. मृदुल कीर्ति

यह काव्य साधना वस्तुत: अंत:करण में संपन्न होने वाला काव्य है जो श्रमसाध्य से अधिक कृपासाध्य है, प्रयास से अधिक प्रसाद है, जो सर्वज्ञ की कृपा बिना संभव नहीं है। अत: इसे केवल 'भव प्रत्यय' का प्रतिफल ही कह सकती हूँ क्योंकि --आर्ष ग्रंथों का काव्यानुवाद अत्यंत क्लिष्ट, दुरूह, गूढ़ और सूक्ष्म काव्य विधा है।

मनुष्य एक जैवीय जटिल संरचना है, जिसकी बाहरी परत अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और आनंदमय कोष तक जाती है। इसी सन्दर्भ में कायिक प्रक्रिया का क्रम है, यथा-स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। इस कारण शरीर का भी जो आदि कारण है वह आदि मन या वैचारिक शरीर अथवा विचार बीज है और मन से सूक्ष्म और गतिमान कुछ भी नहीं है। 'मन' कुछ और नहीं विचारों का समूह है। (महर्षि रमण) विचारों की आयु अनंत है, क्योंकि इसकी जड़ें भूमा तक हैं, जहाँ से आदि मन नि:सृत हुआ, जिसे हम अन्त:करण अथवा अंतर्मन कहते हैं-जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। उसी आदि मन से नि:सृत परा ज्ञान को ऋषियों की ब्रह्म अन्वेषक क्षमता ने तत्कालीन भाषा संस्कृत भाषा में व्यक्त किया, जो आर्ष सांस्कृतिक ग्रंथों में संकलित हैं।

येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति।-- छान्दोग्य उपनिषद --प्रथम खंड--3

''जिसके द्वारा अश्रुत-श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है।''

ऋषियों का यह ब्रह्मगुह्य गूढ़ ज्ञान उनके अगाध तप, तपस्या और गहरी समाधि से अर्जित आध्यात्मिक ज्ञान निधि है, जो इन सांस्कृतिक ग्रंथों में नीहित हैं। यह 'माननात जायते' अर्थात ऋषियों के मनन का उद्बोधन है। शाश्वती समेटे इन कालजयी दार्शनिक, आध्यत्मिक, ब्रह्म-विषयक, तात्विक और नीति प्रवण ग्रंथों का लेखन तत्कालीन भाषा संस्कृत में है। कालांतर में ग्रंथों के प्रति संस्कृत की क्लिष्टता ने भी जन मानस की रुचि को क्रमश: कम किया है।

सांस्कृतिक ग्रंथों के काव्यानुवाद की अंतर्वर्ती प्रक्रिया

यह सारी संरचना इतनी जटिल किन्तु विलक्षण सामर्थ्यों से भरी है, जिसे जितना सुलझाओ उतने ही प्रश्न प्रश्नायित होने लगते हैं।

ब्रह्माण्ड में जो भी है वह मन और विचार का ही विस्तार है, परिणाम है। ऋषियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ भी उनके संचेतित

सम्पर्क: 4854, Kantwood, Dr. Marietta GA 30068 USA Ph. +1(770)330-1970

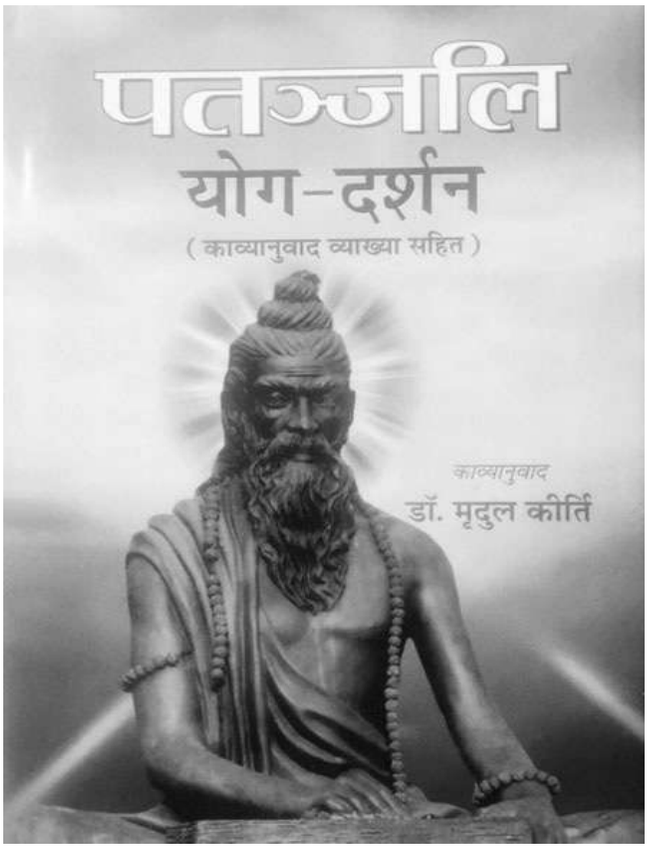

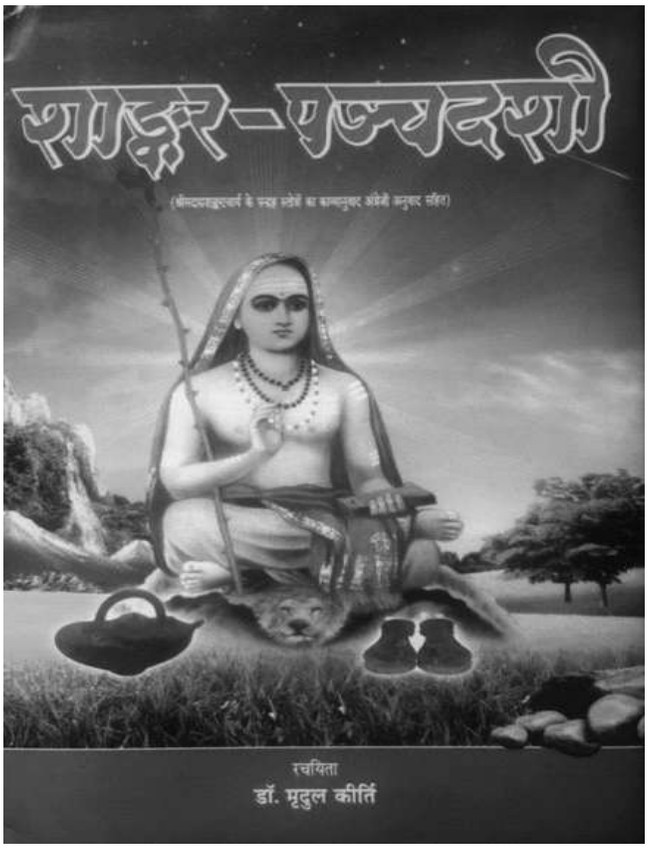

मन-विचार का ही प्रगटीकरण है, अत: उन ग्रंथों के तात्विक ज्ञान को मन के उसी स्तर से ही जाना जा सकता है जिस स्तर पर ये उनके अत:करण में उतरे हैं। यह किसी अन्य के चिंतन से सारूप्य और सायुज्य होने की अंतर्वर्ती जटिल प्रक्रिया है। यह ऋषियों के वैचारिक शरीर में प्रवेश कर पाने जैसा है अर्थात यह परकाया प्रवेश जैसी दुर्गम और दुरूह प्रक्रिया है।

क्योंकि ----------

मन को मन से ही जाना जा सकता है -- विचारों को विचारों से ही जाना जा सकता है।

अंतत: यह वैचारिक यात्रा की वह अंतर्वर्ती प्रक्रिया है, जिसमें ऋषियों की मन:स्थिति और वैचारिक स्तर पर जाकर ही उनके प्रणीत ग्रंथों के मन्त्र, श्लोक, सूक्त में सम्प्रेषित कथ्य विषय को ग्रहण करने में समर्थ हो पाते हैं।

संक्षेप में--ऋषियों की मन:स्थिति को अपनी मन:स्थिति में उतार कर ही कथित भाव को यथावत दूसरी भाषा में, व्याकरण और काव्य शास्त्र के छंदों के नियमों का संवहन करते हुए, छंदों की सीमित भाषा में बृहद मंत्रणाओं को समेटते हुए, सूक्तों की अर्थवत्ता को सहेजते हुए, मौलिकता भंग न हो, इस तथ्य के प्रति सचेत रहते हुए, अविकल काव्यानुवाद करना एक बृहद साहित्यिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व का काम है। यद्यपि इन सांस्कृतिक, आध्यात्मिक ग्रंथों के गद्यानुवादों और भाषा-भाष्य की अविरल शृंखला है किन्तु बृहदारण्यक उपनिषद में स्पष्ट कहा है ----

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। --बृहदारण्यक 3/9/28
ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है, आनंद स्वरूप हैं।

तैत्तरीयोपनिषद में परमात्मा को 'रस' कहा गया है। ---रसो वै स:। ----वह रस है -- और सार ही तत्व है। वह ज्ञान जो अंतस में दिव्य सात्विक भाव का स्फुरण करता है वही भाव रस ही तो ब्रह्मानंद है। रस आनंद का पर्याय है, परब्रह्म का आनंदस्वरूप और बोधस्वरूप है। स्तुति, प्रार्थना और आराधना का आधार यही आनंद रस है। लयात्मक स्तुति गायन के क्षणों में अंत:करण में इसी आनंद का संचरण होता है। सामवेद तो पूरा ही स्तुतिपरक है जो ध्रुपद और धमार राग में नियोजित है।

कदाचित इसी भाव ने मेरे अंतर्मन को संचेतित किया--

वस्तुत: यही वह बिंदु है जिसने मुझे इन बृहद् सांस्कृतिक ग्रंथों के काव्यानुवाद की स्फुरणा दी। बिना अर्थ और निहित भाव

जाने मन्त्रों का यंत्रवत उच्चारण प्रार्थी और प्रार्थना को संवेदित नहीं कर सकता। भावों से भावित हुए बिना रसानंद की अनुभूति कहाँ? बिना अनुभूति के अनुभव कहाँ? बिना अनुभव के भाव, भावना भावित कहाँ?

एक वाक्य में कहूँ तो ------

यह काव्य साधना वस्तुत: अंत:करण में संपन्न होने वाला काव्य है जो श्रम साध्य से अधिक कृपा साध्य है, प्रयास से अधिक प्रसाद है, जो सर्वज्ञ की कृपा बिना संभव नहीं है। अत: ----इसे केवल 'भव प्रत्यय' का प्रतिफल ही कह सकती हूँ क्योंकि --आर्ष ग्रंथों का काव्यानुवाद अत्यंत क्लिष्ट, दुरूह, गूढ़ और सूक्ष्म काव्य विधा है। जिसमें कुछ ग्रंथों का काव्यानुवाद भारत निवास के अनन्तर किया। योग दर्शन तथा विवेक चूड़ामणि का काव्यानुवाद अमेरिका में प्रवास के अनन्तर किया। यह विभिन्न छंदों में यथा दोहे, चौपाई, गीतिका, हरिगीतिका और ब्रज भाषा के सवैया छंद में काव्यानुवादित हैं।

सामवेद, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वर -नौ उपनिषदों -श्रीमद्भगवद्गीता (ब्रज भाषा काव्य में), अष्टावक्र गीता, शंकर पंचदशी, वैदिक संध्या, स्वस्तिवाचन, शांति प्रकरणं, अथर्ववेद का प्राणसूक्त, और ---

ऋषि पतंजलि विरचित --'पतंजलि योग दर्शन' --विश्व का प्रथम योग दर्शन काव्य

शंकराचार्य विरचित --'विवेक चूड़ामणि'--विश्व का प्रथम ब्रह्म वाद, अद्वैत वाद काव्य है।

विभिन्न छंदों में काव्यानुवादित इन ग्रंथों के प्रसाद कणों का रसानंद के लिए योग दर्शन के समाधि पाद का दूसरा सूक्त --

सूक्त ---योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:।

काव्यानुवाद --दोहे छंद में

जेहि पल थमहिं चित्त चंचलता, चित्त वृत्तियाँ सकल चपलता,
मन संयम और चित्त निरोधा, तिनहिं योग ऋत, सत्य प्रबोधा।

उपादेयता ----------

ऋषिजन्य ग्रंथों की भाषा क्लिष्ट और गूढ़ संस्कृत में होने के कारण इनके कथ्य विषय जनमानस से दूर होते गए। क्लिष्टता से नीरसता होती है, जब कि मन की सहज वृत्ति रस है।

तैत्तरीयोपनिषद की ब्रह्मानंद वल्ली में आत्मा का विषद वर्णन है। आत्मा के लिए ''रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनंदी भवति'' कहा गया है।

आत्मा रसरूप है। रस सार ही आत्मानंद है। ब्रह्मानंद काव्य रस परमानंद है। स्तुति, प्रार्थना, मन्त्र, श्लोक, छंद सब काव्य रस है। राग रागेश्वरी वीणा वादिनी माँ सरस्वती ज्ञान-काव्य-रस की प्रतीक हैं। साम गायन वैदिक परंपरा का दिव्य काव्य रसात्मक संवहन है।

काव्य रस आत्मानंद है, परमानन्द है, ब्रह्मानंद है।

इस तथ्य को यदि बाल्मीकि जी की संस्कृत निष्ठ रामायण में देखें तो आज के परिवेश में वह केवल तत्वज्ञों का विषय है, तुलसी की रामायण जनभाषा काव्य में है, वह जनमानस में है, जनप्रिय है। अत: कथ्य विषय वही ग्राह्य है जो जनभाषा में सरल हो, सरस हो, तब ही सार्थक हैं। इन सांस्कृतिक ग्रंथों के काव्यानुवाद की यही उपादेयता है।

समय के परिवर्तन के साथ ही भाषाओं के परिवर्तन से, उस ज्ञान में निहित अर्थ समझ से परे होते गए किन्तु ये सर्वश्रेष्ठ ज्ञान होने के कारण, हम इनको मन्त्रवत और यंत्रवत केवल श्रद्धा और

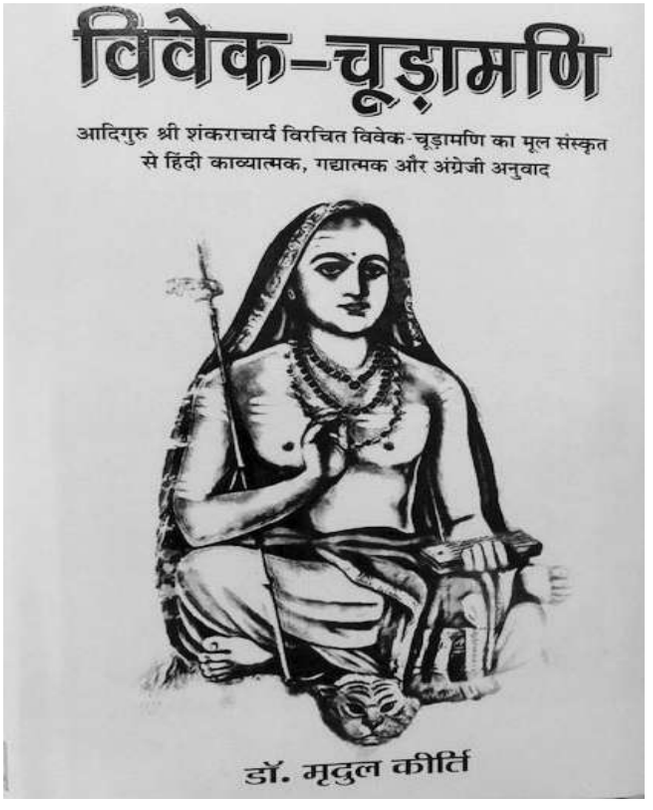

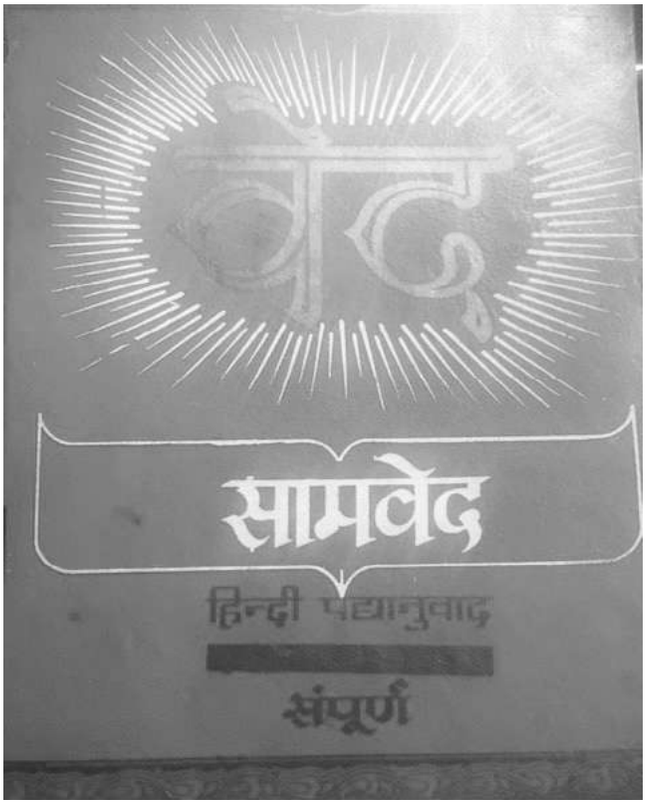

गहन विश्वास से ईश्वरीय पूजा मानकर, बिना अर्थ को आत्मसात किये रटते या पढ़ते गए। इस तरह अर्थगर्भिता, भाव गर्भिता से दूर ग्रंथों में समाहित गूढ़ ज्ञान से वंचित रहे, क्योंकि कथ्य विषय जबतक भावों में भावित नहीं होता, तबतक चित्त में स्पंदित होकर अनुभूति में नहीं उतरता और मन-चित्त-बुद्धि में गम्य तब ही होता है जब प्रचलित जनभाषा में हो। अतः इस बिंदु पर ग्रंथों की क्लिष्टता को प्रचलित भाषा में अनुवाद कर सुगम्य करना एक सामाजिक उत्तरदायित्व है। क्योंकि--योगवासिष्ठकार ने कठिन, शुष्क एवं दुरूह भाषा को राख में पड़े हुये घी के समान बताया है।

त्यक्तोपमानममनोग्यपदं दुरापं
क्षुब्धं धराविधुरितं विनिगीर्णवर्णम्।
श्रोतुर्न याति हृदयं प्रविनाशमेति
वाक्यं किलाज्यमिव भस्मानि हूयमान्।।
योगवासिष्ठ, 3.84.46

अर्थात् जो भाषा कठिन, कठोर एवं कठिनाई से उच्चारण किये जाने वाले शब्दों से युक्त एवं दृष्टान्तों से रहित है, वह श्रोता के हृदय में प्रवेश नहीं कर सकती और वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे राख में पड़ा हुआ घृत।

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालंकारविभूषितम्
यत्कथ्यते हि हृदयंगमयोपमान-

युक्त्या गिरा मधुरयुक्तपदार्थया च।
श्रोतुस्तदंग हृदयं परितो विसारि

व्याप्नोति तैलमिव वारिणि वार्य शंकाम्।।
योगवासिष्ठ, 3.84.45

अर्थात् जो कुछ ज्ञान ऐसी भाषा में कहा जाता है जो मधुर शब्दों से युक्त है एवं जिसमें समझ में आने वाली उपमाओं, दृष्टान्तों एवं युक्तियों का प्रयोग किया गया है, वह भाषा सुनने वाले के हृदय-प्रदेश में प्रवेश करके वहाँ पर इस प्रकार फैल जाती है जैसे तेल की बूँद जल के ऊपर फैल जाती है । जल पर तेल के समान फैलकर मधुर दृष्टान्तों से युक्त भाषा श्रोताओं के हृदय को आनंदित और प्रकाशित करती है एवं उनकी शंकाओं का समाधान करती है। आध्यात्मिक काव्य को दुर्लभ माना गया है। उसे सुलभ करने हेतु ही मेरा ध्यान उनके सहज अनुवाद की ओर गया और मैं ईशकृपा से यह कार्य कर सकी। ✠✠✠

अमेरिका में हिंदी भाषा का स्थान

डॉ. विजय गंभीर

अमेरिका में स्कूल के बच्चों को हिंदी सिखाने का काम मुख्य रूप से भारतीय समाज के हिंदी उत्साही स्वयंसेवक ही कर रहे हैं। अधिकतर बच्चों के माता पिता ही हिंदी भाषा व संस्कृति को बचाए रखने के उद्देश्य से प्रेरित हो कम्यूनिटी स्कूलों में बच्चों को अधिकतर सप्ताहांत में एक बार दो घंटे के लिए हिंदी पढ़ाते हैं। इनकी कक्षाएं या तो किसी स्थानीय सरकारी स्कूल में या भारतीय मंदिरों अथवा भारतीय कम्यूनिटी सेंटरों में चलती हैं।

अमेरिका में में 2006 से पहले हिंदी का राष्ट्रीय स्तर पर कोई विशेष स्थान नहीं था। बस वीकएंड में चलने वाले हैरिटेज स्कूलों में भारतीय मूल के बच्चों के अलावा कुछ विदेशी सेवा में रत अफसर, मिलिट्री के सैनिक और यूनिवर्सिटियों के छात्र विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीखते थे। परंतु 2006 में प्रेजीडेंट बुश के नेशनल सिक्यूरिटी लेंग्वेज इनीसिऐटिव (एनएसएलआई) और अमेरिकन कमपीटिटिवनेस प्रोग्राम के कारण स्थिति बहुत बदल गई। एनएसएलआई के अधीन कुछ भाषाओं को अमेरिका की सुरक्षा और समृद्धि की दृष्टि में क्रिटिकल माना गया है। हिंदी भी इन्हीं क्रिटिकल भाषाओं की सूची में शामिल है क्योंकि यह अमेरिका की वर्तमान और भावी आर्थिक समृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण भाषा समझी जा रही है। आज अमेरिका और भारत के कई क्षेत्रों में गहरे संबंध हैं और भविष्य में व्यापार, रिसर्च, स्वास्थ्य इत्यादि क्षेत्रों में और भी साझेदारी बढ़ने की प्रबल संभावना है। अमेरिका ऐसे छात्रों और विद्वानों को बड़ी संख्या में तैयार कर रहा है जिन्हें हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का उच्चस्तरीय ज्ञान हो और वे इतिहास, राजनीति, साहित्य और कला आदि के ज्ञान के आधार पर अलग अलग क्षेत्रों में भारत के लोगों के साथ मिलकर काम कर सकें।

देश की सुरक्षा और आर्थिक स्थिति को और मजबूत करने के लिए अमेरिका के डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट एंड डिफेंस, डायरेक्टर ऑफ नेशनल इंटेलीजेंस और डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन ने एक सुनियोजित योजना तैयार की है। इस योजना के अनुसार स्कूलों, कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में हिंदी व अन्य क्रिटिकल भाषाओं को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने विद्यार्थियों के शिक्षण के लिए और शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कई नए कार्यक्रम शुरू किए हैं। अमेरिका सरकार चाहती है कि बच्चे छोटी आयु से ही ये भाषाएं सीखना शुरू करें ताकि वे उन भाषाओं में उच्च स्तर की प्रवीणता प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही इस बात पर कड़ी नजर रखी जा रही है कि भाषा-शिक्षण के लिए शिक्षक शोध-समर्थित सर्वोत्तम तरीकों को अपनाएं। भाषा-शिक्षकों को ट्रेनिंग देने के लिए विशेष वर्कशॉप और कोर्स चलाए जा रहे हैं, जिसके लिए सरकार का अच्छा खासा सालाना बजट है।

सम्पर्क: vijay@gambhir.net

हिंदी को अमेरिका की एक क्रिटिकल भाषा माने जाने से हिंदी के आयाम तो निश्चित ही विस्तृत हो गए हैं। अब हिंदी का महत्व केवल भारतीय मूल के लोगों के लिए ही नहीं रहा, बल्कि अमेरिकन लोगों के लिए भी महत्वपूर्ण है। अब हिंदी सीखने के कारण पारिवारिक या भारतीय पहचान तक सीमित नहीं रहे, अपितु कई केरियर और पेशों के साथ जुड़ गए हैं। यानी, हिंदी जानने के आर्थिक रूप भी उभर कर आ रहे हैं। आज अमेरिका के बड़े-बड़े अस्पताल ऐसे डॉक्टरों और नर्सों को नौकरी पर रखना चाहते हैं जो अंग्रेजी के अलावा हिंदी व कोई अन्य भाषा भी जानते हों। कई बैंकों और कानूनी संस्थाओं की भी नौकरी देने की नीति इसी प्रकार की है। कुछ सामान्य स्टोरों, जैसे 'होम डिपो', पर ऐसा साइन भी लगा दिया जाता है कि उनके कर्मचारी कौन-कौन सी भाषाओं में ग्राहकों से बात कर सकते हैं।

हिंदी व अमेरिका की अन्य हैरिटेज भाषाओं के लिए 21वीं शताब्दी एक वरदान सिद्ध हो रही है क्योंकि आज अमेरिकी सरकार न केवल चाहती है कि हर अमेरिकी बहुभाषी हो बल्कि अमेरिका के सभी समुदाय अपनी अपनी हैरिटेज भाषाएं सुरक्षित रखें और उनमें औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर उच्च स्तर की प्रवीणता हासिल करें। अमेरिका की भाषाई नीति में यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है खासकर जब हम इसकी तुलना अमेरिका के 18वीं से 20वीं सदी के भाषाई इतिहास से करते हैं। उस समय की अमेरिकी सरकार का हैरिटेज भाषाओं के प्रति रुख एकदम उदासीन था। उनकी नीति केवल अंग्रेजी को प्रोत्साहन देने की थी क्योंकि उनकी संकुचित सोच के अनुसार उस समय के जर्मनी, फ्रांस, इटली वगैरा से आए सभी अप्रवासियों में अमेरिका के प्रति देशभक्ति जगाने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि सभी अमेरिकी नागरिक एक ही भाषा बोलें और सब सरकारी काम एक ही भाषा में हो। उस समय अमेरिका में अंग्रेजों का राज था तो उन्होंने इस काम के लिए अंग्रेजी को ही चुना, हालांकि उस समय अमेरिका में जर्मन भाषा बोलने वाले काफी भारी संख्या में थे।

अंग्रेजी के थोपे जाने से अमेरिका के अप्रवासियों की भाषाएं और देशज लोगों की भाषाओं, जैसे इंडियन-अमेरिकन भाषाएं और हवाई भाषा का ह्रास तेजी से होने लगा। इस नीति के परिणामस्वरूप, कुछ ही समय में अमेरिका में जर्मन, फ्रेंच, इटालियन आदि बोलचाल की भाषा के रूप में नहीं बच पाईं। बस केवल स्कूलों और कॉलेजों में विदेशी भाषा के रूप में ही रह गई। कालांतर में हवाई भाषा और अनेक अमेरिकन-इंडियन भाषाएं तो मृतप्राय सी हो गईं। कहां एक समय था जब अमेरिका में अमेरिकन-इंडियन परिवार घरों में लगभग 250 अलग-अलग तरह की भाषाएं बोलते थे मगर आज यू.एस सैंसस ब्यूरो 2006-2010 अमेरिकन कम्यूनिटी सर्वे के अनुसार अमेरिका के 2.4 मिलियन अमेरिकन-इंडियन लोगों में से केवल 15 प्रतिशत ही अपने घरों में चंद गिनी चुनी अमेरिकन-इंडियन भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

यही हाल हवाई जैसी समृद्ध भाषा का भी हुआ जब सन् 1898 में हवाई द्वीप पर कब्जा कर इसे यू.एस. में शामिल कर लिया गया। एक समय तो ऐसा आया इस भाषा को बोलने वाले 50 से भी कम लोग रह गए। 1983 में हवाई भाषा और संस्कृति को फिर से जीवित करने का बीड़ा कुछ शिक्षकों ने उठाया और हवाई के माध्यम से हाई स्कूल की पढ़ाई भी होती है। मगर इतना होने पर भी हवाई भाषा को आज वह मान नहीं मिल पाता जो मिलना चाहिए क्योंकि उच्च शिक्षा और नौकरियां पाने के लिए अंग्रेजी ही काम आती है।

अमेरिका की इन सब भाषाओं का ह्रास उस समय की समीकरण अर्थात् एसीमीलेशन की नीति तथा अंग्रेजी के अलावा दूसरी संस्कृतियों के अनादर के भाव का ही परिणाम था। अमेरिका के बैंजामिन फ्रैंकलिन और थीओडोर रूजवेल्ट जैसे बड़े नेता भी सोचते थे कि सिर्फ अंग्रेजी भाषा ही अमरीकन देशभक्ति और सभ्यता का प्रतीक हो सकती है। अमेरिका की दूसरी जन-भाषाओं और उनकी संस्कृतियों को असभ्य और गंवारू माना जाता था (सीएस एटकीन्स: 1887)। स्कूलों में पढ़ाई केवल अंग्रेजी माध्यम से ही होती थी। छात्रों के माता पिता को कहा जाता कि वे अपने बच्चों के साथ अंग्रेजी के अलावा कोई अन्य भाषा न बोलें। स्कूल में कोई बच्चा अंग्रेजी के अलावा अपने घर की भाषा बोलता पकड़ा जाता तो उसे कड़ी शारीरिक सजा मिलती। बेचारे बच्चों को अपनी मां की भाषा बोलने पर शर्मिन्दगी उठानी पड़ती इसका अनुमान 'हाउ हावाईन लैंग्वेंज अल्मोस्ट डाइड' लेख से लगाया जा सकता है।

आज हमारा सौभाग्य है कि 2006 के बाद अमेरिका की भाषाई नीति बदल गई है वरना हिंदी का भी वही हाल होता जो अमेरिका की अन्य भाषाओं का हुआ था। हिंदी के संरक्षण के लिए तो आज विशेष सुविधाएं उपलब्ध हैं क्योंकि यह 2010 की चुनिंदा 13 क्रिटिकल भाषाओं में से एक है। आज अमेरिका की भाषाई नीति एकभाषिकता का मंत्र छोड़कर बहुभाषिकता में बदल

गई है। इस नई कार्यनीति के अनुसार प्रत्येक अमेरिकी छात्र को अंग्रेजी और कम से कम एक अन्य हैरिटेज या विदेशी भाषा जरूर आनी चाहिए। वैसे 2013 के आंकड़ों के अनुसार अमेरिका में आज लगभग हर पांच व्यक्तियों में से एक व्यक्ति, याने 62 मिलियन अमेरिकी अंग्रेजी के अलावा अपने घर की भाषा भी बोलते हैं और इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है।

अमेरिका में स्कूल के बच्चों को हिंदी सिखाने का काम मुख्य रूप से भारतीय समाज के हिंदी उत्साही स्वयंसेवक ही कर रहे हैं। अधिकतर बच्चों के माता पिता ही हिंदी भाषा व संस्कृति को बचाए रखने के उद्देश्य से प्रेरित हो कम्यूनिटी स्कूलों में बच्चों को अधिकतर सप्ताहांत में एक बार दो घंटे के लिए हिंदी पढ़ाते हैं। इनकी कक्षाएं या तो किसी स्थानीय सरकारी स्कूल में या भारतीय मंदिरों अथवा भारतीय कम्यूनिटी सेंटरों में चलती हैं। इन कम्यूनिटी स्कूलों में शिक्षक अक्सर नए भाषा शिक्षण के तौर-तरीकों से परिचित नहीं होते और न ही उनको पूरी तरह इस बात का ज्ञान होता है कि मातृभाषा, विदेशी भाषा और हैरिटेज भाषा के सीखने व सिखाने में क्या अंतर होता है। परंतु फिर भी कुछ सालों में इन स्कूलों के बच्चे थोड़ी हिंदी पढ़ना, लिखना और बोलना सीख ही लेते हैं।

इस समय अमेरिका में हिंदी कम्यूनिटी स्कूल काफी बड़ी संख्या में हैं। जहां-जहां भारतीय मूल के लोग ज्यादा बसते हैं, उन सभी शहरों में ऐसे स्कूल चल रहे हैं। जैसे-जैसे भारतीय माता-पिता की इस बात में रुचि बढ़ रही है कि उनके बच्चे ग्लोबल नागरिक बनें और वे भारत और अमेरिका दोनों देशों के समाज और संस्कृति को समझें वैसे-वैसे हिंदी कम्यूनिटी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है। कई स्कूलों ने अलग-अलग स्तर की हिंदी के लिए अपने पाठ्यक्रम और पुस्तकें भी तैयार कर ली है और अब चंद शिक्षक भाषा-शिक्षण की ट्रेनिंग में भी हिस्सा भी ले रहे हैं। न्यूजर्सी, न्यूयार्क, टैक्सास और कैलिफोर्निया में, जहां भारतीय मूल के लोग ज्यादा हैं, कम्यूनिटी स्कूलों में विद्यार्थियों की तादाद काफी बड़ी है। जैसे, न्यूजर्सी के हिंदी यू.एस.ए. स्कूल में, जो पिछले 15 वर्षों से चल रहा है, इस समय छात्रों की संख्या 4,000 से भी अधिक है। इसकी कई शाखाएं हैं और 350 से ज्यादा स्वयंसेवी शिक्षक इसमें जुटे हैं।

प्रेजीडेंट बुश के 2006 के लैंग्वेज इनशिएटिव के बाद अमेरिका के सभी कम्यूनिटी स्कूलों को एक नई मान्यता भी प्राप्त हुई हैं कि इन स्कूलों से पढ़ कर छात्र एक मानक परीक्षा पास कर अपने स्कूल और कॉलेज की फॉरेन लैंग्वेज रिक्वाइरमेंट पूरी कर सकते हैं। हिंदी कम्यूनिटी स्कूलों के बारे में अधिक जानकारी के लिए सेंटर ऑफ अप्लाईड लिंगुस्टीक द्वारा तैयार किए डेटाबेस पर जाएं जहां अनेक स्कूलों के नाम और उनके वेबपेज का पता दर्ज है।

अमेरिका के सरकारी स्कूलों में, जिनको अमेरिका में पब्लिक स्कूल कहा जाता है, अभी तक केवल चंद ही स्कूलों में मिडिल और हाईस्कूल के स्तर पर हिंदी पढ़ाई जाती है। जबकि प्रेसीडेंट बुश के 2006 के नैशनल सिक्योरिटी लैंग्वेज सिक्योरिटी इनिशिएटिव के अधीन हिंदी व अन्य क्रिटिकल भाषाएं किंडरगार्डन से लेकर हाई स्कूल तक पढ़ाये जाने की योजना है। 2006 से पहले केवल टैक्सस प्रदेश के बेलेयर नाम के एक हाई स्कूल में ही हिंदी पढ़ाई जाती थी, जो 1988 से चल रहा है। लेकिन नैशनल सिक्योरिटी लैंग्वेज इनिशिएटिव के पश्चात न्यूजर्सी, न्यूयार्क, टैक्सस और कैलिफोर्निया के कुछ और स्कूलों में भी हिंदी पढ़ाई जाने लगी है। हां, अमेरिका के सरकारी स्कूलों में हिंदी की शिक्षा शुरू करने में अभी काफी चुनौतियां हैं और इस काम की गति काफी धीमी है। सबसे बड़ी चुनौती तो यह है कि अधिकतर भारतीय माता पिता अपने बच्चों को स्कूल में हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित नहीं करते और न ही वे अपने स्थानीय स्कूलों पर हिंदी शुरू करने की मांग करते हैं। कई बार ऐसा भी हो चुका है कि स्कूल में हिंदी के कोर्स की घोषणा तो हो गई परंतु हिंदी पढ़ने वालों की संख्या इतनी कम थी कि कोर्स कैंसिल करना पड़ा। कभी-कभी समस्या यह भी होती है कि हिंदी के प्रशिक्षित शिक्षक नहीं मिलते। इसके अलावा, हिंदी के प्रति हैरिटेज और नान-हैरिटेज माता पिता का उत्साह अक्सर ठंडा ही रहता है, क्योंकि भारत में भी तो पढ़े लिखे प्राय: अंग्रेजी बोल कर ही खुश होते हैं। कुछ हिंदी-भाषी तो अपने हिंदी के ज्ञान को नकारने में ही गौरव का अनुभव करते हैं। कहते हैं, ''मुझे हिंदी नहीं आती।''

आज अमेरिका के 100 से भी अधिक कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तरों पर हिंदी के पठन-पाठन का कार्य चल रहा है। कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी-शिक्षण सेल्फ-इनस्ट्रासन प्रोग्राम के रूप में भी होता है, जैसे न्यूयार्क में वैसर कॉलेज, कैलिफोर्निया में चीको विश्वविद्यालय और मैसेच्सूसैट्स में फाईव कॉलेज कॉनसोरटीयम। पिछले कई वर्षों

से यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिल्वेनिया के प्रसिद्ध वार्टन बिजनिस स्कूल में भी उन ग्रेजुएट छात्रों के लिए जो भारत के साथ व्यापार के क्षेत्र में काम करना चाहते हैं, हिंदी के उच्चस्तरीय ज्ञान के शिक्षण का कार्य चल रहा है। इन छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे अनौपचारिक व औपचारिक विषयों पर हिंदी में चर्चा कर पाएं और हिंदी के लेख आदि पढ़कर उनका विश्लेषण भी कर सकें।

अमेरिका में हिंदी-शिक्षण के इतिहास को देखें तो अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिल्वेनिया, फिलाडेल्फिया में हिंदी व कुछ दूसरी महत्वपूर्ण साउथ एशिया की भाषाएं भारत की आजादी के तुरंत बाद ही सिखाई जाने लगी थीं। क्योंकि अमेरिकी सरकार समझती थी कि भारत की संस्कृति और उसकी भाषाओं का ज्ञान अमेरिका के साउथ एशिया के साथ अंतरराष्ट्रीय संबंधों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सरकारी टाईटल फोरस्थ ग्रांट के अधीन कुछ बड़ी-बड़ी यूनिवर्सिटियों में साउथ एशिया रिसोर्स सैंटर खोले गए, जैसे यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कांसिन और बर्कले यूनिवर्सिटी। इन सैंटरों में साउथ एशिया की मुख्य भाषाओं के साथ-साथ साउथ-एशिया के तुलनात्मक इतिहास, राजनीति, साहित्य, अर्थशास्त्र और कला जैसे विषयों का भी ग्रेजुएट स्तर पर अध्ययन और अध्यापन होने लगा। इन छात्रों को उनके एम. ए. या पीएच.डी के थीसिस के विषय पर शोध करने के लिए भारत या किसी अन्य साउथ एशिया के देश में जाने के लिए छात्रवृत्तियां भी उपलब्ध हैं।

हिंदी कौन छात्र पढ़ते हैं, क्यों पढ़ते हैं, और शिक्षण संबंधी चुनौतियां क्या हैं? अमेरिका की यूनिवर्सिटियों में, अस्सी के दशक तक तो हिंदी पढ़ने वाले केवल अमेरिकन ग्रेजुएट छात्र ही होते थे। हैरिटेज या भारतीय मूल के छात्र नहीं थे क्योंकि इस समय तक हमारे अप्रवासी भारतीयों के बच्चे छोटे होने के कारण यूनिवर्सिटियों में नहीं पहुंचे थे। लेकिन अस्सी के दशक के शुरू में अंडरग्रेजुएट हैरिटेज विद्यार्थी भी हिंदी की कक्षाओं में आने लगे। इससे शिक्षकों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती खड़ी हो गई थी क्योंकि शिक्षक हैरिटेज और नान हैरिटेज छात्रों के सीखने के अलग तरीकों से और भाषाई जरूरतों से अनभिज्ञ थे। अमेरिकन छात्र हिंदी एक विदेशी भाषा के रूप में सीखते हैं क्योंकि उनको कक्षा में आने से पहले हिंदी का कोई पूर्वज्ञान नहीं होता। उनके हिंदी सीखने के कारण भी अक्सर अकादमिक होते हैं। दूसरी ओर, हैरिटेज छात्र आमतौर पर पारिवारिक या मनोरंजन के लिए हिंदी सीखना चाहते हैं। हैरिटेज छात्रों को हिंदी के लेख, समाचार पत्र और साहित्य आदि पढ़ने में दिलचस्पी कम ही होती है। वैसे भी भारतीय मूल के छात्र अधिकतर मैडिकल, इंजीनियरिंग, बिजनिस और आई.टी. क्षेत्रों की ओर ही आकर्षित होते हैं जहां औपचारिक हिंदी की आवश्यकता कम होती है।

हिंदी के शिक्षण को लेकर एक चुनौती और भी है क्योंकि हिंदी के हैरिटेज छात्र कई प्रकार के होते हैं। कुछ ऐसे परिवारों से आते हैं जहां हिंदी के अलावा भारत की कोई अन्य आर्य भाषा (पंजाबी, गुजराती, वगैरा) बोली जाती है और कुछ द्रविड़-भाषी परिवारों से आते हैं। जो छात्र आर्य-भाषी परिवारों से आते हैं उनको निश्चित ही द्रविड़-भाषी परिवारों से आए छात्रों की तुलना में हिंदी सीखने में कम समय लगता है क्योंकि उनके घर की भाषा में काफी शब्द हिंदी से मिलते-जुलते हैं। तमिल, तेलूगु वगैरा भाषाओं में व्याकरणिक और शब्दावली की दृष्टि से हिंदी के साथ बहुत समानता नहीं होती। मगर हां यह जरूर है कि द्रविड़-भाषी परिवारों से आए हुए छात्र भी नान-हैरिटेज छात्रों की तुलना में हिंदी जल्दी सीख लेते हैं, क्योंकि इंडिया एज ए लिंगुस्टीक एरिया होने के कारण भारत की सभी भाषाओं में ध्वनि और संरचना की दृष्टि से कुछ समानताएं अवश्य हैं। हिंदी शिक्षकों को अलग अलग प्रकार के हैरिटेज और नान हैरिटेज छात्रों की भाषाई जरूरतों का ज्ञान होना अति आवश्यक है क्योंकि तभी वे डिफरेंटीयेट इनस्ट्रासन से सब छात्रों की कम से कम समय में भाषा-प्रवीणता बढ़ाने में सहायता कर सकते हैं।

हालांकि हैरिटेज और नान हैरिटेज छात्रों की भाषाई जरूरतें, सीखने का ढंग और उनका हिंदी भाषा व संस्कृति का पूर्वज्ञान अलग-अलग होता है, फिर भी इनके लिए अलग-अलग कक्षाएं चलाना प्राय: संभव नहीं हो पाता। एक तो नान हैरिटेज छात्रों की संख्या हैरिटेज छात्रों की तुलना में काफी होती है और दूसरे बजट की भी समस्या रहती है। एक सर्वे के अनुसार अमेरिका की यूनिवर्सिटियों में औसतन 80 प्रतिशत छात्र हैरिटेज ही होते हैं। हैरिटेज और नान हैरिटेज छात्रों को एक साथ पढ़ाने की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अमेरिकी सरकार ने 2002 में एक नैशनल हैरिटेज लैंग्वेज रिसोर्स सेंटर खोला। इस सेंटर में हैरिटेज और नान-हैरिटेज छात्र भाषा कैसे सीखते हैं और उनको एक साथ पढ़ाने के लिए क्या सफल कार्यनीतियां अपनाई जा सकती हैं—इस प्रकार के विषयों पर शोध होता है और

भाषा-शिक्षकों को ट्रेनिंग दी जाती है। यहां प्रतिवर्ष अंतरराष्ट्रीय कान्फ्रेंस भी होती हैं और एक शोध-पत्रिका भी निकाली जाती है। यह बात उल्लेखनीय है कि भाषा के शिक्षण, शोध, मापदंड और विस्तार संबंधी काम के लिए इस समय अमेरिका में 16 नैशनल रिसोर्स सैंटर चल रहे हैं जहां भाषा-शिक्षण और शोध के अलग-अलग पक्षों पर काम चल रहा है।

हिंदी भाषा सिखाने की पद्धति के बारे में बात करें तो वह पिछले कुछ दशकों में बहुत बदली है। अब केवल व्याकरण के नियमों और रट्टू तोते की तरह लैब में बिठाकर वाक्यों को दोहरा कर हिंदी नहीं सिखाई जाती। अब व्यावहारिक हिंदी सिखाई जाती है जिसका प्रयोग हैरिटेज और नान-हैरिटेज छात्र अपने रोजमर्रा जीवन और कैरियर से जुड़े कामों के लिए कर सकें। दूसरे शब्दों में अब सारा ध्यान भाषा के सार्थक प्रयोग पर रहता है न कि व्याकरण जानना भाषा सीखने का अंतिम लक्ष्य नहीं होता। लक्ष्य है भाषा के द्वारा अपने विचारों का सामाजिक नियमों के अनुसार सही सही आदान-प्रदान करना। हिंदी भाषा सीखने और सिखाने के लिए अब हिंदी के नैशनल स्टैंडर्ज भी उपलब्ध हैं जो हिंदी के अनुभवी शिक्षकों की एक टीम ने स्कूलों और कॉलेजों के शिक्षकों के लिए तैयार किए हैं।

हिंदी भाषा को सीखने-सिखाने से जुड़े प्रश्नों पर शोध कार्य भी चल रहा है। प्रतिवर्ष हिंदी के शिक्षक एनसीओएलटीसीएस और SALA की कांफ्रेस में शोध-पत्र प्रस्तुत करते हैं।

अमेरिका के डिफैंस लैंग्वेज इंस्टीट्यूट में उन फौजी नौजवानों को हिंदी सिखाई जाती है जिनकी पोस्टिंग साउथ एशिया में होने वाली होती है। ये नौजवान अपनी फौजी वर्दी में रोज 7 घंटे 26-84 हफ्तों के लिए हिंदी-भाषा और भारत की संस्कृति के बारे में सीखते हैं। इसके अलावा, फॉरन सर्विस इंस्टीट्यूट में भी भारत से संबंधित कूटनीतिज्ञ अधिकारी व स्टाफ के दूसरे लोग हिंदी सीखते हैं। इन संस्थानों में हिंदी-शिक्षण के लिए काफी सामग्री तैयार की गई है जिसमें से कुछ ऑनलाइन उपलब्ध हैं।

हिंदी शिक्षण और प्रशिक्षण को सरकारी स्कूलों, कम्युनिटी स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में बढ़ावा देने के लिए अमेरिकी सरकार से कई अनुदान और छात्रवृत्तियां उपलब्ध हैं। इन्हीं की बदौलत हिंदी सीखने के लिए आज ग्रीष्मकालीन और साल भर के कई कार्यक्रम भारत और अमेरिका में चलते हैं। इनमें मुख्य हैं—नैशनल सिक्योरिटी लैंग्वेज इनीशिएटिव-यूथ, क्रिटिकल लैंग्वेज स्कॉलरशिप प्रोग्राम, अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज, लैंग्वेज फ्लैगशिप प्रोग्राम। यह फ्लैगशिप प्रोग्राम 2006-16 तक यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सस में था और 2017 से यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कांसिन के सालसी कार्यक्रम के अधीन चलेगा।

हिंदी के लिए कई प्रकार की सरकारी छात्रवृत्तियां स्टारटॉक प्रोग्राम के अधीन भी मिलती हैं। ये 2007 से के-12 छात्रों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए, शिक्षण-प्रशिक्षण सामग्री तैयार करने के लिए और कभी कभी नए कार्यक्रम शुरू करने के लिए भी उपलब्ध होती हैं। इसी सरकारी अनुदान द्वारा ही 2014 में पहली बार न्यूजर्सी की कीन यूनिवर्सिटी में हिंदी-उर्दू पैडागोजी के लिए एम.ए. की डिग्री भी शुरू हो गई है।

इन सब भाषा-शिक्षण और भाषा-प्रशिक्षण के अवसरों के कारण आज अमेरिका में हिंदी की स्थिति को विशिष्ट बल मिल रहा है।

इस समय तो भारतीय अप्रवासियों का हिंदी भाषा के प्रति उत्साह का सूरज चढ़ता हुआ दिखता है क्योंकि अमेरिकी सरकार अपनी नई भाषाई नीतियों के अधीन हिंदी भाषा के शिक्षण और प्रशिक्षण को बहुत प्रोत्साहन दे रही है। परंतु फिर भी हिंदी के भविष्य को लेकर मन में अनेक शंकाएं उठती हैं। हम जानते हैं कि भाषाएं तभी अपने जीवंत रूप में फलती-फूलती हैं जब तक वे घरों में पीढ़ी दर पीढ़ी बोली जाती हैं और लोग भाषा के विभिन्न प्रयोग-क्षेत्रों में उसका प्रयोग करते हैं। केवल स्कूल और कॉलेजों में विदेशी या हैरिटेज भाषा के रूप में सीखी हुई भाषा के प्रयोग-क्षेत्र सीमित ही होते हैं। यदि हम अमेरिका में भारतीयों की पहली और दूसरी पीढ़ी में हिंदी के प्रयोग का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि अधिकतर पहली और दूसरी पीढ़ी के लोग ही अपने परिवार और मित्रों से हिंदी में बात करते हैं, हिंदी के कार्यक्रम देखते हैं, कवि-सम्मेलनों में जाते हैं और कुछ गिने चुने साहित्यकार हिंदी में अपनी रचनात्मक कृतियों से पहली पीढ़ी का रसास्वादन करते रहते हैं।

लगता है कि तीसरी या चौथी पीढ़ी के भारतीय मूल के बच्चों की नानी दादी भी तो केवल अंग्रेजी ही बोलेंगी।

✠✠✠

भाषिक दृष्टि से गुलाब खंडेलवाल हिंदी के पहले ग़ज़लकार हैं

जहीर कुरेशी

महाकवि गुलाब खंडेलवाल को उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के कारण अमेरिका के बाल्टीमोर नगर की मानद नागरिकता 1985 में प्रदान की गई। छह दिसंबर 1986 में जब 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' ने उन्हें वाशिंगटन में विशिष्ट कवि के रूप में सम्मानित किया, तब मेरीलैंड के गवर्नर द्वारा मेरीलैंड स्टेट में उक्त दिन को 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की गई। सन् 1941 में उनका काव्य-संकलन 'कविता' प्रकाशित हुआ जिसकी भूमिका महाकवि निराला ने लिखी थी। तब से अब तक उनके 42 काव्य-ग्रंथ और 2 गद्यनाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने हिंदी में गीत, दोहा, सोनट, रूबाई, ग़ज़ल, नव शैली कविता, मुक्तक, काव्य नाटक, प्रबंध काव्य, महाकाव्य आदि के सफल प्रयोग किए। इस लेख में उनके गजलकार पर वरिष्ठ ग़ज़लगो व आलोचक जहीर कुरेशी ने विशेष रूप से इस अंक के लिए कलम चलाई है।

-संपादक

सम्पर्क: 108, त्रिलोचन आवर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्श की तलैया, पो.आ. जीपीओ, भोपाल-462001 (म.प्र.), मो: 09425790565, ई-मेल: poetzaheerqureshi@gmail.com

अमेरिका के प्रख्यात कवि गुलाब खंडेलवाल छायावादी कविता युग के फौरन बाद के उन सिद्ध कवियों में से एक हैं-जो निस्संदेह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में गीत, गेय मुक्त छंद, प्रबंध-काव्य, गीति नाट्य, सॉनेट, क़ता, रुबाई और ग़ज़ल को पूरे अधिकार के साथ लिखा। उनकी इस गेय विधाओं का उस समय के अनेक दिग्गज साहित्यकारों ने 'नोटिस' लिया और समय-समय पर गुलाब जी की प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की।

गुलाब जी की ओर मेरी विशेष रुचि उनके ग़ज़लगो स्वरूप के कारण हुई।... शायद इस कारण और अधिक कि हिंदी ग़ज़ल के गोमुख दुष्यंत कुमार ने भी उनसे ग़ज़ल-प्रभाव करने की बात स्वीकार की थी। दिल्ली में एक आत्मीय मुलाकात के अंतर्गत, मुझे 'एक संपादक' ने बताया कि बीती सदी में सत्तर के दशक से थोड़े पहले दैनिक 'आज' (वाराणसी) के एक नियमित साप्ताहिक स्तंभ में गुलाब खंडेलवाल जी की ग़ज़लें छपती थीं। जिन्हें उस समय दुष्यंत कुमार लगातार पढ़ते और आत्मसात करते रहे। वहीं से दुष्यंत के मन में ग़ज़ल कहने के प्रति तीव्र ललक पैदा हुई। बाद में, दुष्यंत की ग़ज़लों ने क्या कमाल दिखाया—कहने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार, गुलाब खंडेलवाल दुष्यंत से पूर्ववर्ती ग़ज़ल कहने वाले रचनाकर सिद्ध होते हैं। उपरोक्त आत्मीय वार्तालाप के अंतर्गत मुझे यह ज्ञात हुआ कि गुलाब जी दुष्यंत कुमार से ज्यादा हिंदी प्रकृति के ग़ज़लकार थे।

बस, उसी शाम से मैं गुलाब खंडेलवाल के 3-4 प्रकाशित ग़ज़ल-संग्रहों की तलाश में जुट गया। पांच-छः महीने की दूरभाषिक तलाश के बाद, फोन पर मेरी अदृश्य भेंट हुई अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिकी 'विश्वा' के संपादक और वरिष्ठ व्यंग्य लेखक (सीकर के) रमेश जोशी से। उन्होंने भी मुझे गुलाब जी की ग़ज़लगोई के विषय में बहुत कुछ बताया। अंत में, रमेश जोशी के अनुरोध पर गुलाब जी की बेटी विभा ने स्पीड पोस्ट से मुझे एक पुस्तक 'गुलाब ग्रंथावली' (खंड-तीन) की एक प्रति प्रेषित की जिसमें मुझे सुकवि गुलाब खंडेलवाल के एक साथ चारों ग़ज़ल-संग्रह पढ़ने को मिल गए।

सबसे पहले तो मैं गुलाब जी के पहले ग़ज़ल-संग्रह 'सौ गुलाब

खिले' की एक सौ नौ ग़ज़लों से हो कर गुजरा। मैंने बहुत धैर्य के साथ उनकी एक सौ दो ग़ज़लों को अस्वादा। ग़ज़लें आस्वाद कर, मुझ पर जो सबसे पहला प्रभाव पड़ा, वह यह कि ये देवनागरी में लिखी या छपी उर्दू प्रकृति की ग़ज़लें नहीं हैं। इनका सुभाव उर्दू से अलग रह कर नितांत हिंदी का है। यथा—

हमने ग़ज़ल का और भी गौरव बढ़ा दिया,
रंगत नयी तरह की जो भर दी 'गुलाब' में।

चूंकि गुलाब खंडेलवाल मुक्तक, क़ता, रुबाई, सॉनेट से गुजर कर, हिंदी काव्य में ग़ज़ल तक आए थे, इसलिए उनके शेरों में वांछित सांकेतिकता मिलती है, जो ग़ज़ल का अपरिहार्य अंग है। जैसे—

मेंहदी लगी हुई हैं उमंगों के पाँव में,
सपने में भी तो आपसे आया न जायगा।

हम किनारे से दूर जा न सके
एक चितवन बँधी थी नाव के साथ।

इन ग़ज़लों को पढ़ते हुए मुझे एक बात और समझ आई कि इन ग़ज़लों में सुकवि गुलाब खंडेलवाल ने उर्दू कविता की परंपरागत प्रतीक योजना से अपने आप को यथा-संभव बचाया है। कथ्य के लिहाज से 'सौ गुलाब खिले' की ग़ज़लें उर्दू की परंपरागत रूमानी ग़ज़लें से बिल्कुल अलग नहीं है। उन ग़ज़लों के विषय में, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ग़ज़ल की सुपरिचित भूमि पर रह कर भी शायर ने हिंदी के स्वीकृत सौंदर्य-बोध को निरंतर उच्च से उच्चतर बनाने की कोशिश की है।

सुकवि गुलाब खंडेलवाल के दूसरे ग़ज़ल-संग्रह 'पंखुड़ियाँ गुलाब की' में भी 109 ग़ज़लें हैं, जिनकी भाषा से लेकर भाव-भूमि भी लगभग वही है, जो पहले ग़ज़ल-संग्रह की है। अपनी ग़ज़ल क्र. 11 के एक शेर में जब गुलाब जी कहते हैं—

सिर्फ आँचल के पकड़ लेने से नाराज थे आप।
अब तो खुश है कि ये दुनिया ही छोड़ दी हमने।

पढ़कर अतिवादी उर्दू शेर 'गली हमने कही थी, तुम तो दुनिया छोड़े जाते हो' की याद आती है।

इसी कुल के अनेक शेरों में, मुझे उनका यह शेर भी अच्छा लगा—

तू मेरे प्यार की धड़कन तो समझता है जरूर,
मैं भले ही कभी होंठों से तेरा नाम न लूँ।

प्रणय-निवेदन, विरह, तड़प, मिलन-आकांक्षा और विवशता से पगे पचीसों शेरों के बीच जब गुलाब खंडेलवाल सामाजिक मनोविज्ञान का एक ऐसा शेर कहते हैं तो बहुत अच्छा लगता है—

हर नजर खामोश है, हर घर से उठता है धुँआ,
यह शहर का शहर ही लूटा हुआ लगता है आज।

गुलाब जी का उपनाम 'गुलाब' उनके कुछेक मकतों में अतिरिक्त चमक पैदा करता हुआ भी दिखता है। जैसे—

बनके खुशबू बाग की हद से निकल आए 'गुलाब'
लाख अब कोई मिटाए, मिट सकेंगे हम नहीं।

सिर पे काँटे भी बड़े शौक से रखते हैं 'गुलाब'
ताजपोशी तो बिना ताज नहीं होती है।

सुकवि गुलाब खंडेलवाल के तीसरे ग़ज़ल-संग्रह 'कुछ और गुलाब' में केवल 85 ग़ज़लें है।

लगातार तीन ग़ज़ल-संग्रह आस्वादन के बाद लगता है कि गुलाब जी ने ग़ज़ल की आत्मा को पहचाना है। उनके शेरों में उर्दू ग़ज़लों जैसा सहज शब्द-विन्यास, बाँकपन और तेवर मिलता है। हालांकि उनका वर्ण्य विषय एक ही है—लौकिक और अलौकिक प्रेम। प्रेम और सौंदर्य का पारस्परिक संबंध गुलाब जी के शेरों में भरपूर और सटीक है। जैसे—

अँधेरा था दिल में, अँधेरा था घर में,
कोई रूप की चाँदनी लेके आया।

कई बार विरह और वियोग में भी आनंद की अनुभूति होने लगती है, शायद संयोग से भी अधिक।

यों तो खुशी के दौर भी आए तेरे बगैर
आँसू निकल ही आए, मगर हर खुशी के साथ।

मुहावरों की चाशनी और जुबान की लफ़ाज़त से ऊपर उठ कर गुलाब जब जीवन के विरल गंभीर प्रश्नों पर भी नजर डालते हैं, तो अच्छा लगता है। जैसे—

धोखा कहें, फरेब कहें, हादसा कहें,
इस ज़िंदगी को क्या न कहें और क्या कहें।

सुकवि गुलाब खंडेलवाल के चौथे ग़ज़ल-संग्रह 'हर सुबह एक ताजा गुलाब' तक आते-आते उनकी ग़ज़लों की कुल संख्या तीन सौ साठ हो जाती है, यानी 'हर सुबह एक ताजा गुलाब'। लेकिन ग़ज़लों की इस संख्या तक आने के लिए उन्हें वस्तुतः वर्ष 1971 से 1981 तक का लंबा समय लगा।

मार्मिक संवेदना और सहज अभिव्यंजना से सजी गुलाब खंडेलवाल के चौथे संग्रह की हिंदी ग़ज़लों में भी प्रेम का वैभव

दिखाई देता है। ग़ज़ल की अपनी परंपरा और भांगिमा को उन्होंने समस्त विशेषताओं सहित हिंदी में उतारने की संपूर्ण कोशिश की है।

'नहीं विराम लिया है' गुलाब खंडेलवाल जी की वर्ष 1990 से 1998 के बीच कही गई ग़ज़लों का अंतिम ग़ज़ल-संग्रह है। 'नई ग़ज़लें' शीर्षक के अंतर्गत जिसमें से केवल आठ ग़ज़लों को ही 'गुलाब ग्रंथावली (खंड-3)' में शामिल किया गया है।

अंतिम ग़ज़ल-संग्रह की आठ 'नई ग़ज़लों' तक आते-आते गुलाब जी की प्रणय-आकुलता में थोड़ा ठहराव... थोड़ी संजीदगी के दर्शन होते हैं। जैसे—

कैसे फिर से शुरू करें इसको ?
ज़िंदगी है, कोई किताब नहीं।

इसी गंभीरता के अंतर्गत, गुलाब जी स्वीकार करते हैं कि अब से उम्र-रसीदा हो गए हैं। अब उन्हें अपनी नौजवानों के साथ-साथ और क्या कुछ याद आता है, मुलाहिजा फरमायें—

फिर इस दिल के मचलने की कहानी याद आती है,
मुझे फिर आज अपनी नौजवानी याद आती है।

कभी गाने को कहते ही, लजाकर सिर झुका लेना,
'गुलाब' अब भी किसी की आनाकानी याद आती है।

कुल मिलाकर, सुकवि गुलाब खंडेलवाल दुष्यंत पूर्व के एक ऐसे ग़ज़लकार थे जो भाषिक रूप से सचमुच हिंदी के रचनाकार

थे। भाषाई स्तर पर, उन्हें मध्यमार्गी हिंदी का ग़ज़लकार माना जा सकता है-जिन्होंने ग़ज़ल के चरित्र और मिजाज को समझा। मैं समझता हूँ कि पहली बार गुलाब खंडेलवाल ने हिंदी को वे ग़ज़लें प्रदान कीं, जो हिंदी की अपनी हैं एवं उसकी अपनी भाव-भूमि पर खड़ी हैं। गुलाब जी की ग़ज़ल का प्रमुख वर्ण्य-विषय प्रेम है और प्रणय की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का जैसा सूक्ष्म तथा सजीव वर्णन उनके शेरों में मिलता है, वह विरल है।

✠✠✠

वर्ष 2019 का कुंभ मेला प्रयागराज में आयोजित किया गया। इस वर्ष कुंभ मेले में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का विशेष योगदान रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा मेला 2019 के लिए 184 देशों से एक-एक प्रतिनिधि को भारत की सदियों पुरानी पारंपरिक भारतीय संस्कृति से अवगत कराने के उद्देश्य से आमंत्रित किया गया।

अमेरिकन भाषाविद् हिंदी प्राध्यापक हेर्मान वान ओल्फ़न

डॉ. भक्तराम शर्मा

प्रोफेसर ओल्फ़न के अनुसार सन् 1960 में टैक्सास विश्वविद्यालय, आस्टिन में पहली बार हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई। कुछ प्राध्यापकों की प्रेरणा से भारतीय अध्ययन के लिए स्थान बनाया गया। उनमें प्रमुख थे, विनफ्रेड लेमान। वे उस समय भाषाविज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे और काफी साल से संस्कृत भाषा पढ़ाते थे। डॉ. लेमान ने डॉ. एडगर सी. पोलोमे की भाषाविज्ञान विभाग में आमंत्रित किया और धीरे-धीरे भारतीय अध्ययन की रूपरेखा दिखाई देने लगी।

हेर्मान वान ओल्फ़न का जन्म एक अप्रैल, 1940 को हुआ था। इन्होंने स्नातक डिग्री गणित, रसायनशास्त्र और विदेशी भाषा विषय लेकर सन् 1963 में उत्तीर्ण की। सन् 1970 में आस्टिन में टैक्सास विश्वविद्यालय से भाषाविज्ञान के क्षेत्र में इन्होंने पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की।

सन् 1968 में टैक्सास विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान विभाग में इनकी सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति हुई। सन् 1969 में इसी विश्वविद्यालय के प्राच्य और अफ्रीकी भाषाएँ एवं साहित्य विभाग में वे सहायक प्रोफेसर बने। 1974 में इसी विभाग में इनकी संयुक्त प्रोफेसर के रूप में पदोन्नति हुई। 1974 में ही इन्हें भाषा-प्रयोगशाला का निदेशक बना दिया गया। फिर 1984 में इन्हें प्राच्य और अफ्रीकन भाषाएँ एवं साहित्य विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

इनकी शोध प्रवृत्तियों एवं साहित्यिक अभिरुचियों को ध्यान में रखते हुए इन्हें निम्नलिखित व्यावसायिक संस्थाओं की सदस्यता प्रदान की गई—(क) लिंग्विस्टिक्स सोसाइटी ऑव अमेरिका, (ख) अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी, नेशनल और साउथ-वेस्ट ब्रांच, 1970 (साउथ-वेस्ट ब्रांच के 1977-79 तक आप अध्यक्ष भी रहे), (ग) अमेरिकन काउंसिल ऑन द टीचिंग ऑव फॉरेन लैंग्वेजेज 1972, (घ) एशिया की विशेष भाषाओं की पढ़ाने के लिए बनायी गई अमेरिका के अध्यापकों की परिषद्, 1973 (1978-80 में अध्यक्ष भी रहे), (ङ) प्रयोगशाला निदेशकों के सीखने के लिए बनायी गई राष्ट्रीय संस्था के सदस्य, 1975।

भाषा और बोलियाँ विषय पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सर्वप्रथम सन् 1980 में आपने एक पुस्तक संपादित की जिसका शीर्षक है—'लैंग्वेज एंड डाइलेक्ट इन साउथ-ईस्ट एशिया'। इस पुस्तक में दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया की भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इनकी दूसरी संपादित पुस्तक है—सन् 1981 की वार्षिक मीटिंग की कार्यवाही, एशिया के अध्ययन के लिए दक्षिण-पश्चिमी सम्मेलन और अमेरिका का प्राच्य समाज, दक्षिणी-पश्चिमी शाखा 1982, पृष्ठ संख्या 991। 1983 में इसका वीडियो टेप उत्पत्ति संस्करण, भाषा प्रयोगशाला टैक्सास विश्वविद्यालय में बनाया

साभार: विश्व हिंदी के भगीरथ

गया जो कि 180 मिनट का रंगीन है।

अपने छात्रों की सुविधा हेतु इन्होंने कई पाठ्यपुस्तकें तैयार करवायीं जो कि अब अन्य विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित हैं।

सन् 1980 में सर्वप्रथम इन्होंने 400 पृष्ठों की प्रथम वर्ष के कोर्स के लिए एक पाठ्यपुस्तक तैयार कर प्रकाशित करवायी। इसमें 'दक्षिणी एशिया में भाषा और उपभाषा का स्तरण' विषयक सामग्री भी संगृहीत की गयी है।

सन् 1982 में हिंदी-उर्दू संवाद पर आधारित प्रथम वर्ष हिंदी पाठ्यक्रम का प्रथम भाग तैयार करवाकर इन्होंने प्रकाशित करवाया। यह हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

इसी भांति इन्होंने सन् 1984 में प्रथम वर्ष हिंदी पाठ्यक्रम, भाग 2-ए एवं भाग 2-बी तथा सन् 1985 में प्रथम वर्ष हिंदी पाठ्यक्रम, भाग एक प्रकाशित करवाये। अंतिम पुस्तक में कम्प्यूटर द्वारा उत्पन्न देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया है।

इन पुस्तकों के अध्ययन से पता चलता है कि प्रोफेसर हेर्मान वान ओल्फन ने इन हिंदी भाषा की पाठ्यपुस्तकों को कितने श्रम और ईमानदारी से तैयार किया है। यही कारण है कि आज वे पाठ्यपुस्तकें अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों, कोलम्बिया, विस्कान्सिन, शिकागो आदि में शोध का विषय बनी हुई हैं। कई शोधकर्ता इन पुस्तकों से प्रेरणा लेकर अन्य पाठ्यपुस्तकें तैयार कर रहे हैं।

इनक एक शोधपरक लेख फंक्शन एंड नानफंक्शन कंजुन्कट वर्ब्स इन हिंदी' प्रकाशित हुआ। इस लेख में हिंदी में व्यावहारिक और अव्यावहारिक संयुक्त क्रियाओं का तर्कपूर्ण विवेचन है। एस.एच. केलॉग, पीटर गैफके, यमुना काचरू और के.सी. बहल आदि भाषावैज्ञानिकों के विषय से संबंधित विचारों, मतों एवं टिप्पणियों की समीक्षा करते हुए इन्होंने इस संबंध में स्थान-स्थान पर अपना अभिमत भी दिया है। विद्वान लेखक ने संयुक्त क्रियाओं के गलत एवं भ्रष्ट प्रयोगों को उदाहरण सहित समझाने की चेष्टा की है। लेखक के मतानुसार उनके शोध का सारांश है कि हिंदी में संयुक्त क्रियाओं की संरचना का स्वरूप और उनका अर्थगत निर्धारण हिंदी वाक्य-विन्यास में कैसे होता है, इसका इसमें विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत लेख में डॉ. ओल्फ़न ने विदेशी और देशी विद्वानों द्वारा उपलब्ध सामग्री का प्रयोग किया है और विषय-विश्लेषण की शैली सरल और वैज्ञानिक है। यह अध्ययन रूपांतरण, प्रजननात्मक व्याकरणिक पद्धति को दृष्टि में रखकर किया गया है।

हिंदी क्रिया, मुहावरा, व्याकरण, ऐतिहासिक व्याकरण, वाक्य-रचना आदि में आपकी विशेष अभिरुचि है। इनके शोध एवं लेखन में अधिकांशत: इन्हीं विषयों को लिया गया है। आधुनिक लेखकों में जैनेंद्रकुमार इनके प्रिय लेखक है। संस्कृत व्याकरण के भी वे ज्ञाता है। वे हिंदी-उर्दू भाषा का व्याकरणिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। दृश्य-श्रवण भाषा-निर्देशों एवं वीडियो टेप तकनीक का उपयोग करने की भी इन्हें पूर्ण जानकारी है। प्रयोगशाला में भाषा के विभिन्न प्रयोगों, कम्प्यूटर सहायता निर्देशों की कला की इन्हें भली भांति जानकारी है। नि:संदेह भाषा-अध्ययन में इन आधुनिकता उपकरणों एवं तकनीकों का प्रयोग बड़ा ही सार्थक और उपयोगी है।

प्रो. हेर्मान वान ओल्फ़न ने कई संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में सक्रिय भाग लिया और अपने विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया है। व्यावहारिक भाषाविज्ञान के विश्व अधिवेशन में भी इन्होंने अपने विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया था। इसमें इनका आलेख विशेष चर्चा का विषय बना था।

प्रोफेसर ओल्फ़न के अनुसार सन् 1960 में टैक्सास विश्वविद्यालय, आस्टिन में पहली बार हिंदी की पढ़ाई शुरू हुई। कुछ प्राध्यापकों की प्रेरणा से भारतीय अध्ययन के लिए स्थान बनाया गया। उनमें प्रमुख थे, विनफ्रेड लेमान। वे उस समय भाषाविज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे और काफी साल से संस्कृत भाषा पढ़ाते थे। डॉ. लेमान ने डॉ. एडगर सी. पोलोमे की भाषाविज्ञान विभाग में आमंत्रित किया और धीरे-धीरे भारतीय अध्ययन की रूपरेखा दिखाई देने लगी। हिंदी के साथ-साथ टैक्सास विश्वविद्यालय में इतिहास, मानवशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में भी पाठ्यक्रम शुरू किये गये। सन् 1963 से अमेरिकन सरकार की ओर से भी वित्तीय सहायता आने लगी और दक्षिण एशिया अध्ययन केंद्र डॉ. पोलोमे के निर्देशन में खोला गया।

हेर्मान वान ओल्फ़न लिखते हैं—'सन् 1964 में अमेरिकन शांतिसेना के स्वयंसेवक भारत जाने से पहले भाषा और संबंधित शिक्षा पाने के लिए टैक्सास विश्वविद्यालय में आए।

'सन् 1965 में पहली बार हिंदी पढ़ाने के लिए भारतीय प्राध्यापक लगाया गया। उनका नाम था अमर बहादुर सिंह। तीन साल तक हिंदी की पढ़ाई का उत्तरदायित्व उन्हीं के हाथों में था।'

सन् 1968 से भारत में दो वर्ष हिंदी भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान करने के बाद, श्री हेर्मान वान ओल्फ़न हिंदी पढ़ाने लगे। उन्होंने सन् 1970 में अपना शोध-कार्य 'हिंदी क्रियापद का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' पूरा किया था। यह अध्ययन अपने आप में सर्वथा नूतन है।

प्रो. ओल्फ़न अपने देश में हिंदी की स्थिति पर विचार करते हुए लिखते हैं—'सन् 1969 से लेकर 1974 तक अमेरिका में हिंदी के सुनहरे दिन थे। छात्रों की भारत में रुचि लगातार बढ़ रही थी और टैक्सास विश्वविद्यालय में भारी संख्या में विद्यार्थी भारतविद्या संबंधी कोर्स लेने लगे थे। भारतीय संस्कृति कोर्स के लिए सैकड़ों प्रसिद्ध लेखक राजा राव का दर्शनशास्त्र पढ़ने आते और प्रसिद्ध भारतीय भाषावैज्ञानिक सुमित्रा कात्रे के संस्कृत कोर्स में आने लगे थे। फलस्वरूप हिंदी में सन् 1973 में छात्र संख्या सौ से ज्यादा तक पहुंच गई।'

आगे उन्होंने बताया कि उसके बाद छात्र संख्या कुछ कम हो गई, किन्तु उपलब्धियों में वृद्धि होती रही। टैक्सास विश्वविद्यालय के छात्र अपने हिंदी ज्ञान में वृद्धि हेतु समाज में केंद्रीय हिंदी संस्थान, नई दिल्ली अथवा आगरा जाते हैं। भारतीय संगीतज्ञ और नर्तक टैक्सास के मंचों में आने लगे हैं। इस प्रकार भारतीय अध्ययन में एशिया के अध्ययन केंद्र और 'पूर्वीय भाषाओं के विभाग' का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

प्रो. हेर्मान वान ओल्फ़न का हिंदी व्यावहारिक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में विदेशी हिंदी विद्वानों में महत्वपूर्ण स्थान है। गत 32 वर्षों से वे अनवरत इस क्षेत्र में संलग्न हैं। भविष्य में भी उनकी इस क्षेत्र में कई योजनाएं हैं। जिन पर वे अभी से कार्यरत है। उनका विश्वास है कि टैक्सास विश्वविद्यालय भारतविद्या एवं हिंदी के क्षेत्र में अनवरत कार्य करता हुआ भारत से अगली शताब्दी में भी इसी तरह के संबंध बनाये रखेगा।

✠✠✠

इस अंक विशेष के समायोजक

अनूप भार्गव

न्यूजर्सी, अमेरिका के निवासी

अनूप भार्गव भारत से एम.टेक की उपाधि प्राप्त कर 1983 में अमेरिका आए थे। वे हिंदी-प्रचार, प्रसार के लिए प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने 'ई-चिंतन' समूहों की स्थापना की। वे 'कविता-कोश' से संबंद्ध रहे। उनकी कविताएं 'अनुभूति', 'कृत्या', 'काव्यालय', 'कविता-कोश' और उनके अपने ब्लॉग के माध्यम से हिंदी पाठकों तक पहुंची हैं। उनकी कृतियों में 'जाने सूरज जलता क्यों हैं' और 'अर्थ जब खोने लगे' को विशेष सराहना मिली है।

भोपाल में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्हें 'विश्व हिंदी सम्मान' प्रदान किया गया। मॉरीशस में संपन्न हुए 'विश्व हिंदी सम्मेलन' में भारत सरकार ने उन्हें आमंत्रित किया, जहाँ उन्होंने पत्रन्वाचन किया।

शैलजा सक्सेना

टोरंटो, कनाडा की निवासी

शैलजा सक्सेना भारत से हिंदी में एम.फिल., पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्तकर कनाडा आई थीं। हिंदी साहित्य रचना और हिंदी नाट्यकर्म के लिए वे प्रतिबद्ध हैं। अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों में वे कनाडा का प्रतिनिधित्व करती रही हैं। छह संकलनों में वे सहयोगी रचनाकार हैं। उनका कविता संकलन 'क्या तुमको ऐसा लगा' बहुत प्रसिद्ध हुआ है।

उनके समीक्षा लेख, कविताएं व कहानियाँ, 'सारिका', 'शोध दिशा', अनमैं साँचा', 'गर्भनाल', 'रचना समय', 'अनुभूति' आदि के प्रकाशित होते रहे हैं। उन्होंने 'अंधायुग', 'रश्मिरथी', आदि छह नाटकों का निर्देशन किया है। उन्हें 'वूमैन अचीवर अवार्ड 2018' से सम्मानित किया गया है। ✠✠✠

साक्षात् वेदप्रकाश वटुक

सुधा ओम ढींगरा

हिंदी में शोध भी विगत 50 वर्षों में हुए हैं, पर उनमें एक भी शोध ग्रंथ हिंदी में नहीं लिखा गया। यानी अमेरिका ने एक भी कामिल बुल्के पैदा नहीं किया, जो हिंदी के प्रति इतना निष्ठा रखता हो कि हिंदी में शोध ग्रंथ लिखे। न यहाँ कोई स्मैकल हुआ जो हिंदी कविता लिखे।

साहित्य सागर में जब भी मैंने डुबकी लगाई है तो हमेशा बेशकीमती माणिक, मोती, हीरे हाथ लगे हैं। इस बार गहरे उतरकर जो रत्न ढूंढकर लाई हूँ, वे हैं अमेरिका के पुराने रचनाकारों में से एक वेद प्रकाश 'वटुक'। अमेरिका में रचे जा रहे हिंदी साहित्य में आपका बहुत बड़ा योगदान है। 'वटुक' जी ने 1971 से पूर्व अपने सैकड़ों लेखों में अमेरिका में हो रही असमानता तथा वियतनाम युद्ध के विरोध में किये जा रहे संघर्ष के पक्ष में अपनी व्यथा व्यक्त की है। मानवीय अधिकारों को समर्पित कविताएं लिखी हैं। भारत के 18 महीने के आपातकाल में अधिनायकवाद के विरोध में अनेक कविताओं का सृजन किया। हिंदी साहित्यकारों के प्रख्यात शोधार्थी श्री कमल किशोर गोयनका जी के अनुसार प्रवासी भारतीय में वटुक जी अकेले ही ऐसे हिंदी कवि हैं, जिन्होंने आपातकाल के विरोध में हजारों कविताएं लिखीं। स्वर्गीय कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने इनके 'आपात-शतक' की प्रशंसा करते समय लिखा था: 'काव्य का ऐसा समापन तो गुरुदेव भी नहीं कर सकते थे।' आपने यदि अमेरिका में मानवीय अधिकारों के लिए हुए और युद्ध विरोधी आंदोलनों में भाग लिया तो भारत में भी आपातकाल में युवकों का साथ दिया। बीसवीं सदी के पहले दो दशकों में भारतीय अप्रवासियों पर अत्याचारों और उसके प्रतिफल स्वरूप जन्मे गदर पार्टी के इतिहास के प्रसार में और गदर स्मारक खुलवाने में इनकी भागीदारी रही है। आज कल आप काफी समय भारत और कुछ समय अमेरिका में रहते हैं।

धीर, गंभीर, शांत व्यक्तित्व वाले वटुक जी, अक्सर सफेद खाकी का कुर्ता-पायजामा पहनते हैं और मितभाषी हैं। कई हिंदी सम्मेलनों में मुलाकात हुई पर बात नहीं हुई। और जब संवाद हुआ तो अमेरिका में हिंदी, साहित्य और शिक्षा से जुड़े कई विषयों पर बातचीत हुई–

वटुक जी, आप अमेरिका कब आए?

1948 में बड़े दिन (क्रिसमस) की पूर्व संध्या पर यानी 24 दिसंबर 1948 को।

आप शिक्षा ग्रहण करने आए थे या शिक्षक के रूप में और

सम्पर्क: E-mail: vedvatuk@yahoo.com

उस समय अमेरिका में हिंदी की स्थिति क्या थी?

अमेरिका में मैं चार वर्ष ब्रिटेन में रहने के बाद विद्यार्थी बनकर हार्वर्ड विश्वविद्यालय में आया था। ब्रिटेन में भारतीयों की संख्या बहुत बड़ी थी। उनमें प्रचुर मात्रा में हिंदी भाषी थे। लंदन विश्वविद्यालय में हिंदी की शिक्षा की व्यवस्था थी। अत: वहां हिंदी बोलने वालों का अभाव न था। 'बच्चन जी' उन दिनों वहां कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अंग्रेजी में पी-एच.डी. कर रहे थे। हिंदी परिषद् का गठन हो गया था। चार वर्ष मैं लंदन हिंदी परिषद् का मंत्री रहा। हम लोगों की नियमित बैठकें होती थी। नाटक, वाद-विवाद प्रतियोगिताएं, कवि गोष्ठियां, मनीषियों की जयंतियां तथा विशेष विषय पर परिसंवाद आयोजित किये जाते थे। भारत से आए साहित्यकारों के सम्मान में आयोजन होते थे।

इन आयोजनों में आपको भारत के कई साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला होगा...

जी, अज्ञेय, अश्क दंपति, कृश्न चंदर, दिनकर, सागर निजामी, जैनेंद्र, यशपाल आदि से बी.बी.सी. के कार्यक्रमों में निरंतर भागीदारी रही है। वहीं मैंने परिषद् का मुखपत्र 'नैवेद्य' निकाला। अज्ञेय, दिनकर जी की कई रचनाएं पहली बार इसमें छपी। अमेरिका आया तो स्थिति दूसरी थी।

यहाँ आकर आपको कैसा लगा?

उस समय भारतीयों की संख्या पूरे अमेरिका में बीस हजार के करीब होगी। आज की तरह तीस लाख नहीं। उनमें पंजाबी किसान और श्रमिक ही अधिक थे। स्पुतनिक छोड़े जाने से अमेरिकन सरकार चिंतित थी और सुरक्षा के नाम पर विशिष्ट 'उपेक्षित' भाषाओं के विद्वान तैयार करने का निश्चय किया गया। बड़े-बड़े अनुदान देकर विश्वविद्यालयों में हिंदी, उर्दू, तमिल आदि पढ़ने की व्यवस्था शुरू की गई। छात्रों को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत बड़ी-बड़ी छात्रवृत्तियां दी गई। 1948 के आसपास 20 विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण आरंभ हुआ। पाठ्य पुस्तकें तैयार की गईं। अधिकांश प्राध्यापक भाषा-वैज्ञानिक थे। जोर भाषा पर था साहित्य पर नहीं। मौखिक रूप से चित्रों के सहारे पढ़ाने पर। उस समय कक्षा में 5-10 छात्र ही होते थे और सारे देश में लगभग 500 से भी कम छात्र थे। बड़ी कक्षाओं में भी जोर भाषा वैज्ञानिक शोध पर रहा।

विश्वविद्यालयों में साहित्य की दूरी कब तक बनी रही...?

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में उस समय हम तीन विद्यार्थी युवा लेखक थे-कृष्ण बलदेव 'वैद', गोविंद सिंह और मैं। हम तीनों महीने में एक बार एक-दूसरे के घर मिलते और अपनी रचनाएं सुनाते। कृष्ण बलदेव कहानीकार थे। उनका उपन्यास 'उसका बचपन' भी प्रकाशित हो चुका था। गोविंद सिंह भी कहानीकार थे। बाद में जब मैंने पढ़ाना शुरू किया तो सामाजिक शास्त्रों की और आधुनिक हिंदी कविताओं की (अनुदान लेटर) पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं, जिनमें साहित्य का समावेश समुचित अंश में रहा। विश्वविद्यालयों से बाहर हिंदी का कोई वातावरण नहीं था। भारतीय दुकानों भी नहीं थी। शाकाहारी लोगों के लिए वह समय सुगम नहीं था। उन दिनों यूनिवर्सिटी अतिथि रूप में भारत से प्रसिद्ध रचनाकारों को हिंदी साहित्य पढ़ाने के लिए बुलाते थे। विस्कांसिन में प्रभाकर माचवे, कैलिफोर्निया-बर्कले में विद्यानिवास मिश्र तथा अज्ञेय जी अतिथि प्राध्यापक रहे। मिश्र जी तथा अज्ञेय जी ने अमरीकी कवियों के साथ मिलकर आधुनिक हिंदी कविताओं के अनुवाद का एक संकलन निकाला, जो इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस से छपा। गोर्डन रोडरमल ने 'गोदान' का अनुवाद यूनेस्को अनुवाद योजना के अंतर्गत किया और नए कहानीकारों की कहानियों का भी जो उनके शोध के विषय में सहायक थे, कई एम.ए. छात्रों ने भी अनुवाद किये।

वटुक जी, जो प्रश्न मैं पूछने जा रही हूँ, वह प्रश्न मैं सब रचनाकारों से पूछती हूँ। प्रत्येक रचनाकार से इसके जब अलग-अलग उत्तर मिलते हैं तो एक किशोरी की भांति जिज्ञासु मन खिल उठता है। आपके लेखन का सफर कब और कैसे शुरू हुआ?

मैंने पहली रचना शायद दस वर्ष की उम्र में की थी। छपी तो 16 वर्ष की उम्र में। परिवार कई आंदोलनों से जुड़ा था। पिता श्री कृष्णलाल जी आर्य समाजी थे और उन्होंने मेरे जन्म से भी पहले मित्रों के साथ हमारे क्षेत्र के पहले आर्य समाज मंदिर की नींव डाली थी। क्योंकि गाँव के दलितों का मंदिर में प्रवेश वर्जित था। मेरी माँ कृपादेवी परंपरागत लोक गीतों की भंडार थी। बड़े भाई मेरे जन्म से पूर्व स्वतंत्रता आंदोलन में तीन बार जेल यात्रा कर चुके थे। देशभक्ति, सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक 'साहित्यिक जीवन' शुरू हुआ। पांचवी कक्षा में बड़े भाई ने मुझे छंद शास्त्र की शिक्षा दी और मैंने ग्रामगीतों के स्थान पर 'हिंदी कविता' लिखनी शुरू कर दी। उन्हीं की प्रेरणा से 'वेद पढ़हिं जस बटु समुदाई' चौपाई पढ़कर मैंने वेद 'वटु' नाम रख

लिया, जो बाद में वेद प्रकाश 'वटुक' हो गया। यह उपनाम मेरे जाति-विरोध का प्रतीक भी था।

आप कई पुस्तकों के सृजनकार हैं और सजग रचनाधर्मी भी हैं। क्या अमेरिका आपके साहित्यिक मूल्यांकन में आड़े आया है। क्या आपको साहित्य में सही स्थान मिल पाया?

इस प्रश्न का उत्तर दे पाना बहुत कठिन है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जब स्वर्गवास हुआ तो उस समय अज्ञेय जी मेरे पास ठहरे हुए थे। बर्कले में हमने छोटी सी शोकसभा की थी। उसमें मैंने कहा था कि एक पूरी पीढ़ी बिना पढ़े चली गई। मेरे बचपन में लोग पुस्तकें खरीद कर पढ़ते थे। फिर तो जो कोर्स में लग गए, वे पढ़े जाने लगे। शेष नहीं। हिंदी की अपनी गुटबाजी है। अपनी राजनीति है। उसमें आप किस खेमे में हैं, यह निर्धारित करेगा कि आपका मूल्य क्या है। मैं कभी भी किसी भी खेमे से जुड़ा नहीं। अमेरिका में भी नहीं। हिंदी की नेतागिरि भी मैंने नहीं की। सभा समितियों से भी दूर रहा। फिर भी इतना तो कह सकता हूँ कि हिंदी की जिस किसी पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कृतियों की समीक्षाएँ प्रकाशित हुई—विशेषत: 'प्रकर', 'समीक्षा' आदि आलोचना-पत्रिकाओं में, उनके समीक्षकों ने, जिनसे मेरा कोई परिचय नहीं था, मेरी रचनाओं को सराहा ही। मैंने कभी भी किसी संस्थान द्वारा किसी भी पुरस्कार, प्रशस्ति, सम्मान आदि के लिए कोई प्रयास नहीं किया। फिर भी वे सब यदा-कदा मिले ही। साहित्य के मनीषियों में श्री नारायण चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, विद्यानिवास मिश्र, विजयेंद्र स्नातक, जगदीश गुप्त, वेद प्रताप वैदिक, जैनेंद्र, क्षेमचंद्र सुमन आदि अनेक महापुरुषों से मैंने भरपूर प्रशंसा पाई है। अज्ञेय जी ने मेरी रचनाओं को बहुत सराहा, जिस पर बच्चन जी ने लिखा था—अज्ञेय से प्रशंसा पा लेना अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि है। मेरे बिना प्रयास किये विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम और शोधादि में मेरी कृतियाँ समावेश पा सकीं, यही क्या कम है? अब विपुल साहित्य में क्या स्थान किसका होगा, यह तो भविष्य ही जाने। देश में ऐसे अनेक साधक हैं, जिनकी साधना गहन हैं, उपलब्धि अनन्य है, पर वे प्रसिद्ध नहीं है। क्योंकि हर सिद्ध व्यक्ति प्रसिद्ध नहीं होता और प्रचार के बल पर कई बार पीतल भी सोना हो जाता है। मैं 'स्थान' की चिंता किए बिना ईमानदारी के साथ अपना रचनाधर्म निभाता रहूँगा। वही मेरे लिए बहुत है।

अब तक के लेखन का सफर कैसा रहा?

संतोषजनक। मेरे लेखन में लगातार परिष्कार हुआ है। मेरे मित्र भी ऐसा ही मानते हैं। मैंने समाज को नए दृष्टिकोण से जानने का निरंतर प्रयास किया है। प्रबंध काव्यों में विशेष रूप से अपने मिथकों को नया रूप देने की कोशिश की है। युद्ध, जाति, धार्मिक उन्माद, साम्राज्यवाद, विस्तारवाद विरोधी विचारधारा काम करती रही है। मेरी रचनाएँ मेरे जीवन का प्रतिबिंब हैं। ईमानदारी से जहाँ मैं रहा हूँ, वहाँ पर घटित हर अनन्य का विरोध उनमें है। यदि मेरा जीवन भारतीय समाज में व्याप्त जाति लिंग-वाद के विरोध के संघर्ष से शुरू हुआ, तो अमेरिका में आने पर नस्लवाद, साम्राज्य-विस्तार के लिए युद्ध के विरोध में मेरी रचनाओं को रूप मिला। मेरी रचनाएँ नितांत नस्ताल्ज्या से उपजे क्लीशों से भरी नहीं हैं, मेरे जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली हैं। साहित्य की दृष्टि से उनका जो भी मूल्य हो, उनमें इतिहास की सच्चाई जरूर है। वे मेरे लिए संतुष्टि का कारण है।

अमेरिका में आज हिंदी कहाँ खड़ी है? या उसका स्थान क्या है?

पहले शिक्षण संस्थाओं की बात करें फिर लेखन पर आएंगे। आज अप्रवास नियमों की उदारता के कारण भारतीयों की संख्या विगत चालीस वर्षों में सौ-सवा सौ गुना हो गई है यानी बीस हजार से बढ़कर पच्चीस लाख से भी ऊपर। भारतीयों की दूसरी तीसरी पीढ़ी पैदा हो रही है। 'मार्डन लैंग्वेज एसोसिएशन' की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार इस समय अमेरिका के 74 उच्च अध्ययन संस्थाओं में हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था है। उनमें लगभग 2700 सौ छात्र प्रथम श्रेणी की कक्षाओं में हैं। हिंदी छात्रों की संख्या अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत कम है। स्पानी (स्पेनिश) आठ लाख पढ़ते हैं, फ्रैंच दो लाख, अरबी के 25 हजार, हिब्रू के 23 हजार, चीनी के 49 हजार, जापानी के 64 हजार, कोरियन के सात हजार से भी कम हैं हिंदी छात्रों की संख्या। जिन स्थानों में भारतीयों की संख्या बहुत है, वहाँ के हाई स्कूलों में भी हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था हुई है। भारतीय विद्या भवन में नृत्य, संगीत के साथ हिंदी सिखाई जाती है। हिंदी को 'हिंदुत्व' के साथ जोड़कर कई मंदिरों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी है जैसे कि मस्जिदों में उर्दू और गुरुद्वारों में पंजाबी लिखना।

वटुक जी, यहाँ मैं आप से सहमत नहीं हूँ, 'हिंदुत्व' का आक्षेप तो भारत के आलोचकों की देन है। मंदिरों में स्थानाभाव के कारण हिंदी पढ़ाई जाती है। जब कक्षाएँ शुरू की जाती हैं तो शिक्षक और अभिभावकों दोनों को पता नहीं होता कि कितने समय तक चलेंगी। मंदिर सुविधाजनक स्थान होता

है। मैंने 18 वर्ष पहले अपने क्षेत्र के मंदिर में हिंदी कक्षाएँ शुरू की थी; क्योंकि वहाँ स्थान खाली पड़ा था। इतने वर्षों से मंदिर के कमरों में हिंदी, गुजराती, बंगाली, मराठी, तेलुगु, तमिल और संस्कृत पढ़ाई जाती है। अब कुछ कक्षाएँ वहाँ से बाहर स्थानीय स्कूलों में लगाई जाती हैं; क्योंकि छात्रों की संख्या बढ़ गई है और कमरे छोटे पड़ने लगे हैं।

वटुक जी ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—हिंदी में शोध भी विगत 50 वर्षों में हुए हैं, पर उनमें एक भी शोध ग्रंथ हिंदी में नहीं लिखा गया। यानी अमेरिका ने एक भी कामिल बुल्के पैदा नहीं किया, जिसे हिंदी के प्रति इतनी निष्ठा हो कि हिंदी में शोध ग्रंथ लिखे। न यहाँ कोई स्मैकल हुआ जो हिंदी कविता लिखे।

अमेरिका को दोष न देकर मैं अपनी शिक्षा प्रणाली, हिंदी के प्रचार-प्रसार की त्रुटियों और हिंदी के प्रति हम लोगों की प्रतिबद्धता तथा आस्था की कमी को दूँगी। शायद हम लोग उन्हें इतना प्रभावित नहीं कर पाए कि वे हिंदी के प्रति निष्ठावान हों। खैर आपने भी इसके कारण ढूँढ़े होंगे। वे एक लंबी बहस का मुद्दा है, और हम अपने विषय से भटक जाएँगे।

जी सुधा जी, जहाँ किसी भाषा को बोलने वाले लाखों की संख्या में होंगे, तो निश्चय ही उनमें कुछ सौ लोग तो साहित्यिक प्रवृत्ति के होंगे ही और उस भाषा साहित्य की संस्थाएँ भी जन्म लेंगी ही। आठवें दशक में ओम प्रकाश गौड़ 'प्रवासी' ने 'भारतीय साहित्य संगम' बनाई, 1980 में कुंवर चंद्र प्रकाश सिंह की प्रेरणा से 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति' की स्थापना हुई। उसी से निकलकर 'विश्व हिंदी समिति' 'विश्व हिंदी न्यास' बनीं। उनकी पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। उनके प्रयासों से कवि सम्मेलन, परिसंवाद, अधिवेशन होते रहे, और शायद सवा सौ डेढ़ सौ लेखक, कवि रचना कर्म कर रहे हैं, हालांकि वे सब भारत में भी कर रहे थे। अभी तक अमेरिका में जन्मा कोई भी हिंदी साहित्यकार मेरी दृष्टि में नहीं आया। दूसरे 'प्रवासी' का ठप्पा लगने से उन रचनाकारों की कृतियों का मूल्यांकन तटस्थ भाव से नहीं होता। अमेरिका में अनुवाद में विश्व की श्रेष्ठतम रचनाएँ उपलब्ध हैं, पर कितने हिंदी लेखक हैं, जो उन्हें पढ़ाते हैं। यहाँ तो हिंदी लेखकों की भी कितनी रचनाएँ हमने पढ़ी हैं। बंगाली या मराठी समाज के अधिवेशनों में प्रकाशकों द्वारा लाई प्रदर्शनी में हजारों पुस्तकें हाथों-हाथ बिकती हैं। यहाँ तो तथाकथित 'विश्व हिंदी सम्मेलन' में भी हिंदी की उच्चकोटि की रचनाओं का अभाव था, जो सरकारी साहित्य था वह भी बिक कहाँ रहा था?

सुधा जी, हमारी हर संस्था और हर पत्रिका 'विश्व' या 'अंतरराष्ट्रीय' विशेषण से युक्त होती हैं, पर उनमें बहुत कम वैश्विक होता है। अमेरिका में रूसी लेखक 'नबाकोफ' हुए, नोबल पुरस्कार विजेता चेश्लोव ने पोलिश में लिखा। क्या उस स्तर का एक भी हिंदी रचनाकार अमेरिका में है? या 'न्यूयार्कर', 'अटलांटिक', 'हारपर्स' जैसी पत्रिकाएँ?

मैं आप से जानना चाहती हूँ ऐसा क्यों हैं?

हमने अपनी अपेक्षाएँ बहुत निम्न स्तर पर रखी हैं, जो हमें आत्मरति से ग्रस्त रख अपनी पीठ थपथाने का उत्साह दिलाती हैं।

वटुक जी, ये पत्रिकाएँ सर्कुलेशन, पाठकों और विज्ञापनों पर चलती हैं। जितना बजट इनके पास होता है, जितना वेतन इनके संपादकों को मिलता है, क्या हिंदी संसार वह सब जुटा सकता है? यहाँ जो हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं, वे संपादकों के तन, मन, धन से ही जीवित हैं। उन्हें सर्कुलेशन में लाना, बेचना दुष्कर कार्य है। सदस्य बनाना भी आसान नहीं।

आपका आभार आपने समय दिया।

✠✠✠

समाजशास्त्री दीक्षा नागर से साक्षात्कार

आरती स्मित

अमेरिका की इंडियाना यूनिवर्सिटी, ब्लूमिंगटन से ''लोक परंपरा'' विषय पर पी-एच.डी प्राप्त डॉ. दीक्षा नागर एक जानी-मानी समाजविशेषज्ञा और लेखिका हैं। वे यूनिसेफ और 'संग्रहालय एवं पुस्तकालय विज्ञान' इंडियाना वि. वि. के लिए लेखन, प्रशिक्षण व प्रबंधन आदि कार्य करती रही हैं। वे 'मैथर्स म्यूजियम ऑफ वर्ल्ड कल्चर्स' अमेरिका की शैक्षणिक क्यूरेटर रही हैं। समाज के लगभग हर वर्ग का अध्ययन उनकी विशेष रुचि है।

प्रस्तुत है 'गगनांचल' के लिए विशेष रूप से लिया गया उनका साक्षात्कार

—संपादक

सम्पर्क: गोराचंद काले, प्रथम तल, गली नं. 5, काली मंदिर वाली गली, गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्पलेक्स, दिल्ली-110092

पिछले दिनों समाजशास्त्री दीक्षा शरद नागर से मिलना हुआ तो संवाद के दौरान अमेरिका के दूसरे पक्ष को देखने की मेरी इच्छा ने जिज्ञासा का रूप ले लिया। फिर संवाद का जो सिलसिला चला, उसकी एक झलक ----

आरती स्मित: दीक्षा जी, अमेरिका का जन जीवन लोगों को आकर्षित करता है। उनकी समृद्धि, उनकी जीवनशैली, बाह्य चकाचौंध-- सबकुछ। आप वहाँ के कई शहरों में रही हैं, अलग-अलग परिस्थितियों में रह रहे लोगों के जीवन को आपने निकट से देखा है। आपके निजी अनुभव जानना चाहूँगी।

दीक्षा नागर: आरती जी, सबसे पहले तो हमको यह देखना होगा कि अमरीका की समृद्धि, बाह्य चकाचौंध वाली जिन छवियों की आप बात कर कर रही हैं, उनको प्रेषित कौन कर रहा है--यदि उनको बड़ी बड़ी औद्योगिक कंपनियाँ मीडिया के माध्यम से, जैसे कि टेलीविजन, फिल्म, यू-टयूब और सोशल मीडिया के जरिये प्रेषित कर रही है--तो वह ऐसा क्यों कर रही है? अमरीका एक ऐसा पूंजीवादी देश है, जिसके उद्योगपतियों ने पूरी दुनिया को एक बाजार बना दिया है। उन्होंने दुनिया के सारे मुल्कों को यह सिखला दिया है कि चाहे वह शिक्षा हो, विवाहोत्सव हो, या चाहे वह जनाजा हो, ज़िंदग़ी से जुड़े हर पक्ष को व्यावसायिक बना कर उससे पैसा कमाया जा सकता है। सोशल मीडिया के माध्यम से संयुक्त राज्य अमरीका की जो छवि हम देखते हैं, वह इसी का प्रसाद है। उसमें हमको साफ--सुथरा, मोटरगाड़ियों से लैस, चौड़ी सड़कों, बड़ी-बड़ी काँच की खिड़कियों से झिलमिलाती इमारतों में रहते सुंदर, जवान, आज के युवा तेज रफ्तार वाली ज़िंदग़ी जीते हुए नजर आते हैं।

आरती स्मित: यानी हम अमेरिका की आधी-अधूरी तस्वीर से

परिचित हैं। यहाँ के युवा तो वही देखते-समझते और उसे हासिल करने का सपना पालते हैं। उन्हें वहाँ स्कोप नजर आता है। इसलिए यहाँ पढ़ाई पूरी करके जॉब के लिए अमेरिका की ओर रुख करते हैं। मगर, आपकी बातों से लगता है, दूसरे पक्ष की सच्चाई कुछ और ही है।

दीक्षा नागर: दरअसल, अमरीका की यह प्रोजेक्टेड इमेज वहाँ के जनमानस, कामकाजी वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। हम संयुक्त राज्य अमरीका की एक सुंदर और व्यवस्थित देश के रूप में छवि तो देखते हैं, मगर उसे ऐसा बनाने वाले लोगो के बारे में बहुत कम जानते हैं। हम कभी यह नहीं पूछते कि उन साफ- सुथरी सड़कों और इमारतों को कौन बनाता है, उन्हें कौन साफ करता है? अमरीका में अगर इतनी सारी फैक्टरियाँ और तरह-तरह के उत्पादन हैं, तो उनसे उपजे जहर जो वहाँ के ताल- तालाब और नदियों को दूषित कर रहे हैं, उनको कौन साफ करता है? अगर उस व्यवस्था को सँभालने वाले मनुष्य हैं तो वे हमें क्यों नहीं दिखाई देते?

आरती स्मित: निश्चित तौर पर चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी ही इन सफाई कार्यों में लगे होंगे, जैसा कि हर देश में होता है। मगर, किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि आखिर अमेरिका के इस वर्ग की स्थिति और समस्याएँ क्या हैं? और न ही मीडिया ने कभी उनके जीवन की झाँकी हमें दिखाई।

दीक्षा नागर: अमरीका में भारत की गरीबी, महिलाओं के उत्पीड़न, जातिवाद से उपजे दंगों के बारे में अखबारों और टेलीविजन की पीबीएस और एनपीआर (नॅशनल ब्रॉडकास्टिंग कारपोरेशन) और राजनेताओं की खबरें तो प्रसारित हो जाती हैं, मगर भारत में अमरीका के जनमानस, जन-जीवन से जुड़ी खबरें कभी सुर्खियाँ नहीं बन पातीं। मसलन, अमरीका में आज भी सामान्य कंपनियों में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कम तनख्वाह दी जाती है। ग्रामीण स्कूलों या उन सरकारी स्कूलों में, जहाँ गरीब तबके के बच्चे पढ़ने जाते हैं, या जो लोग बेघर होकर सड़क पर भीख माँगते हैं, उनकी तस्वीरें दिखाई नहीं जातीं।

आरती स्मित: फिर दूसरे देशों के लोग क्यों यह सपना पालकर वहाँ जाते हैं कि उन्हें एक रॉयल लाइफ मिलेगी। मुझे याद आ रहा है, पिछली मुलाकात में आपने चर्चा भी की थी कि आज अमेरिका किसी एक संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करता। कई देशों के नागरिक लंबे समय से वहाँ रह रहे हैं। मुझे यह समझ नहीं आता, जब हर एक को वहाँ भी समृद्धि नसीब नहीं, तब क्यों युवा अपना देश छोड़कर वहाँ जाना चाहते हैं? कौन-सा आकर्षण उन्हें खींचता है? आप इतने वर्षों से वहाँ के कई शहरों में रही हैं, वहाँ की आबोहवा को कुछ तो जान-समझ पाई होंगी।

दीक्षा नागर: आरती जी, ध्यान दें तो देखेंगी कि हमारे देश में अक्सर टी.वी.और हॉलीवुड द्वारा प्रेषित तस्वीरों के आधार पर बड़ी सतही तौर से अमरीकन संस्कृति या अमरीकन लोगों का हवाला दे दिया जाता है, मगर गहराई से अमरीकी संस्कृति, सही मायने में अमरीकन कौन है--उसको सही संदर्भों में जानने, समझने और परिभाषित करने की कोशिश नहीं की जाती। अमरीका एक बहुत बड़ा देश है, और उसका इतिहास बहुत ही जटिल है। आज के अमरीका में विश्व के 192 देशों के नागरिक रहते हैं--और सभी प्रवासी--सिर्फ

धनार्जन करने के लिए नहीं आए --ज्यादातर लोग बड़ी मजबूरी में अपना मुल्क छोड़ कर आए हैं। आप दुनिया का नक्शा ले लीजिए--देखिए, कितने ही देश, गृह युद्ध की आग में जल रहे हैं, कितनी विषम परिस्थिति में, अपनी जान हथेली पर रख कर सीरिया, सोमालिया, रवांडा जैसे देशों के रिफ्यूजी अपने बच्चों, अपने परिवार की सुरक्षा सुनिश्चित कर पाए हैं। मैं इथोपिया की एक महिला को अंग्रेजी पढ़ना सिखा रही हूँ, 17 साल की उम्र से वह एक के बाद एक अफ्रीका के अनेक देशों में रिफ्यूजी कैंप में रही, वही उसकी शादी हुई, तीन बच्चे हुए। अब पचास साल की उम्र में वह रिफ्यूजी के रूप में अमरीका आई और पहली बार दो कमरों के अपार्टमेंट में रह रही है। और, एक साल से वह महिला जो अपनी भाषा में भी लिखना-पढ़ना नहीं जानती वह अंग्रेजी लिखने-बोलने के साथ साथ, पराए देश के तमाम नियम--कायदे सीख रही है। छह महीने के अंदर उसने बस से शहर के सारे रास्ते नापे और अपने लिए नौकरी ढूँढ़ी, बच्चों की पढ़ाई और नौकरी की व्यवस्था की। उस महिला ने जो आतंक देखा और अब रोजमर्रा की ज़िंदगी में जो उसके जीवन- अनुभव, उसकी संघर्ष यात्रा और द्वन्द्व का हिस्सा हैं, उसकी हम कल्पना ही नहीं कर सकते।

आरती स्मित: ओह! सचमुच, कल्पना से बाहर की बात लगती है। मैं कई भारतीय प्रवासियों से मिली हूँ, कई तरह की बातें होती हैं, मगर किसी ने अमेरिका के रंग-रूप का यह हिस्सा साझा नहीं किया। चूँकि आपको शरणार्थियों के बीच रहने का, उन्हें जानने-समझने का अवसर मिला, तभी उनके दुख-दर्द समझ पाईं, वरना वहाँ की भागती जीवन-शैली में आज किसे फुरसत है कि जरा रुककर किसी की पीड़ा जानें-समझे।

दीक्षा नागर: आरती जी, हमें अमरीका और अमरीका के नागरिकों को नए संदर्भों में समझना पड़ेगा। जब हम टीवी पर अमरीका के लोगों की तस्वीरें देखते हैं, तो हमें ज्यादातर यूरोपीय मूल के गोरे लोग नजर आते हैं, मगर जब हम अमरीका को जीते हैं, उसमें साँस लेते है तो एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमरीका, ऑस्ट्रेलिया ---सभी भूखंडों के, सभी रंगों और सभी वर्गों के लोग हमारे साथी हो जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका ऐसा देश कैसे बना, इसका भी बड़ा करुणामय, बड़ा ही दर्दनाक इतिहास है। जब हम भारत और अमरीका के संबंधों की बात करते हैं, तो हम यह भूल जाते हैं कि भारत और अमरीका (जिसमें उत्तरी और दक्षिणी भूखंड, दोनों ही शामिल हैं), की जन्मपत्री, कोलंबस महाशय से जुड़ी हुई है। सभी जानते हैं, कोलंबस भारत की खोज के चक्कर में अमरीका पहुँचे और अमरीका पहुँच कर समझे कि वह 'इंडिया' पहुँच गए।

आरती स्मित: हाँ, यह प्राय: लोगों को मालूम है। मगर, दर्दनाक इतिहास ?

दीक्षा नागर: उन्होंने वहाँ के लोगों को इंडियन समझा और उनकी इसी गलतफहमी में अमरीका के मूल निवासी आज भी 'इंडियन' या 'अमेरिकन इंडियन' कहलाते हैं। कोलंबस को अमरीका में मंदिर तो मिले नहीं, मगर जिस चीज ने उसे आकर्षित किया, वह था विशाल प्राकृतिक सौंदर्य और भूमि। फिर तो अगले दो सौ वर्षों में अमरीका का इतिहास ही बदल गया। कोलंबस ने एक बार जब यूरोप से अमरीकी भूखंडों तक पहुँचने का समुद्री रास्ता खोज निकाला तो यूरोप के तमाम देशों से हर वर्ग के लोग निजी भूमि पर अपना स्वामित्व कायम करने के लिए आने लगे। बाद के वर्षों में ब्रिटिश, फ्रेंच, आयरिश, पोलिश, जर्मन, मूल के लोग आकर बसे। ब्रिटेन, फ्रांस और डच लोगों ने अफ्रीका और एशिया के जिन मुल्कों पर उनका उपनिवेश कायम था, वहाँ के लोगों को गुलाम बनाकर अमरीका लाना शुरू कर दिया ताकि उनसे मुफ्त में मजदूरी करवा सकें। इन यूरोपीय लोगों की वजह से अमरीका के मूल निवासियों (नेटिव अमेरिकन/अमेरिकन इंडियन) की संस्कृति का विनाश हुआ। आपने

पढ़ा होगा, यूरोप से आने वाले अधिकांश लोग शोषित वर्ग के, भूमिहीन लोग थे, जिन्होंने सिर्फ दुर्दिन ही देखे थे, मगर वे ही लोग यहाँ आकर अपने आपको गोरी चमड़ी होने के कारण श्रेष्ठ और सभ्रांत मानने लगे।

आरती स्मित: आपने शरणार्थियों के जीवन को निकट से देखा है। उनके बारे में जिज्ञासा बढ़ गई, क्योंकि किताब का लिखा और दैनिक जीवन में साथ रहकर उन्हें समझने का आपका अनुभव सच के अधिक करीब होगा।

दीक्षा नागर: जिस अमरीका को मैंने अब तक देखा और जाना है उसमे अश्वेत (अफ्रीकी, एशियाई, एवं हिस्पैनिक, लाटीनो मूल के लोग), प्रवासी, और रिफ्यूजी लोग ज्यादा हैं।, जब मैं अमरीकी संस्कृति और अमरीकी समाज को देखती हूँ, तो हर व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार के पीछे पीढ़ी दर पीढ़ी की संघर्ष यात्रा दिखलाई देती है-- और यह हकीकत भी है। पिछले दो सौ साल के अमरीका के इतिहास में गुलामी प्रथा के विरुद्ध हुई क्रांति, अश्वेतों के लिए समान अधिकार, महिलाओं के अधिकार की लड़ाई की कहानियाँ और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान विस्थापित यहूदियों और गृह युद्ध, अकाल और भुखमरी से जूझते रवांडा, सोमालिया, ईथोपिया, सूडान जैसे देशों के विस्थापित लोगो की जीती जागती कहानियाँ जानने और समझने के लिए मुझे हर समय पुस्तक नहीं उठानी पड़ती, बस रोजमर्रा की ज़िंदगी में जो लोग अपने जीवन के अनुभव बाँटते हैं, उनको सुनना-समझना, बूझना, और आत्मसात करना पड़ता है।

आरती स्मित: आपने लीक से हटकर, अपनी पीएच.डी. के लिए लोक संस्कृति को विषय के रूप में चुना और इसी सिलसिले में आपका अमेरिका जाना हुआ? कोई खास वजह?

दीक्षा नागर: वजह क्या कहूँ! दो दशक पहले, मैं अलारिप्पू सहारनपुर क्षेत्र के देहातों में काम कर रही थी। उससे पहले मैंने लखनऊ में साक्षरता अभियान के तहत भी पुराने लखनऊ की बस्तियों के बच्चों और वयस्क महिलाओं के साथ काम किया था। उन दिनों मुझे इंडिआना विश्विद्यालय से पीएच.डी. करने के लिए वजीफा मिला। शुरू से ही मेरा मन घर में कम लगता था। अपनी चौक की गली मिर्जा मंडी में, लोगों के बीच--काम करने वालों के बीच क्या घट रहा है--- उन कहानियों से जुड़ने में मेरी खास रुचि थी। लोगों की कहानियाँ अपने आप मेरे पास खिंची हुई चली आती थीं, जब मैं फोकलोर जैसे विषय में पीएच.डी. करने ब्लूमिंगटन, इंडियाना जैसे छोटे से (छात्रों के) शहर में पहुँची, तो सबसे पहले तो मुझे जिसे कहना चाहिए 'रिवर्स कल्चर शॉक' हुआ। ब्लूमिंगटन, मुझे ऐसा शहर लगा जिसे मैं पैदल चलकर पूरा नाप सकती थी। 1995 में, लगभग 66,000 लोगों की आबादी वाले उस शहर में 35,000 छात्र जिनमें अधिकांश इंडियाना प्रदेश के ग्रामीण इलाकों से संबद्ध थे। 15,000 विदेशी छात्र और बाकी अन्य प्रदेशों से आए छात्र। जो लोग छात्र नहीं थे, वे छात्रों के परिवार के सदस्य, शिक्षक एवं विश्वविद्यालय के कर्मचारी गण, और उनके परिवार से थे। ब्लूमिंगटन शहर के मूल निवासियों की संख्या मेरे ख्याल से पांच-सात प्रतिशत ही होगी। समझ लीजिए, ब्लूमिंगटन शहर में मुझे विश्वदर्शन हो गए थे। सभी छात्र/शिक्षक/कर्मचारी किसी ना किसी अलग देश या शहर से आए थे। सभी अपने घर- परिवार को, बड़ी शिद्दत के साथ याद करके मन हल्का करते थे।

ऐसे माहौल में मुझे अमरीका के कृषि जीवन के बारे में, राजनीतिक समस्याओं के बारे में, वर्ग-भेद के बारे में बहुत- सी जानकारियाँ मिलीं और बहुत सारी पूर्व अवधारणाएँ टूटीं, साथ ही, मेरी मित्रता दुनिया भर के लोगों से हुई। उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। यह अहसास हुआ कि चाहे हमारी परवरिश दुनिया के किसी कोने में हुई हो हमारी संवेदनाएँ, अपनी जमीन के प्रति हमारा लगाव, अपने परिवार, मित्रों -- जिन रिश्तों की खुशबू, जिन अनुभूतियों को हम छोड़कर आए

हैं, उनके प्रति हमारी बेचैनी, 'होमसिकनेस' एक जैसी है। साथ ही साथ, जिस ज्ञान को बटोर कर हम कुछ कर गुजरने की ख्वाहिश रखते हैं, वे सारे तत्व हमको मानवीय आधार पर जोड़ते हैं, तोड़ते नहीं।

आरती स्मित: दीक्षा जी, सचमुच आपने एक ही जगह पूरी दुनिया की खुशबू महसूस ली। आपने अलग-अलग परिस्थितियों में रह रहे लोगों के जीवन को भी बड़े निकट से देखा है। कुछ निजी अनुभव बताइए।

दीक्षा नागर: आरती जी, आपकी जिज्ञासा सवाल के रूप में इतनी व्यापकता लिए है कि इस पर पूरा लेख लिखा जा सकता है। मैं आपको अपने दो अनुभव सुनाती हूँ जो अब भी मेरी यादों में जगह बनाए हुए है। अमरीका पहुँचने के चंद हफ्ते बाद, मैं एक बार लाइब्रेरी के कैफेटेरिया में बैठी लंच कर रही थी, वह कैफेटेरिया काफी बड़ा था, उसमें अंदर-बाहर मिला कर तकरीबन, 50 मेजें तो होंगी ही --मैंने देखा कि जब लोग खाना खा कर उठते, तो कमान सी झुकी कमर और चाँदी जैसे सफेद बालों वाली एक महिला आकर अगले ग्राहक के लिए मेज पोंछने लगती। उसको देख कर मन ही मन मुझे बहुत दया आ रही थी। मैं सोच रही थी कि पता नहीं, किन परिस्थितियों ने इस उम्र में इस बुजुर्ग महिला को काम करने के लिए मजबूर किया? पता नहीं उसकी पारिवारिक स्थिति क्या है? मगर वह पूरी तन्मयता के साथ मेज साफ कर रही थी। जब मैं लंच करके उठने को हुई तो वह मेरी मेज पोंछने के लिए आई तब मैंने उससे कहा, ''प्लीज, रहने दीजिये मैं पोंछ लूँगी'' तो उसने गंभीरता से कहा ''यह मेरा काम है, क्या मैं इसे ठीक से नहीं कर रही?'' मैं हतप्रभ रह गई। मैंने कहा, ''ऐसा नहीं है'', उसने तब मुस्कुरा कर कहा, ''मैं यूनिवर्सिटी आती हूँ, यंग जनरेशन को देखती हूँ, उनकी तरह- तरह की नरम-गरम बातें, उनकी दुनिया-जहान के डिस्कशन, मेरे कान में पड़ते हैं, मुझे अच्छा लगता है, मेरी उम्र बढ़ जाती है। बुढ़ापे में घर बैठ कर कितनी बोरियत होती है, इसकी कल्पना तुम अभी कर नहीं सकती।'' उस महिला के स्वावलंबन और जीवन के प्रति उसकी आस्था को देख कर मैं दंग रह गई।

आरती स्मित: यह तो प्रेरक घटना सुनाई आपने। और...?

दीक्षा नागर: इसी तरह, जो लोग यह कहते हैं कि 'अमरीका में पड़ोसी एक-दूसरे को पहचानते नहीं या बुजुर्गों को वृद्धाश्रम में भेज देते हैं', ऐसा नहीं है। पहली बात तो यह है कि अमरीका का आम आदमी, वृद्धाश्रम या असिस्टेड लिविंग अफ्फोर्ड नहीं कर सकता। जो बुजुर्गवार वृद्धाश्रम जाना चाहते हैं, वे स्वयं वहाँ जाने का निश्चय करते हैं और वह भी इसलिए क्योंकि वे अपने परिवार पर आश्रित नहीं होना चाहते। वे रिटायरमेंट होम के लिए पैसे बचाते हैं। उन्हें लगता है कि वृद्धावस्था में जब वे अपने दोस्तों और अपनी उम्र के लोगों से मिलने- जुलने नहीं जा पाएँगे तो, अगर वे अपनी उम्र के लोगों के साथ एक ही छत के नीचे रहेंगे तो उन्हें अपनी उम्र के लोगों का साथ मिलता रहेगा। बहुत-से जिगरी दोस्त आपस में यह तय कर लेते हैं कि वे फलां-फलां रिटायरमेंट होम में जाएँगे। इन रिटायरमेंट होम में, डॉक्टर, भोजन, पानी वगैरह की व्यवस्था तो होती ही है, साथ ही साथ वहाँ बुजुर्गों के लिए नियमित तौर से गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। जैसे- कभी फिल्म, कभी संगीत के कार्यक्रम, कभी मनोरंजन के खेल। उन्हें कभी शॉपिंग ट्रिप्स पर ले जाया जाता है, तो कभी म्यूजियम या नाटक देखने। वृद्धाश्रम जिन्हें रिटायरमेंट होम, या असिस्टेड लिविंग कहा जाता है, वहाँ जाने का बुजुर्ग स्वयं फैसला करते हैं, यह नहीं कि हर संतान एहसान फरामोश होकर उन्हें वहाँ पटक देती हो।

आरती स्मित: यहाँ भगवतधाम वृद्धाश्रम में भी लगभग ऐसी ही व्यवस्था है। यहाँ कुछ लोग रिटायरमेंट के बाद मजबूरी में आए होंगे, मगर अधिकांशत: अपनी ही मरजी से आए हैं। जैसा कि आपने बताया कि वे अपनी स्वायत्त बनाए रखना चाहते हैं। वैसे यह प्रभाव तो विदेश का ही है ना! यहाँ वृद्धाश्रम में जो माताएँ हैं, उनकी आँखों की उदासी बहुत

कुछ कहती है। कुछ ने इसे हँसी-खुशी स्वीकार लिया, मगर कुछ सूनेपन को गले लगाए रहती हैं।

दीक्षा नागर: ऐसा नहीं है कि अमरीका में सभी बुजुर्ग रिटायरमेंट होम में ही रहना चाहते हैं। बहुत से बुजुर्गवार आज भी अपने बच्चों-बेटे-बेटी या परिवार के सदस्यों के साथ रहना पसंद करते हैं। 99 वर्षीया मिसेज मैकविलियम्स, जिनसे हमने मकान खरीदा, नि:संतान थीं। 1985 में जब उनके पति का निधन हुआ तो उनके छोटे भाई उनके साथ रहने लगे। 82 साल की उम्र में जब उनके भाई का देहांत हो गया, तो उन्होंने अपनी देखभाल और अपने माल-असबाब की जिम्मेदारी, अपने पड़ोसी मित्र की बड़ी बेटी एमा को दे दी। 99 वर्ष की उम्र में जब मिसेज मैकविलियम्स घर को नहीं संभाल पा रही थीं, तब उन्होंने एमा से मकान बेचकर असिस्टेड लिविंग में जाने की इच्छा व्यक्त की। 101 वर्ष की उम्र में जब मिसेज मैकविलियम्स का देहांत हुआ तो हमने अखबार में पढ़ा कि उन्होंने अपनी बचत की पूरी राशि संगीत- शिक्षा की छात्रवृत्ति के लिए उस सरकारी स्कूल को दान में दे दी थी, जहाँ आर्थिक रूप से विपन्न प्रवासी और अश्वेत बच्चे जाते थे और जहाँ हाल ही में संगीत और कला विषयों की फंडिंग में कटौती की गई थी।

आरती स्मित: आप तो बिलकुल दूसरा अमेरिका दिखला रही हैं?

दीक्षा नागर: हाँ, ऐसा नहीं है कि बुजुर्गों के लिए अमरीकी समाज में कोई जगह नहीं है। आपको एक उदाहरण और देती हूँ। जब मैं पहली-पहली बार ऐंगलवुड, कोलोराडो गई, तो मुझे इस बात का बड़ा ताज्जुब हुआ कि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बसे कई पुराने मोहल्लों में एक ही प्लाट पर एक बड़ा और एक-छोटा मकान है। पूछने पर पता चला कि इस तरीके के मकान- 'मदर-इन लॉ हाउजेस' कहलाते हैं। उनका इतिहास यह है कि इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन के बाद, जैसे-जैसे उस जमाने की नई पीढ़ी ने शहरों में बसना शुरू किया, और उस पीढ़ी के माता- पिता जो देहात में रहते थे बुजुर्ग होने लगे, तो उनके बच्चों को अपने माता-पिता की देखभाल की चिंता होने लगी। मगर वह पीढ़ी अपने बेटे- बहू पर बोझ नहीं बनना नहीं चाहती थी। उनको शायद यह लगता हो कि अगर हम बेटे-बहू के साथ रहेंगे तो हमको उनके हिसाब से रहना पड़ेगा। वे अपनी स्वायत्तता नहीं खोना चाहते थे। इस समस्या का यह समाधान निकला कि एक ही प्लाट पर दो मकान बनाए जाने लगे ताकि बच्चे अपने माता-पिता की देखभाल भी कर सकें और दोनों एक-दूसरे की ज़िंदग़ी में अधिक हस्तक्षेप भी ना कर सकें।

आरती स्मित: जी और? जिस अमरीकन समाज को हम, बहुत से भारतीयों की नजर से देखते हैं, जो यह कहते हैं, अमरीका में पड़ोसी एक-दूसरे को नहीं पहचानते या सड़क पर कोई दिखाई नहीं देता, इनमें ज्यादातर वे लोग भी हो सकते हैं, जो समृद्ध मोहल्लो में रहते हैं और डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, या कंप्यूटर साइंस, एम. बी. ए. की डिग्री प्राप्त करके बड़ी-बड़ी कंपनियों के लिए काम कर रहे हैं। अमरीका का सबर्बन कल्चर अलग ही है, शहर के बीचों-बीच रहने वाले कामकाजी लोगों की ज़िंदग़ी इससे काफी अलग है।

दीक्षा नागर: दो दुनियाओं के बीच का यह सफर आसान नहीं है, पर मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मैं अमरीका के चाहे किसी कोने में रहूँ, हर दिन जाने-अनजाने मेरी मुलाकात या बातचीत किसी ऐसे व्यक्ति से जरूर हो जाती है, जिससे मुझे कुछ नया सीखने और समझने को मिलता है। इससे मेरी दुनिया और बड़ी हो जाती है और सवेरे का अखबार पढ़कर जो अँधेरा मन को घेरता है उसको दूर भागने का संकल्प और पक्का हो जाता है।

✠✠✠

आलोचक नामवर सिंह से महावीर अग्रवाल की बातचीत

स्व. डॉ. नामवर सिंह हिंदी आलोचना के प्रमुख स्तंभ थे। आदि, मध्य, आधुनिक और उत्तर-आधुनिक काल सभी में उनके मूर्धन्य आलोचक का प्रवेश था। उन्हें आचार्य हजारी प्रसाद जैसा 'गुरु' मिला और आचार्य द्विवेदी को उनके जैसा अप्रतिम शिष्य मिला। 'गुरु' की लीक के साथ-साथ शिष्य नामवर सिंह ने अपनी एक लीक भी निर्मित की।

यह साक्षात्कार दिवंगत आलोचक की पुण्य स्मृति में प्रस्तुत है जो गुरु-शिष्य परंपरा का एक सशक्त उदाहरण है

—संपादक

महावीर अग्रवाल : ''पिताजी न होते तो मैं आज जो कुछ हूँ, न होता। साहित्य की जो थोड़ी बहुत सेवा कर सका, इसका सारा श्रेय पिताजी को है''। साहित्य समाज जानना चाहता है, आपके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में किनकी भूमिका और प्रेरणा को आप सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं?

नामवर सिंह : माँ मेरी पहली पाठशाला थीं। उनके गाए लोकगीतों ने मुझे संस्कार दिया। लोकगीतों के लालित्य में जीवन का रस छिपा था। सहज सरल ही नहीं खुले दिल की माँ द्वारा गाए गए लोक गीत मेरे भीतर गहरे पैठे हुए हैं। उन लोकगीतों में माँ आज भी खुशबू की तरह रची बसी हैं। प्राइमरी स्कूल के गुरु मताउल्लाह खान, धर्मदेव सिंह के साथ ही पिताजी के मित्र स्वाधीनता सेनानी कामताप्रसाद विद्यार्थी के घर पर मिलने वाली 'सस्ता साहित्य मंडल' की पुस्तकों से साहित्यिक पुस्तकों में रुचि बढ़ने लगी थी। उनके यहाँ पहली बार महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' पुस्तक के साथ जवाहर लाल नेहरू की 'मेरी कहानी' और 'विश्व इतिहास की झलक' देखी और पढ़ी थी।

महावीर अग्रवाल : ये घटनाएँ किस सन् की हैं?

नामवर सिंह : पिताजी का स्थानांतरण जब माधोपुर से कमालपुर गाँव के स्कूल में हुआ तो तब पांचवीं में मेरा दाखिला, उसी स्कूल में करवा दिया था। फलस्वरूप अपने गाँव जीयरपुर से लगभग तीन किलोमीटर दूर रोज सुबह पिताजी के साथ-साथ मैं भी स्कूल जाता था। जहाँ तक मुझे स्मरण है, यह 1936-37 की बात है।

महावीर अग्रवाल : मिडिल स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद

सम्पर्क: ए-14, आदर्श नगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़)-491003, फोन: 0788-2356234

आपको आगे पढ़ने के लिए बनारस भेजा गया। क्या इन्हीं दिनों आपने टालस्टाय की पुस्तक 'माई कन्फेशन' का हिंदी अनुवाद भी पढ़ा था?

नामवर सिंह : आप सही कह रहे हैं। गुरूजनों के सान्निध्य और बनारस के साहितियक माहौल ने मुझे सही दिशा दी। हिंदी की बड़ी विभूतियों में प्रेमचंद जी, रामचंद्र शुक्ल जी और प्रसाद जी के दर्शन मैं नहीं कर पाया क्योंकि जब मैं काशी पहुँचा वहाँ वे दिवंगत हो चुके थे। इसके बाद भी उनका प्रभाव बनारस के क्षितिज पर दूर-दूर तक दिखाई देता था। वहाँ के साहित्यिक आकाश पर उनकी छाया थी।

महावीर अग्रवाल : बनारस में किस स्कूल में आपको दाखिला मिला था?

नामवर सिंह : दाखिला होने के तुरंत बाद ही मुझे सौभाग्य से उदय प्रताप कॉलेज में बहुत अच्छे अध्यापक मिले। ममतामयी माँ के नेह भरे बचपन से ज्ञात-अज्ञात गुरूवरों को प्रणाम करता हूँ तो मुझे हिंदी के अपने प्रथम गुरू आदरणीय मार्कण्डेय सिंह याद आते हैं। मेरा गद्यकार और आलोचक का जो व्यक्तित्व बना उसकी नींव मार्कण्डेय सिंह की डाली हुई है।

गुरूवर मार्कण्डेय सिंह के बाद पंडित केशव प्रसाद मिश्र मुझे गुरू के रूप में मिले। सन् 1949 से 1950 तक मुझे उनके चरणों में बैठने का अवसर मिला। अपभ्रंश के गहन अध्येता तो वे थे ही, भाषा विज्ञान के साथ हिंदी में भक्ति काव्य, रीति काव्य और छायावाद के मर्मज्ञ थे। स्वाध्याय से अर्जित की हुई उनकी ज्ञान संपदा आश्चर्यजनक थी। उनसे ही मिली प्रेरणा से मैंने 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' नाम से एम.ए. के लिए लघु शोध प्रबंध तैयार किया था। उनसे मैंने शब्द विवेक पाया। पहली बार उनके ही मुख से पतंजलि का यह कथन सुना था—'एकः शब्दः सम्यक ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्ग लोकेच कामधुक भवति।' अर्थात एक ही शब्द जानो। सम्यक रूप से जानो। सही जगह उसका इस्तेमाल करो। अगर इतना ही करो तो इस लोक में तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी।

महावीर अग्रवाल : गुरूदेव हजारी प्रसाद द्विवेदी तब तक काशी नहीं पहुंचे थे?

नामवर सिंह : सौभाग्य हमारा था कि केशव प्रसाद मिश्र जी के उत्तराधिकारी के रूप में हमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मिले। वे सन् 1950 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में आए। गुरूजनों में एक नाम और जोड़ना चाहूँगा, रीतिकाव्य के परम विद्वान विश्वनाथ मिश्र का। उस दौर में भी रीतिकालीन कविता की तरह ही उनकी हर बात में कोई न कोई श्लेष, विरोधाभास या यमक होता था। बिना किसी चमत्कारी उक्ति के उनकी कोई बात होती ही न थी। यदि गुरू के रूप में विश्वनाथ मिश्र जी न मिले होते तो रीतिकाव्य परंपरा की अनेक भाषिक रूढ़ियों की जानकारी से वंचित ही रह जाता। मेरी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में जो गद्य है वह आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के संस्कारों वाला गद्य है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के गद्य की भाषा का अपना अलग अस्तित्व व लालित्य है। इन दोनों से एकदम भिन्न हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के गद्य की भाषा बेहद सहज और सुलझी हुई है। उसमें एक फक्कड़पन, एक मस्ती, एक प्रवाह है। बहुत बाद में मैंने 'दूसरी परंपरा की खोज' पुस्तक लिखने के लिए कलम उठाई, मुझे लगा कि कलम जैसे अपने आप ही द्विवदी जी की रौ में चल पड़ी है। बोलचाल के विन्यास में छोटे, सरल सहज वाक्यों वाला गद्य प्रस्फुटित हो गया। गुरूदेव हजारी प्रसाद द्विवेदी जब तक काशी में रहे, कई-कई बार पैदल विश्वविद्यालय जाते हुए मैंने अनेकों बार देखा था। और न जाने कितनी बार उनके साथ गया हूँ। पांडित्य

और सहजता की प्रतिमूर्ति गुरूदेव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं। उनकी गुरू गंभीर विद्वता के बीच उनके जैसी सहजता, सरलता और परदुखकातरता मैंने आज तक कहीं नहीं देखी। सहृदयता के धरातल पर गुरूदेव मेरे लिए प्रकाश स्तंभ की तरह हैं।

महावीर अग्रवाल : काशी में आप कितने साल द्विवेदी जी के शिष्य रहे? बाद के वर्षों में आपका उनका सान्निध्य कितने वर्षों तक मिला?

नामवर सिंह : गुरूवर शांतिनिकेतन से जुलाई 1950 में काशी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष होकर आए। मैं तब एम. ए. के अंतिम वर्ष का विद्यार्थी था। पूरे विश्वविद्यालय में उनका पहला अग्रश्रवा। मैं आज भी गुरूदेव का शिष्य ही हूँ उनके दिखाए रास्ते पर चलता हुआ। वे काशी में पूरी गरिमा और मान के साथ 1960 तक रहे। इसके बाद अपने विरोध को देखते हुए उन्होंने हिंदी विभाग के अध्यक्ष का पद छोड़ दिया। धोती-कुरता, कंधे पर शाल और पैरों में साधारण-सी चप्पल, यही उनकी वेशभूषा रहती थी। गुरूदेव जब तक काशी में रहे, कई-कई बार पैदल विश्वविद्यालय जाते थे और न जाने कितनी बार उनके साथ मैं भी पैदल गया हूँ। वे अक्सर शांतिनिकेतन की चर्चा करते थे। मुझे रवींद्रनाथ के समय के शांतिनिकेतन को देखने का सौभाग्य तो नहीं मिला, किन्तु गुरूवर द्विवेदीजी के मुख से उस दौर की जो दास्तान सुनी है उससे 'रामहर्षश्व जायते' की अनुभूति होती है।

महावीर अग्रवाल : हजारी प्रसाद द्विवेदी कब और किस रूप में शांतिनिकेतन पहुंचे? उनके वहाँ के अनुभव बताइए।

नामवर सिंह : शांतिनिकेतन के शुरुआती दिनों में सादगी बहुत थी, अध्यापक के साथ-साथ सभी छात्र छात्राएँ जूते नहीं पहनते थे, सभी नंगे पांव चलते थे। द्विवेदी जी 1930 में मूल रूप से वेदमंत्रों के शुद्ध पाठ करने और करवाने के लिए शांतिनिकेतन पहुंचे थे।

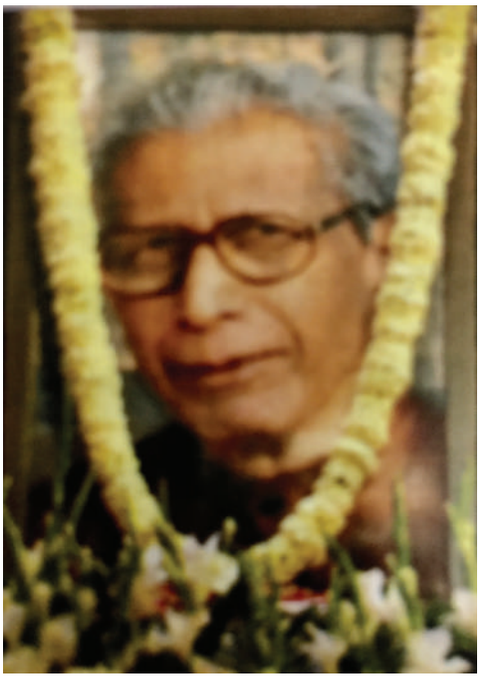

गुरूदेव ने बताया था, ''शांतिनिकेतन के छात्रावास में प्रात:काल और संध्या समय वेद मंत्रों का पाठ करते हुए उपासना की जाती थी। छात्र-छात्राओं को मंत्र पाठ का सही उच्चारण आना चाहिए, इस दृष्टि से ही उनकी युक्ति हुई थी।'' इसके साथ ही संस्कृत तथा हिंदी की शिक्षा देने के लिए भी बुलवाया गया था। उन्हें पचास रुपए की मासिक वृत्ति मिलती थी। वे संस्कृत पंडित के साथ ही ज्योतिषाचार्य भी थे। परंतु धीरे-धीरे हिंदी शिक्षक के रूप में समूचा शांतिनिकेतन उनकी सुवास से महकता चला गया। उन्होंने हिंदी साहित्य के शोध और सृजन के लिए 'हिंदी भवन' बनवाया और उसके निदेशक-अध्यापक बने।

महावीर अग्रवाल : जहाँ तक मैंने पढ़ा है, जिस समय द्विवेदी जी शांतिनिकेतन पहुँचे उस समय उनकी उम्र बहुत कम थी? और उनके व्यक्तित्व का निर्माण भी शांतिनिकेतन में लगातार होता गया।

नामवर सिंह : आप सही कह रहे हैं। गुरूदेव जब शांतिनिकेतन पहुँचे, उनकी उम्र केवल और केवल तेइस वर्ष की थी। उन्होंने वहाँ

लगभग 20 वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। 'विद्या ददाति विनयम्' का मूल मंत्र उनकी जीवन शैली में रच-बस चुका था। यह मैंने कदम-कदम पर देखा भी और महसूस भी किया। द्विवेदी जी शांतिनिकेतन जाने को अपना दूसरा जन्म मानते थे। गुरूदेव ने एक बार बताया, रवींद्रनाथ टैगोर ने उनसे कहा था, ''यहाँ जो कुछ उत्तम है, उसे लेना और तुम्हारे भीतर जो सर्वोत्तम है, उसे देना।'' टैगौर जी की इस बात को उन्होंने गाँठ बांध ली और जीवन भर उसे अपने आचरण में उतारकर अपना गुरू ऋण उतारते रहे। आज कौन अपने गुरू की बात को इतनी गंभीरता के साथ अपने जीवन के साध्य के रूप में अपनाता है?

महावीर अग्रवाल : गुरूदेव की अद्‌भुत जीवन शैली और व्यक्तित्व पर सबसे अधिक प्रभाव किनका पड़ा?

नामवर सिंह : कविवर कालिदास और शांतिनिकेतन के संस्थापक रवींद्रनाथ टैगोर का गुरूवर हजारीप्रसाद द्विवेदी पर गहरा प्रभाव था। गुरूदेव बताते थे, शांतिनिकेतन में उन्हें पढ़ने-लिखने का, फलने फूलने का भरपूर अवसर मिला। प्रेरणा के श्रोत गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर थे। प्रभाव की दृष्टि से दूसरे बंगाली विद्वान क्षितिमोहन थे, जिनकी संगति का भी गहरा असर द्विवेदी जी पर पड़ा। गुरूदेव समय-समय पर बताते रहे, कि दोनों ने गहराई से मुझे जाना और समझा ही नहीं लगातार प्रेरणा भी दी। दोनों हिंदी के मौन सेवक थे। उनके मार्गदर्शन में गुरूदेव हिंदी और बंगाली बुद्धिजीवियों के बीच सेतु का काम करते थे।

महावीर अग्रवाल : शांतिनिकेतन के 'हिंदी भवन' की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली थी।

नामवर सिंह : 'हिंदी भवन' की ख्याति और प्रतिष्ठा आज भी कम नहीं हुई थी। शांतिनिकेतन में 'हिंदी भवन' के अनुकूल वातावरण में सृजन के लिए सभी को असीम आकाश मिला। रांगेय राघव, धर्मवीर भारती और शिवानी जैसे प्रसिद्ध रचनाधर्मियों ने यहाँ आकर शोध किया था। इसके साथ ही साथ राहुल सांस्कृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, यशपाल, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, जैनेंद्र जैसे रचनाकार 'हिंदी भवन' में आकर ठहरा करते थे। गुरूदेव ने बताया कि अज्ञेय से लेकर बलराज साहनी तक न जाने कितने चर्चित लोग 'हिंदी भवन' से जुड़े रहे। शांतिनिकेतन के संस्मरण में प्रकृति का नया रूप बार-बार अपनी ओर खींचता है। हिंदी के विकास के लिए गुरूदेव ने अनेक योजनाएँ बनाईं। वे हिंदी के संवर्धन के लिए महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू और आचार्य नरेंद्र देव सहित हिंदी प्रेमी राजनीतिज्ञों से अनेकानेक बार मिले। इसके साथ ही समय-समय पर वे हिंदी के मर्मज्ञों से भी लगातार मिलते रहे।

महावीर अग्रवाल : आपके पास तो गुरूदेव का दिया हुआ अकूत खजाना है। उसमें से एक मोती साहित्य समाज को दीजिए और फिर विराम लेते हैं।

नामवर सिंह : गुरूदेव के समूचे लेखन में एक सुलझी हुई सांस्कृतिक दृष्टि का परिचय हमें मिलता है। 'अशोक के फूल' में पृष्ठ 69 पर गुरूदेव ने लिखा है, 'मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव-संस्कृति हो सकती है। यह दूसरी बात है कि वह व्यापक संस्कृति अब तक सारे संसार में अनुभूत और अंगीकृत नहीं हो सकती है।''

गुरूवर का उन्नत ललाट, गरिमा से युक्त गंभीर मुखमंडल, सहज व सरल हास्य के साथ उनके ठहाकों की अनुगूंज बहुत मोहक होती थी। उनके ठहाकों में हमेशा बनी रहती थी जीवन की उत्फुल्लता। गुरूदेव की यशस्वी स्मृति का सौरभ मेरे जीवन में सदैव विद्यमान रहेगा।

✠✠✠

सुषम बेदी से एक छोटी सी मुलाकात

मीनाक्षी जोशी

सुषम जी से बातों का जो सिलसिला आरंभ हुआ तो वह कहीं थमने का नाम ही न ले रहा था। पूरे परिचय के बाद उनकी रचनाएं, विषय, प्रकाशन न जाने कितने-कितने विषयों पर हम यूं बतियाते रहे, जैसे बरसों पुरानी हमारी मित्रता हो। यही होता है सरल स्वभाव वाले व्यक्तित्व से जुड़ने का आकर्षण, जो कुछ ही पलों में अनजान को भी अपना बना लेता है। बातचीत के दौरान सुषम जी गरमागर्म वेजीटेबल सूप भी बनाकर ले आईं। साथ ही कई प्रकार के सूखे मेवों से सजी एक प्लेट थी।

सम्पर्क: 'मधुरा', रामायण नगरी, भंडारा (महाराष्ट्र), ई-मेल: minakshijoshi2511@gmail.com

''मेरी आंखों के आगे एक बहुत महीन धागों का बुना जाल-सा बिछ गया। एक-एक करके कितने ही चेहरे उस जाल में उलझते-गुलझते जाते। गुस्से से लाल मां की सूरत, घृणा से सिकुड़ा पिताजी का तेवर। दीदी की भर्त्सना। अजय का सहानुभूतिमय जिज्ञासु पर खामोश चेहरा। क्या मैं कभी किसी को माफ नहीं कर सकी...''

'मैंने नाता तोड़ा' उपन्यास का यह अंश मुझे उसकी लेखिका सुषम बेदी से मिलने के लिए हमेशा प्रेरित करता रहा। उनके अन्य उपन्यासों ने भी अनेक जिज्ञासाएं पैदा की हैं मेरे मन में। औ मेरी खुशनसीबी देखिए कि मुझे अमरीका यात्रा का अवसर मिल ही गया। रिश्तों और परिस्थितियों के बवंडर में कभी सूखे पत्ते-सा उड़ता जीवन और कभी अपनी जड़ों से जुड़ता जीवन... दोनों पक्षों का व्यवहारिक वर्णन करने वाली सुषम जी से मिलने का समय और दिन फोन द्वारा पहले ही तय कर लिया था।

ग्यारह मई दो हजार ग्यारह को पूरे तीन दिन हो चुके थे मुझे न्यू जर्सी पहुंचे। अब तक यात्रा की थकान पूरी तरह खत्म हो चुकी थी। 14 मई को सुषम जी से मिलने जाना था। उनसे मिलने के पूर्व मैं कोलंबिया यूनिवर्सिटी (न्यूयार्क) गई। वहां पर हिंदी विभाग के प्रोफेसर श्री दलपत सिंह राजपुरोहित तथा उर्दू विभाग के प्रोफेसर श्री आफताब से परिचय हुआ और काफी लंबी बातचीत की। हां, हिंदी के एक और प्राध्यापक श्री राकेश रंजन जी से भी संक्षिप्त परिचय हुआ।

बातों-बातों में साढ़े तीन बज गए। मुझे चार बजे सुषम जी के घर पहुंचना था। उनका घर यूनिवर्सिटी के पास ही था। मुझे उनके घर पहुंचाने की जिम्मेदारी सुषम जी ने दलपत जी को सौंपी थी, सो उनके साथ मैं पैदल ही चल पड़ी। कुछ ही देर में एक भव्य शानदार ईमारत के सामने रुके। यही है उनका घर। चार-पांच सीढ़िया फिर सुंदर बड़ा-सा कांच का दरवाजा। दलपत जी मोबाइल से सुषम जी को फोन कर रहे थे ताकि वे मुख्य द्वार खुलवा सकें। लेकिन तब तक सामने की सड़क से सुषम जी मुस्कुराती हुई हम तक पहुंच गई। यानि वे घर पर नहीं थीं। मैंने उन्हें नमस्कार किया। परिचय देने की औपचारिकता हमने फोन

पर ही पूरी कर ली थी। सुषम जी ने किसी कार्ड द्वारा मुख्य द्वार खोला फिर एक लंबा गलियारा पार कर हम लिफ्ट तक पहुंच गए, शायद चौथी मंजिल पर उनका फ्लैट था। शानदार बैठक की सुरुचिपूर्ण सजावट काबिलेतारीफ थी। सुषम जी की जो तस्वीरें मैंने पत्र-पत्रिकाओं और उनकी किताबों पर देखी थी उससे कुछ अलग ही नजर आ रही थी अभी। तस्वीरें शायद कुछ वर्षों पहले की होंगी। बहरहाल घने घुंघराले और कटे हुए बालों के बीच उनके गोरे चेहरे पर अब भी लालिमा, ताजगी और प्रसन्नता झलक रही थी। दलपत जी ने कुछ आवश्यक बातें कर हमसे विदा ली।

सुषम जी से बातों का जो सिलसिला आरंभ हुआ तो वह कहीं थमने का नाम ही न ले रहा था। पूरे परिचय के बाद उनकी रचनाएं, विषय, प्रकाशन न जाने कितने-कितने विषयों पर हम यूं बतियातें रहे जैसे बरसों पुरानी हमारी मित्रता हो। यही होता है सरल स्वभाव वाले व्यक्तित्व से जुड़ने का आकर्षण। जो कुछ ही पलों में अनजान को भी अपना बना लेता है। बातचीत के दौरान सुषम जी गरमागर्म वेजीटेबल सूप भी बनाकर ले आई। साथ ही कई प्रकार के सूखे मेवों से सजी एक प्लेट थी। वे बड़ी विनम्रता से उन्हें लेने का आग्रह भी करती रही। मेरे मन में उनकी रचनाओं के विषय में कुछ जिज्ञासाएं खलबली मचा रही थीं। उनके उपन्यास 'हवन' की चर्चा छिड़ी। सुषम जी ने बताया कि 'हवन' पर एक बार फिल्म निर्माण भी आरंभ हुआ था। आधे से अधिक फिल्म तैयार भी हो गई थी पर बाद में कुछ आर्थिक समस्या के कारण वह फिल्म पूरी न हो सकी। और अजीब बात यह भी कि इस उपन्यास का धारावाहिक प्रसारण रेडियो से भी करने की योजना बनी थी, किंतु इसके लिए स्क्रिप्ट तैयार करने की जिम्मेदारी भी मुझे ही उठानी थी और स्क्रिप्ट लिखने में मेरी जरा भी दिलचस्पी न थी। उससे अधिक मुझे नई रचनाएं लिखना रुचिकर लगता था, अत: मैंने स्क्रिप्ट लिखने से इंकार कर दिया। इन सबके बाद भी 'हवन' उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ, किंतु दुर्भाग्य देखिए कि इसे प्रकाशित करने वाली प्रकाशन संस्था भी बंद हो गई। कुछ वर्षों बाद उसी संस्था ने 'अभिनव प्रकाशन' आरंभ किया तब जाकर इस उपन्यास का दूसरा संस्करण निकला। फिर वह संस्था भी बंद हो गई। अब इस उपन्यास की एकमात्र प्रति मैंने अपने पास संभाल कर रखी है।'' कहकर सुषम जी खामोश किसी गहरी सोच में डूब गईं।

मैं सोच रही थी कि अच्छे रचनाकारों की श्रेष्ठ कृतियों का ऐसा हश्र हमारे देश की बड़ी विडंबना है... और उपाय शायद कुछ नहीं। अचानक सुषम जी उठकर भीतर गईं और कुछ ही देर में मसाला चाय बनाकर ले आईं। मूड बदलने में चाय ने ही मदद की। मैंने अपनी तीन पुस्तकें सुषम जी को भेंट की। उन्होंने भी अपना काव्य संकलन और एक उपन्यास सहस्ताक्षर मुझे सप्रेम प्रदान किए। कुछ पारिवारिक बातों के पश्चात हमने ईमेल पर संपर्क बनाए रखना तय किया और मैंने उनसे विदा ली।

अगले दिन सुषम जी का उपन्यास 'मैंने नाता तोड़ा' पढ़ना शुरू किया। बेहद रोचक लग रहा था। जिज्ञासा का प्रवाह निरंतर बना रहा। पढ़ते वक्त नायिका 'रितु' के रूप में मेरी आंखों के समक्ष सुषम जी का ही चेहरा घूमता रहा। लगा उपन्यास नहीं उनकी आत्मकथा पढ़ रही हूँ। रचनाओं में कल्पनाओं का आधार भी तो अनुभव ही होता है। सोचा पूरा उपन्यास पढ़ने के बाद सुषम जी से अवश्य बात करूंगी। अमरीकी संस्कृति और जीवन-शैली का अत्यंत सूक्ष्म और रोचक वर्णन उनके उपन्यास में पढ़कर लगा जैसे कि मेरी अनुभूतियों को भी शब्द मिल गए।

इस उपन्यास का एक अंश तो मनोमस्तिष्क में ऐसा अंकित हुआ कि आज भी नहीं भूली-''इस दुनिया में कितना कुछ होता रहता है, जिससे हम वाकिफ नहीं होते। कितनी बड़ी है यह दुनिया। फिर भी कितनी एक सी तकलीफें, एक से अनाचार, वहीं झगड़े, दमन, अत्याचार सब कहीं। सिर्फ उसके बाहरी रूप में फर्क है। यहाँ काला सफेद हैं वहाँ जात-पांत। दोनों समाजों का अपना-अपना ऊंच-नीच। इंसान द्वारा इंसान को दबाए रखने के अलग अलग तरीके। जिसकी लाठी उसकी भैंस।''

सुषम जी की खासियत यही है कि इनमें जीवन की सामान्यतर घटनाओं के माध्यम से गहरी बात कहने की क्षमता है और यही बात दिल और दिमाग को एक साथ छूती है। सोच को झकझोरती है, मर्म को कुरेदती है। शायद इसलिए रचना और रचनाकार दोनों अविस्मरणीय हो जाते है। मैं इस लघु परंतु गहन मुलाकात को भूल नहीं सकती।

✠✠✠

अजनबी शहर: अजनबी रास्ते

रंजन कुमार सिंह

अप्रवासियों के कारण अमेरिका का चेहरा कभी एक-सा नहीं रहा, और न्यूयॉर्क इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। आज 'लेक्सिंगटन एवेन्यू' के साथ लगा 'मरे हिल' क्षेत्र जो लघु भारत कहलाता है, कल तक आरमेनियन-बहुल क्षेत्र था। इसी तरह, 'ब्रूकलिन' क्षेत्र से, जो कि श्वेतों का पारंपरिक गढ़ रहा है, अश्वेत ने जीतकर पिछले दिनों राजनीतिक पंडितों को हैरत में डाल दिया। हालांकि क्षेत्रों में भी लगातार बदलती आबादी पर जिनकी नजर है, उनके लिए यह कोई अजूबा नहीं।

न्यूयार्क! रात के दस बज रहे थे। चेहरे पर परेशानी, कंधे पर बैग और हाथ में चिट लिये इस अजनबी शहर के अजनबी रास्ते पर मैं भटक रहा था। पुलिसवर्दी में एक व्यक्ति को देख नयी आशा से मैं उसकी ओर लपका। चिट उसकी तरफ बढ़ाकर मैंने उससे पूछा, 'हाउ डू आई गो टू दिस प्लेस?'

पहले नीचे से ऊपर तक उसने मेरे हुलिए को देखा, फिर चिट को। इसके साथ ही वह भी असमंजस में दिख पड़ा। डूबते से तिनके का सहारा भी छिन गया हो, मेरी ऐसी ही स्थिति थी। मैंने दाएं-बाएं देखा। सोचने लगा—अब क्या करूँ? तभी बगल में एक टैक्सी आकर रुकी।

टैक्सी ड्राईवर ने बाहर सिर निकालकर पूछा, 'कैन आई हेल्प यू?'

मैंने अब शाश्वत-से लग रहे इस सवाल के साथ कि 'हाउ डू आई गो टु दिस प्लेस' चिट उसकी तरफ बढ़ा दी।

मुझे आशा थी कि वह भी 'सॉरी' कहेगा और उसके बाद मेरा डायलॉग था, 'नेवर माइंड'। पर उसने एक तरफ इशारा किया और कहा, 'स्ट्रेट! मे बी सिक्स ब्लॉक्स फ्रॉम हियर।'

मुझे समझ ही नहीं आया कि अब क्या कहूं। 'नेवर माइंड' को किसी तरह फिसलने से रोककर मैंने जीभ से एक विनम्र 'थैंक यू' ढकेला। मंजिल सामने थी पर मुझे लगा कि मैं वहां तक कभी पहुचूंगा ही नहीं। अत: टैक्सी ड्राइवर से मैंने पूछा, 'वाई डोंट यू टेक बी टु द प्लेस?'

उसने कहा कुछ नहीं, सिर हिलाते हुए पीछे का दरवाजा खोल दिया। मैं अपने पांच किलो के बैग और पांच मन की परेशानी के साथ पिछली सीट पर जा बैठा। टैक्सी बढ़ी तो टैक्सी में ही लगे फोन पर उसने जाने क्या कहा। कुछ हलका होकर मैंने उसे ध्यान से देखा। घुंघराले बाल, सांवला रंग, ड्राइविंग सीट के पीछे छिपा उसका लंबा-चौड़ा शरीर।

मैंने उत्सुकता से पूछा, 'आर यू ऐन इंडियन?'

'हन् जी', एक संक्षिप्त उत्तर।

अगला प्रश्न उसकी ओर से था, 'आप यहां सैलानी हैं?'

सम्पर्क: 1402, 'त्रिशूल', कौशांबी, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश

'सैलानी ही हूं, पर यहां एक कवि-सम्मेलन में भाग लेने के लिए आया हूं। कल ही उसका आयोजन है।' मैंने उसे बताया।

'अच्छा, कल के लिए तो हमने भी किसी इंडियन प्रोग्राम का टिकट लिया हुआ है। शायद उसी का हो।' उसने कहा।

'चलिये, यह अच्छी बात हुई कि आपसे आज ही मुलाकात हो गयी। कल तो आप मुझे सुनेंगे ही।'

थोड़ी देर वह न जाने क्या कुछ सोचता रहा, फिर मुझसे बोला, 'मैं आपको आपके ठौर तक पहुंचा तो रहा हूँ पर आपको 'पे' करना होगा। दरअसल मैंने एजेंसी को बुकिंग की खबर दे दी है, नहीं तो कोई बात नहीं थी।' उसने कहा तो मुझे उसके द्वारा फोन पर की गयी बातचीत ध्यान हो आयी।

मैंने कहा, 'भई, मैं तो अपरिचित मानकर ही टैक्सी में बैठा था और टैक्सी ली है तो 'पे' करूंगा ही।'

इसी बातचीत के बीच उसने टैक्सी सड़क के किनारे लगाकर रोक दी। सामने बोर्ड था—'भारतीय विद्या भवन'। यही तो था मेरा गंतव्य।

लेकिन सामने ही ताला लटका दिख पड़ा। टैक्सी से उतरकर मैंने दाएं-बाएं घूमकर देखा। शायद कोई दिख जाय, पर कोई फायदा नहीं।

अब तक मैं निराश हो चला था। रॉचेस्टर से लगभग साढ़े छह बजे मैं न्यूयार्क पहुंच गया था। और तब से ही भटक रहा था।

बस स्टेशन से मैंने भारतीय विद्या भवन, न्यूयॉर्क के निदेशक डॉक्टर पी. जयरामन को फोन किया था। वही यहां के कवि-सम्मेलन के संयोजक थे। मैंने पूछा, 'क्या मैं डॉ. जयरामन से बात कर सकता हूं?' और मेरी बात को काटते हुए जवाब मिला, 'डॉ. जयरामन बाहर हैं। आप अपना नाम-फोन नंबर छोड़ दें। धन्यवाद।'

लगभग चिढ़कर ही मैंने कहा, 'आप मेरी पूरी बात तो सुन लें।' पर मेरी बात को अनसुनी करते हुए वही बात दुहराई-तिहराई जाती रही।

जब बात मेरी समझ में आयी तो खुद पर हंसना भी आया। दरअसल उधर से 'ऐन्सरिंग मशीन' पर 'रिकॉर्डेड मैसेज' मिल रहा था। मैंने भी अपना संवाद टेप करा दिया—'मैं न्यूयॉर्क पहुंच गया हूं और जल्दी ही आपके पास भारतीय विद्या भवन पहुंचता हूं।' फोन रखकर मैं निकट के अंडरग्राउंड रेलवे स्टेशन पर पहुंचा। टोकन लेकर भीतर पहुंच गया। पता किया कि क्वीन्स ब्लुवर्ड कौन-सी लोकल जायेगी और उस पर जा बैठा। ट्रेन में मुझे बताया गया कि यह क्वीन्स जाती है, क्वीन्स ब्लुवर्ड नहीं। क्वीन्स बहुत बड़ा क्षेत्र है। यह क्वीन्स ब्लुवर्ड, जैक्सन हाइट्स, फ्लशिंग, कोरोना आदि उपक्षेत्रों में बंटा हुआ है। मैं क्वीन्स तो पहुंच गया था पर क्वीन्स ब्लुवर्ड से बहुत दूर था। फलतः मैं बीच राह में ही उतर गया।

यहां की लोकल ट्रेनों में एक अच्छी बात यह है कि एक बार आप स्टेशन में प्रवेश कर जाएं, फिर चाहे कितनी ट्रेनें बदलें, कोई अतिरिक्त टिकट नहीं लगता। केवल प्लेटफॉर्म पर जाने के लिए ही टिकट ही जरूरत पड़ती है। ट्रेन पर या बाहर निकलते समय कोई चेकिंग नहीं। मतलब यह कि एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए ट्रेनें चाहे कितनी ही बदलनी पड़ें, टिकट केवल एक ही लगता है—एक डॉलर का। यह टिकट पास या दूर हर गंतव्य स्थान के लिए है।

मैं अभी स्टेशन के भीतर ही था, अतः बिना दूसरा टिकट लिये किसी भी दूसरी ट्रेन में चढ़ सकता था। मैंने मन-ही-मन इस व्यवस्था को धन्यवाद दिया। दिल्ली की-सी व्यवस्था होती तो एक टिकट और लेना पड़ता। यानी कि एक डॉलर और। मेरे जैसे सैलानी के लिए तो एक डॉलर की यह राशि वस्तुतः बारह रुपये के बराबर थी। क्योंकि खर्च बेशक हम डॉलर में करें, उसका मूल्य तो रुपये में ही चुकाया गया होता है।

तो एक बार फिर मैं प्लेटफॉर्म पर था। सोच ही रहा था कि अब क्या करूं कि संयोग से मुझे एक भारतीय दंपति दिख गये। मैंने उनको रोककर पूछा, 'क्वीन्स ब्लुवर्ड के लिए कौन-सी ट्रेन लूं?'

उन्होंने सामने खड़ी एक ट्रेन की ओर इशारा किया और खुद भी तेजी से उस पर जा चढ़े। मैं उनके पीछे-पीछे उसी डिब्बे में जा घुसा। हम दोनों आमने-सामने ही बैठे थे और मैं उम्मीद कर रहा था कि मेरा गंतव्य स्थान आने पर वे मुझे बता देंगे।

बेफिक्र होकर मैंने अपने दाएं-बाएं दृष्टि डाली। डिब्बे में अनेक भारतीय या यूं कहें कि भारतीय उपमहाद्वीप के लोग नजर आ रहे थे। बहुत से चीनी या जापानी अथवा कोरियाई भी दिख पड़े। बल्कि मूल अमेरिकी ही कम दिखे। कहते भी हैं, हर चार में एक न्यूयॉर्कवासी अप्रवासी है।

अप्रवासियों के कारण अमेरिका का चेहरा कभी एक-सा नहीं रहा,

और न्यूयॉर्क इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। आज 'लेक्सिंगटन एवेन्यू' के साथ लगा 'मरे हिल' क्षेत्र जो लघु भारत कहलाता है, कल तक आरमेनियन-बहुल क्षेत्र था। इसी तरह, 'ब्रूकलिन' क्षेत्र से, जो कि श्वेतों का पारंपरिक गढ़ रहा है, अश्वेत ने जीतकर पिछले दिनों राजनीतिक पंडितों को हैरत में डाल दिया। हालांकि क्षेत्रों में भी लगातार बदलती आबादी पर जिनकी नजर है, उनके लिए यह कोई अजूबा नहीं।

आज के न्यूयॉर्क में एक बहुत बड़ी आबादी विदेश में जन्मे लोगों की है और यह आबादी साल-दर-साल बढ़ ही रही है। ब्रांक्स में जापानी, अल्बेनियन व वेस्ट इंडियन की घनी आबादी है तो ब्रूकलिन में चीनी, रूसी व हैतियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। मैनहेटन का छोटा चाइन टाउन जब और नये लोगों को अटा पाने में असमर्थ रहा तो चीनी अब कोरोना, फ्लशिंग या जैक्सन हाइट्स आदि क्षेत्रों में घर ढूंढ़ रहे हैं। कोरियाई फ्लशिंग में डेरा डालते चले जा रहे हैं और उसके पड़ोस की 76 हजार की आबादी में करीब दस हजार चीनी-भारतीय-कोरियाई-जापानी-फिलिपीनी है। मैनहेटन की ओर जाने वाला सब-वे लाइन तो 'ओरिएंट एक्सप्रेस' के नाम से ही ख्यात है।

ऐसे में यह बिल्कुल आश्चर्य की बात नहीं कि इस सब-वे लाइन पर मेरे ज्यादातर सहयात्री गैर-अमेरिकी मूल के हैं।

इस बीच कई स्टेशन आये और निकल गये। यहां तक कि ट्रेन अंतिम पड़ाव पर आ रुकी। मेरे सामने बैठे भारतीय दंपति उसी तेजी से बाहर निकले, जिस तेजी से वे आठ स्टेशन पहले भीतर घुसे थे। उन्होंने मेरी तरफ देखा तक नहीं। बगल से गुजर रही एक जापानी युवती से मैंने पूछा, 'क्वीन्स ब्लुवर्ड?' पता चला मैं आगे... बहुत आगे निकल आया हूं। फिर वापसी की ट्रेन ली। आखिरकार क्वीन्स ब्लुवर्ड आ ही पहुंचा।

प्लेटफॉर्म से बाहर निकलने से पहले एक बार फिर मैंने डॉ. जयरामन का फोन नंबर मिलाया। फिर वही रिकार्डेड मैसेज। मैंने भी अपनी ओर से संवाद रिकॉर्ड करा दिया—'क्वीन्स ब्लुवर्ड स्टेशन पहुंच गया हूं, जल्दी ही भारतीय विद्या भवन पहुंच रहा हूं।'

फिर बाहर निकलकर रास्ते के बारे में पूछताछ की। बहुतों को जानकारी ही नहीं थी। कुछ ने ईधर भेजा तो कुछ ने उधर का रास्ता दिखा दिया। इसी इधर-उधर में साढ़े नौ बज गये।

...और अंततः जब भारतीय विद्या भवन आ पहुंचा तो ताला बंद। टैक्सी से उतरकर मैंने दाएं-बाएं देखा—शायद कोई मिल जाय, आगे-पीछे दौड़ा—कोई सूचना ही हो, पर कोई पूछने-बताने वाला नहीं मिला। अब?

मैंने अपना इरादा बना लिया। यहीं इंतजार किया जाय डॉ. जयरामन का। अपना बैग टैक्सी से उतारते हुए मैंने टैक्सी ड्राइवर से पूछा, 'कितने पैसे हुए?'

वह साश्चर्य मुझे देखता रहा। फिर बोला, 'जानते हैं समय क्या हुआ है?'

मैंने जवाब दिया, 'दस बजने को है। क्यों?'

'यदि आपको यहां छोड़ जाऊं तो आधा घंटे में न आपके सामान का पता होगा, न आपका।' उसने कहा।

'फिर किया क्या जाय?' बेचारगी में मैंने उसकी ओर देखा।

उसने कहा, 'चलिये, किसी मोटल में आपको छोड़ देता हूं। यहां अब सुबह आइयेगा।'

यहां के मोटलों का किराया सुनकर मेरा गला सूखने लगा। एफ.टी.एस. के रूप में पांच सौ डॉलर मात्र लेकर चलने वाले मुझ जैसे सैलानी के लिए 40 से 60 डॉलर किसी भी तरह कम नहीं होते, तब तो और अखरता है जब यह खर्च सिर्फ एक रात पर हो।

उसने मेरे असमंजस को भांप लिया। कुछ सोचने के बाद उसने मुझसे कहा, 'एक काम करो, बैठे रहो टैक्सी पर।'

यह कहते हुए उसने मेरा बैग टैक्सी में वापस रख दिया। मैं किकर्तव्यविमूढ़ बना उसमें जा बैठा। आगे का दरवाजा अपने लिए खोलता हुआ वह बोला, 'ऐसा है, तुम्हें अपने घर ले चलता हूं।'

चयन का अधिकार अब मुझे नहीं था।

ड्राइविंग सीट पर बैठकर उसने टैक्सी में लगे माइक्रोफोन पर जाने क्या कुछ कहा, फिर टैक्सी स्टार्ट करता हुआ मुझसे बोला, 'रात आप मेरे घर पर रहो, सुबह विद्या भवन छोड़ दूंगा।'

मैं चुप रहा पर टैक्सी के बढ़ने के साथ ही मुझे डर लगने लगा था। अपरिचित शहर, अपरिचित रास्ते, अपरिचित आदमी। जाने मुझे कहां ले जाय, क्या करे? फिर मैंने खुद को नियति के हाथों में सौंप दिया।

उसने अपना नाम बताया—सुरिंदर।

वह कह रहा था, 'मैं रात को ड्यूटी में हूं। रात आप घर में

अकेले रहोगे। एतराज न हो तो आपका पासपोर्ट मैं रख लूंगा। सुबह ले लेना।'

मेरा मौन बरकरार था।

सुरिंदर ही कहे जा रहा था, 'दरअसल, इसके पहले मैंने एक हिंदुस्तानी को ऐसे ही ठहराया था। मेरी गैर-हाजिरी में उसने इंडिया फोन लगा लिया। घंटों बात करता रहा। उसे ठहराने की कीमत मुझे चुकानी पड़ी—करीब सौ डॉलर।'

तंद्रा की-सी स्थिति में मैं बोला, 'मेरे साथ आप निश्चिंत रहें।'

गाड़ी चलती रही। मेरी तंद्रा टूटी। कौन है यह? कहां लिये जा रहा है मुझे? क्या करेगा मेरे साथ? नहीं-नहीं, मैं इसे अपना पासपोर्ट नहीं दे सकता। किसी हालत में नहीं। पर मार-पीटकर ले ले तो?

मैंने खिड़की से बाहर झांककर देखा—किधर जा रहे हैं हम? पल्ले कुछ नहीं पड़ा। गाड़ी चलती रही। कभी दाहिने, कभी बाएं मुड़ती हुई। और फिर एक जगह पर आ रुकी।

सुरिंदर ने पीछे का दरवाजा खोलते हुए मुझे उतरने का संकेत दिया। मैं बैग सहित उतर गया। उसने कहा, 'आप जाओ।' मैंने आज्ञा-पालन किया। एक घर के पिछवाड़े होता हुआ वह मुझे किसी बेसमेंट के मुहाने पर ले आया। मुहाना खुला था। सुरिंदर मेरी ओर मुखातिब होकर बोला, 'अच्छा है, आपको अकेले नहीं रहना होगा। मेरा दोस्त भी यहीं है।''

मैं बोला कुछ नहीं, बस खीसें निपोरने की-सी अदा की।

हम मुहाने में घुस गये। नीचे तक लकड़ी की सीढ़ी थी। उससे उतरते हुए मैंने देखा एक युवक और युवती वहां पहले से मौजूद हैं।

सुरिंदर ने परिचय कराया, 'यह मेरा दोस्त विजय है।'

युवती ने अपना परिचय आप ही दिया, 'आई ऐम पेट्रेशिया।'

सुरिंदर और विजय के बीच पंजाबी में कुछ बातचीत हुई। आशय मेरी समझ में आ गया—यह यहीं रहेगा, देखते रहना। इशारा मेरी तरफ था। यह कहकर सुरिंदर चला गया। मेरा पासपोर्ट लेने की बात भी वह भूल गया या शायद अब उसे उसकी जरूरत नहीं लगी।

उसके जाने के बाद विजय मेरी ओर मुखातिब हुआ, 'तुसी आराम से बैठो जी।'

कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रही। बीच-बीच में युवती भी उसमें शरीक होती रही। फिर विजय ने उससे कहा, 'पेट्रेशिया, सी इफ वी कैन प्रोवाइड हिम सम फूड।'

मैंने कुछ संकोच और थोड़े डर से कहा, 'नहीं, खाना रहने दें।' लगा, कुछ मिला हुआ न हो।

'हैव समथिंग। यू लुक हंग्री।' पेट्रेशिया ने कहा और भीतर चली गयी।

पहली बार मैंने उस युवती को ध्यान से देखा। मोटी नहीं, थुलथुली ही कहेंगे उसे। सफेद गोराई, मध्यम कद। अंगुलियों के बीच सुलगती हुई सिगरेट। विजय के अनुसार वह कनाडा की रहने वाली थी। किसी पाकिस्तानी युवक के साथ वर्षों रही, अब उसने इसे छोड़ दिया है।

पेट्रेशिया लौटी तो उसके हाथ में प्लेट थी और उसमें परांठे।

वह बोली, 'ट्राई इट, आई हैव कुक्ड देम माईसेल्फ।'

भूख के आगे संशय और डर की एक न चली। मैं झटपट खाने लग पड़ा। आलू के परांठे थे, अचार के साथ। बने भी स्वादिष्ट थे।

'तो अचार मिल जाता है यहां?' मैंने पूछा।

'पापड़, अचार...' यह पूछिए क्या नहीं मिल जाता है यहां।'

पेट से निश्चिंत हुआ तो संशय भी कुछ कम हो चला था। मैंने पूरे कमरे को ध्यान से देखा। बेसमेंट में दो कमरों का घर। किचेन, लैटरिन-बाथरूम अलग। कार्पेटयुक्त फर्श, सेंट्रली हीटेड। फ्रिज, फोन, टी.वी. एवं वी.सी.आर.। विश्वास नहीं हुआ यह किसी टैक्सी ड्राइवर का घर है।

यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि सुरिंदर और विजय यहां गैरकानूनी ढंग से रह रहे हैं। उनके पास न पासपोर्ट है और न वीजा। वे अमेरिकी नागरिक भी नहीं। और वे यहां इस तरह अकेले नहीं हैं। ऐसे अधिसंख्य लोग हैं यहां—भारतीय भी, दूसरे मूल के भी। मैक्सिको या कनाडा के रास्ते ये यहां घुस आये हैं। कोई टैक्सी चलाता है, कोई रेस्तरां में काम करता है, तो कोई दुकान में। धीरे-धीरे अपने लिए सुविधाएं भी इन्होंने जुटा ली हैं। पर अमेरिका से बाहर निकलने के रास्ते इनके लिए बंद हैं।

लेकिन यह जानकर मेरी उद्विग्नता और बढ़ गयी।

क्यों मांग रहा था सुरिंदर मेरा पासपोर्ट। क्या करता वह उसका?

कहीं जो मैं उसे पासपोर्ट दे ही देता? अब भी ये मार-पीटकर मेरा पासपोर्ट मुझसे छीन लें तो?

इसके बाद भी थोड़ी देर तक हम यहां-वहां की बातचीत करते रहे। लेकिन अब थकान मेरे चेहरे पर बोल रही थी।

विजय ने भांपकर कहा, 'क्यों नहीं आप सो जाते। हमारे कुछ और दोस्त अभी आने वाले हैं। यहां आपको डिस्टर्बेन्स होगी। आप चाहें तो मैं आपको अपने घर ले चलता हूं, पास ही है।'

कुछ तो इसलिए कि अब और अधिक चलने की हिम्मत नहीं थी मुझमें और कुछ इस डर से कि जाने अब कहां लेता जाय, मैंने इस प्रस्ताव को टालना चाहा।

उसने पेट्रेशिया की ओर आंख मारते हुए मुझसे कहा, 'आप भी इंटरेस्टेड हो तो...'

अब तो मैं परेशानी में पड़ गया। फिर मैंने अपना मन बना लिया—जो हो, सो हो। मैंने विजय से कहा, 'सोचता हूं मेरा आपके घर ही चल चलना ठीक होगा, कुछ नींद तो ले सकूंगा।'

हम चलने को हुए, तभी उसके दो अन्य मित्र भी आ गये। उसने मेरा उनसे परिचय कराया और फिर उन्हें वहीं बैठने को कहकर मुझे ले चल पड़ा।

बस तीन-चार मकान छोड़कर ही विजय का घर था। छोटा-सा बेडरूम और हॉलनुमा कमरा। लैटरिन-बाथरूम साथ। सुबह आने की बात कहकर विजय चला गया। बच रहा है... अकेला।

और अब यहां आकर मेरी नींद गायब है। रात करवटों में गुजरी। सुबह की रोशनी के साथ ही मैं बिस्तर से उठ गया। नहा-धोकर भी बैठ गया। अब विजय के इंतजार के सिवा मेरे पास कोई काम नहीं था। जाने यह नया दिन मेरे लिए क्या छिपाए, बैठा है—यह बात मन में बार-बार घुमड़ने लगी।

बहुत इंतजार नहीं करना पड़ा मुझे। लगभग आठ बजे दरवाजे पर खड़खड़ाहट हुई। चाभी लगाने और घुमाने की आवाज सुनाई पड़ी। तो क्या मैं भीतर बंद रहा था रात भर? यह सोचकर माथा भीग गया। मैंने मन-ही-मन हनुमान गोसाई का नाम लिया।

दरवाजा खुला और सामने विजय था।

'कहिये, नींद आयी?' उसने पूछा।

मैंने गर्दन 'हां' में हिला दी। फिर उससे पूछो, 'कैसी गुजरी आपकी रात?'

वह मुस्कराया। बोला, 'यार, चालू माल है। कितना ही भगाओ, हमें छोड़ती ही नहीं।'

फिर वह नहाने-धोने चला गया। निबटकर आया तो बोला, 'आज मैं आपको बढ़िया नाश्ता खिलाता हूं।'

मैंने कहा, 'तकलीफ करने की जरूरत नहीं। मैं अभी ही निकल जाता हूं। भारतीय विद्या भवन में लोग भी मिल जायेंगे।'

'तकलीफ क्यों, मेरा तो काम ही यही है।' उसने याद दिलाया।

दरअसल, वह यहां किसी होटल में काम करता है। शुरुआत उसने डिशवाशर के रूप में की थी, फिर बैरा बना। साथ-साथ वह खाना बनाना भी सीखता रहा। अब स्पेशलिस्ट कुक था।

हमने मेक्सिकन नाश्ता किया। इसके बाद हम सुरिंदर के घर गये। सुबह-सुबह ही घर लौटा था और अभी सो रहा था। पेट्रेशिया व अन्य भी जा चुके थे। मैंने एक बार फिर भारतीय विद्या भवन का फोन नंबर मिलाया। ...वही रिकार्डेड मेसेज। मैंने रिकॉर्ड करा दिया—'अब सीधे कार्यक्रम स्थल पर ही पहुचूंगा।'

मैं निश्चित था। सुरिंदर आदि के साथ ही वहां पहुंच जाऊंगा।

फोन रखने के बाद मैंने अनुमान लगाया, अब तक सोम जी व अवस्थी जी न्यूयॉर्क पहुंच गये होंगे। वे डेट्रायट से यहां पहुंचने वाले थे। उनका अपना पूर्व-निर्धारित था, अतः उन्हें परेशानी नहीं थी। मेरा कार्यक्रम अलग से था और अनिर्धारित था इसलिए संकट आ खड़ा हुआ।

मैंने जब समझ लिया कि सुरिंदर और विजय का पल्ला पकड़े रहने के सिवा मेरे पास कोई दूसरा चारा नहीं तो निश्चिंत हो रहा।

अब तक उनके प्रति संशय का भाव भी जाता रहा था।

विजय से बातचीत करते हुए मैंने महसूस किया कि उसमें अपने परिवार से बिछुड़ने और उनसे कभी न मिल सकने के एहसास की कसक है। यहां एक छोटी-सी नौकरी करते हुए भी उसने वे तमाम सुविधाएं जुटा ली थीं, जिसके बारे में भारत का एक उच्च मध्यमवर्गीय परिवार सोच सकता है। लेकिन उनसे उसकी तड़प बढ़ी ही थी।

विजय या सुरिंदर जैसे न जाने कितने लोग यहां स्वर्णिम भविष्य की आशा-आकांक्षाओं के साथ आये होंगे और अब यहां आकर

वे कितने मजबूर हैं। उनके साथ हर्ष और विषाद के क्षण तो हैं पर उल्लास चुक गया है। भारतीय कार्यक्रमों में शरीक होकर अथवा मेरे समान भूले-भटके भारतीयों की सहायता कर वे खुद को अपने 'इंडिया' से जोड़ने की कोशिश करते हैं। प्रवासी भारतीय के बीच भी सम्मानपूर्ण स्थान नहीं है उनका। ऐसे में वे ही एक-दूसरे के मां-बाप, भाई-बहन, इष्ट-मित्र—हर कुछ हैं।

मुझसे बातचीत करते हुए विजय जाने किस लोक का हो गया। इस बीच सुरिंदर भी जाग गया। मैंने उसे अपना निर्णय बताया। तय हुआ कि खाना खाकर ही हम कार्यक्रम के लिए निकलें। खाना विजय ने ही बनाया। इस बार विशुद्ध भारतीय भोजन—चावल व राजमा। पाकशास्त्र में सचमुच वह निपुण था। इस बीच उनके कुछ और मित्र भी आ गये। उन सबको भी कार्यक्रम में चलना था। कार्यक्रम का टिकट उनके पास ही था। कल से ही मैं यह टिकट देखने को उत्सुक था। उन्होंने टिकट दिखाया तो मानो मेरे सिर पर गाज गिरी।

टिकट कवि-सम्मेलन का न होकर भरत नाट्यम के किसी कार्यक्रम का था।

मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा हो सकता है। इस शहर में एक ही दिन दो-दो भारतीय कार्यक्रम हो सकते हैं, यह मेरी कल्पना से परे था।

'अब क्या किया जाय?' यह मेरी पहली समस्या थी। भारतीय विद्या भवन में फोन करना, यहां तक कि वहां तक जाना भी पुनः व्यर्थ रहा।

सुरिंदर, विजय आदि भी मेरी चिंता से चिंतित थे। मैंने उनसे कहा भी कि मुझे छोड़कर आप कार्यक्रम में चले जाइये पर वे मुझे ऐसे में छोड़ने को तैयार न थे। विजय ने पूछा, 'आपको याद है कहां होने वाला है वह कार्यक्रम?'

पर मुझे मालूम न था। दरअसल, उसका निमंत्रण-पत्र सोम जी ने मुझसे राचेस्टर में लिया था और वह उनके साथ ही रह गया था।

हम सुरिंदर की टैक्सी में ही निकले थे। मैं अपना पूरा सामान साथ ले आया था। कई बार मैंने कहीं बीच में ही उतरने की मंशा प्रकट की पर वे माने नहीं। वे मुझे लेकर तीन-चार भारतीय दुकानों में भी गये पर वहां भी कवि-सम्मेलन कार्यक्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं मिल सकी।

मैं अब तक हार मान चुका था। मैंने उनसे कहा, 'इस तरह घूमने से कोई लाभ नहीं। आपको भी अपने कार्यक्रम में पहुंचने में देर हो रही है। मुझे यहीं कहीं उतार दें। मैं वापस बाल्टीमोर चला जाऊंगा।'

उन्होंने मेरी बात मान ली, पर मुझे वहां नहीं छोड़ा। बस स्टैंड तक मुझे पहुंचाया। बाल्टीमोर की बस पर मुझे चढ़ाया, तब गये। मैं बाल्टीमोर न जाकर बीच में फिलेडेल्फिया में ही उतर गया। वहां से मैंने अमेरिका में हिंदी कवि-सम्मेलनों के संयोजक डॉक्टर रवि प्रकाश सिंह को फोन किया।

उन्होंने पूछा, 'न्यूयॉर्क में आप कहां गायब हो गये थे? कार्यक्रम के बीच कई बार आपके नाम की घोषणा भी की गयी।'

मैं उन्हें क्या बताता...

✠✠✠

अमेरिका में हिंदी-उर्दू मुशायरा

नियाग्रा प्रपात

जिया लाल आर्य

ऐसा माना गया है कि हिमयुग के अवसान होने के पश्चात जब विशाल हिमखंड पिघलने लगे, विशालकाय झीलों का निर्माण हुआ तो इन झीलों के जल समूह ने अटलांटिक महासागर में जाने के लिए नियाग्रा का रास्ता चुना। नियाग्रा नदी का जन्म हो गया। नियाग्रा नदी बहुत लंबा रास्ता तय करके अमेरिका के न्यूयार्क राज्य और कनाडा के टोरंटो एवं हैमिन्टन के मध्य ओन्टारियो झील में जल प्रपात बनाती है।

सम्पर्क: आर्य निवास 23, आई.ए.एस. कॉलोनी, किदवईपुरी, पटना-800001

वाशिंगटन डी.सी. से आते समय यह निर्णय ले लिया था कि इक्कीस जुलाई को सुबह नियाग्रा प्रपात देखने जाना है या यों कहें कि नियाग्रा प्रपात के आकर्षण ने मुझे वाशिंगटन छोड़कर आने के लिए विवश किया था। भूगोल का विद्यार्थी होने के नाते मुझे ज्ञात था कि विश्व के प्रसिद्ध जल प्रपातों से नियाग्रा प्रपात भिन्न है। नियाग्रा प्रपात के सौंदर्य, भव्य आकर्षण और जलप्रपात क्रीड़ा को पढ़ता आया था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जीवन में चचई प्रपात देखा था। आई.ए.एस. की ट्रेनिंग के दौरान मसूरी में कैम्पटी प्रपात देखने गया था। आज अवसर था प्रकृति के अतीव खूबसूरत करिश्मे का आनंद लेने का।

प्रतुल की अपनी कार थी परंतु अमेरिका में चार सीट की कार में पांच व्यक्ति यात्रा नहीं कर सकते। प्रतुल की कार चार सीट वाली थी। अत: 21 जुलाई की सुबह ही प्रतीक स्टेशन से पांच सीट वाली कार किराये पर लेने चला गया। अमेरिका में किराये पर कार बिना चालक के मिलती है। हम पांच लोग कार में करीब 7.30 बजे सुबह नियाग्रा के लिए प्रस्थान किये। प्रतुल चालक की सीट पर था, उसका मित्र सनथ आगे की सीट पर, मैं, उषाजी और सुखदा ही पीछे की सीट पर। यहां पर सभी कारों में जी. पी.एस. की सुविधा रहती है जिससे यात्रा में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रतुल ने ड्राविंग डायरेक्शन मैप निकाल लिया था। इसी तरह वापसी का भी ड्राविंग डायरेक्शन मैप निकालकर रख लिया था। इसे मैपक्वेस्ट भी कहा जाता है। इसमें जहां से यात्रा प्रारंभ करेंगे और जहां पर यात्रा का अंत होगा, का किन-किन जगहों से गुजरना है, कितनी दूरी (मील में) पर मुड़ना है और कितनी दूरी तय करनी है, का पूर्ण विवरण रहता है। प्लाईमाउथ से नियाग्रा फाल्स की दूरी 399.60 मील थी और इस दूरी को तय करने में छ: घंटा 26 मिनट लगने थे। इसी मैप के सहारे हमलोग 7.30 बजे सुबह निकले। ग्रामीण क्षेत्र में पहुंचते ही सड़क के किनारे खेतों में करांकुल सारस के कई जोड़े दिखाई दिये। दुबले-पतले शरीरधारी, लंबी चोंच और लाल-पीले रंग वाले थे ये सारस। उषाजी ने कहा, 'अच्छा सगुन है समय अच्छा रहेगा।'

प्लाईमाउथ से चलकर नियाग्रा तक पहुंचने में ऐलनटाउन, वाल्डविन्स बिल्प, बफैलो आदि प्रमुख नगर मिले। नियाग्रा करीब

2 बजे दिन में पहुंचे। पूरी यात्रा सुखद और यादगारों से भरी रही। डॉ. उषा किरण जी और डॉ सुखदा पांडेय शिक्षण संस्थाओं और विद्यार्थियों से जुड़े अपने अनुभव सुनाती थीं। प्रतुल कार चलाने में व्यस्त था। उनकी थकान को कम करने के लिए कोकाकोला की टिन खोलकर देता था। रास्ते में जब कभी भूख या प्यास का अहसास होता, तो उषा जी मठरी, जो सीता ने दिये थे और बिस्कुट निकालकर देतीं। कोल्ड ड्रिंक और खाने के सामानों का बैग उन्हीं के पास रहता था। प्रतुल के साथ आगे की सीट पर सनथ कभी-कभी कुछ सुना दिया करता। मैंने पूछा, 'सनथ तुम गाड़ी नहीं चलाते?' उसने कहा, 'चलाता तो हूं, परंतु अमेरिका में...।' उसकी बात पूरी होने के पूर्व ही प्रतुल ने कहा, 'अंकल जी सनथ बहुत अच्छा कार चालक है, परंतु इसके पास कार चलाने की अनुज्ञप्ति नहीं है, इसलिए वह कार नहीं चलाएगा। रात में लौटते समय जब ट्राफिक कम होगी, पुलिस की जांच नहीं रहेगी तो यह मेरी मदद करेगा।' बातचीत का सिलसिला चलता रहा। वफैलो का बोर्ड दिखा। मैंने जिज्ञासा की तो सनथ ने बताया, 'वफैलो न्यूयार्क का महत्वपूर्ण शहर है। यहां पर एक विश्वविद्यालय और अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है। विदेशों से आने वाले शैलानी या हनीमून मनानेवाले लोग सीधे यहां पर जहाज से उतर कर नियाग्रा देखने जाते हैं।

सनथ की बात को काटकर डॉ. सुखदा पांडेय ने चुटकी ली। तुम कब हनीमून मनाने वाले हो। सनथ शर्माकर चुप हो गया। डॉ. उषा ने कहा, 'बेटा तुम बोलते रहो। इसमें शर्माने की क्या बात है।'

ऐसे ही हंसी मजाक, बातचीत करते हमलोग नियाग्रा पहुंच गये। प्रतुल ने कार पार्क में गाड़ी खड़ी की। कार पार्किंग के लिए दस डॉलर देना पड़ा। नियाग्रा नदी के ऊँचे और विशाल पुल को पार करने में अव्यक्तनीय आनंद का अनुभव हुआ क्योंकि कल-कल करती नदी धारा हृदयस्पर्शी संगीत परोस रही थी, जो मन-प्राण को आह्लादित करती थी। कार पार्क करके रेस्तरां की तलाश में हमलोग पैदल चल पड़े। भूख तो सब को लगी थी। शीघ्र ही एक भारतीय रेस्तरां मिल गया। यह जगह प्रतुल के लिए नई नहीं थी। आठ डॉलर प्रति थाली के हिसाब से प्रतुल और सनथ खाने की थाली सबके लिए लाये। हम तीनों बैठकर आस-पास का दृश्य देखने में लगे थे। टेबुल पर खाना आ गया। खाने का बिल प्रतुल ने दिया। खाना अच्छा था। भूख मिटी। मन भर गया और नियाग्रा देखने के लिए पर्याप्त ऊर्जा मिल गई थी।

नियाग्रा के विभिन्न दर्शनीय स्थलों को देखने के लिए समेकित रूप से 28 डॉलर प्रति व्यक्ति के हिसाब से प्रतुल ने पांच टिकट लिये। पैसा देने की पहल की तो प्रतुल ने पैसा लेने से इंकार करते हुए आत्मीयता भरे शब्दों में भाव व्यक्त किये, 'अपने घर वालों से क्या पैसा लिया जाता है। बेटा कमाता है परिवार की सेवा के लिए।' उनकी बातों से मन आनंदित हुआ।

नियाग्रा काफी विस्तार में फैला हुआ है। दर्शनीय स्थलों पर आने-जाने के लिए 'नियाग्रा सीनिक ट्राली' की व्यवस्था है। नीचे पायदानवाली बसें हैं। टिकट लेकर आवश्यकतानुसार आ-जा सकते हैं। इसमें सैलानियों को काफी सुविधा होती है। इतने बड़े क्षेत्र में पैदल चलकर दृश्यों को देखना संभव नहीं है। इसके अलावा प्रीमियम टूर, रायल कनेडियन टूर, कनेडियन और अमेरिकन टूर जैसी अनेकों एजेंसियां हैं, जो दिन भर का आयोजित टूर कराते हैं। हमलोग को इसकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि प्रतुल और सनथ हमलोगों के लिए गाइड का काम कर रहे थे। जल जीवशाला या मछली घर देखने के लिए टिकट लिए। एक भवन के अंदर में दीवाल से सटे चारों ओर तरह-तरह की रंग-बिरंगी मछलियों को रखा गया है। ऐसे मछलीघर भारत के अनेक बड़े नगरों में देखे जा सकते हैं। अब तो लोग छोटा मछलीघर अपने ड्राईंगरूम में भी रखने लगे हैं। इस मछलीघर की विशेषता थी व्हेल मछलियों का करतब। एक लड़की जेन नाम की मछली को जैसे निर्देश देती थी वह वैसा ही करतब दिखाती थी। कभी पानी में कभी पानी के बाहर।

वहां से नियाग्रा सीनिक ट्राली से नियाग्रा गेज डिस्कवरी देखने गये। यहां पर टी.वी. के माध्यम से जमीन के नीचे 300 फुट की गहराई तक की चट्टानों की बनावट एवं विशेषताओं को दिखाया गया। वहां से एडवेंचर थियेटर गये। हमलोगों को एक मशीन पर खड़ा किया गया। अंधकार फैल गया। लगा कि हमलोग पृथ्वी के अंदर जा रहे हैं। सामने चट्टानों और उनकी बनावट साफ-साफ दिखाई दे रही थी। फिर लगा कि हमलोग धीरे-धीरे ऊपर आ रहे हैं। वास्तव में हमलोग न नीचे गये न ऊपर आए। यह सब मशीन का कमाल था।

नियाग्रा प्रपात के सामने सैलानियों के लिए बड़ा सा मैदान है जहां पर बैठने की सुविधा है। किनारे पर रेलिंग लगी है। हमलोग वहां पर टहलते रहे, प्रकृति के सौंदर्य का दर्शन करते रहे। वहां से हमलोग 'मेड ऑफ द मिस्ट' देखने के लिए लिफ्ट से नीचे ओन्टारियो झील के पानी की सतह तक गये। वहां पर प्लेटफार्म था। मोटर बोट में चढ़ाने के पूर्व पॉलीथीन की नीली बरसाती

और जूते दिये गये। उन्हें पहनकर मोटरबोट पर खड़े हुए। अमेरिकन प्रपात तक गए। प्रपात की फुहारों से हमलोग भींग से गये। लगा कि आकाश में धुंधलापन छा गया। कैमरा पोलीथीन में छिपा रखा था। मौका मिलने पर फोटो खींचा। यहां आने पर ज्ञात हुआ कि बरसाती क्यों दी गई थी। आगे 'आक्सब्रो फाल्स' जो कनाडा में पड़ता है, के निकट तक मोटरवोट गई। प्रपात का दृश्य तन-मन-आत्मा को तृप्त कर रहा था। इच्छा होती कि इन्हें देखते रहें। ओन्टारियो झील से प्रपात को देखने से लगता कि आकाश जलधुंध से भर गया है। इसीलिए शायद इसको 'मेड इन मिस्ट' कहा जाता है। लौटते समय नियाग्रा प्रपात के बारे में जिज्ञासा बलवती हो जाती है। वहां के गाइड और स्थानीय लोगों से बातें कीं। कुछ पम्फलेट भी मिले, जिनसे नियाग्रा नदी और जलप्रपात के बारे में जिज्ञासा की तृप्ति हुई।

ऐसा माना गया है कि हिमयुग के अवसान होने के पश्चात जब विशाल हिमखंड पिघलने लगे, विशालकाय झीलों का निर्माण हुआ तो इन झीलों के जल समूह ने अटलांटिक महासागर में जाने के लिए नियाग्रा का रास्ता चुना। नियाग्रा नदी का जन्म हो गया। नियाग्रा नदी बहुत लंबा रास्ता तय करके अमेरिका के न्यूयार्क राज्य और कनाडा के टोरंटों एवं हैमिन्टन के मध्य ओन्टारियो झील में जल प्रपात बनाती है। अमेरिका में 180 फीट नीचे झील में गिरता है जबकि कनाडा का प्रपात जिसे उसकी शक्ल-सूरत के कारण घोड़े का खुर या नाल कहा जाता है, 173 फीट नीचे ओन्टारियो झील में गिरता है। दोनों प्रपातों के मध्य गोट द्वीप है जहां पर हमलोगों ने कुछ घंटे आनंद के बिताए। नियाग्रा प्रपात की कुल चौड़ाई 740 फीट है। 'मेड ऑफ द मिस्ट' देखने गये थे तो जल प्रपात का पूरा दृश्य सामने था। हमलोग अमेरिका और कनाडा दो देशों की सीमा पर थे। अमेरिका और कनाडा को जोड़ने के लिए ओन्टारियो झील पर पुल बना दिया गया है। इस पुल के निर्माण के पूर्व दोनों पक्षों का सम्पर्क साधन बड़ी-बड़ी मोटर बोट होती थी। यह व्यवस्था आज भी है परंतु सैलानियों के लिए ही।

न्यूयार्क के वफैलो से नियाग्रा की दूरी मात्र 27 कि.मी. है और कनाडा के ओन्टारियो से 110 कि.मी. है। नियाग्रा प्रपात के दोनों ओर अमेरिका और कनाडा के जलप्रपात हार्सशू या 'घोड़े का खुर' को निकट से देखने को मिला। कनाडा से इसका नजारा कैसा लगता होगा, इसका अनुभव नहीं कर सके। गोट द्वीप के दोनों ओर जल प्रपात हैं, क्योंकि नियाग्रा नदी गोट द्वीप में दो भागों में बंट जाती है।

यदि हम अमेरिका की ओर से कनाडा के हार्सशू की ओर बढ़ें तो पहले नियाग्रा प्रपात का अमेरिका प्रपात मिलेगा, इसके बाद लूना द्वीप फिर ब्राइडल द्वीप प्रपात अपना सौंदर्य लुटाता दिखेगा। उसके बाद गोट द्वीप और फिर कनाडा का आकर्षक हार्स शू मिलता है। ब्राइटल वील को हिंदी में अनुवाद करें तो 'दुल्हन का घूंघट' कहेंगे। यहां पर चट्टान में एक कंदरा बन गई है जिससे प्रपात का पानी चट्टान से बाहर गिरता है और प्रपात और चट्टान के बीच आ सकते हैं। वहां से यह घूंघट-सा दिखता है।

ब्राइडल द्वीप प्रपात करीब 100 फीट नीचे गिरता है, और इसकी चौड़ाई 50 फीट है। अद्‌भुत है संपूर्ण नियाग्रा प्रपात।

✠✠✠

इंग्लिश चैनल

सत्यपाल आनंद

मैंने उत्तर में इंग्लैंड और फ्रांस के तटों को धोते हुए उस छोटे से समुद्र का जिक्र किया था जो 24 किलोमीटर चौड़ा है। और जिसे तैरकर पार करने वाले एक नहीं, दर्जनों ऐसे तैराक हैं जो कई-कई बरस के अभ्यास और कई-कई बार की कोशिश के बाद सफल हुए हैं। मैंने एटलस निकालकर उसे पूरा विवरण दिया था और उसे बताया था, 'हाल ही में एक बंगाली युवक ने भी यह कारनामा किया है और शायद एक या एक से अधिक औरतें भी इसे तैरकर पार कर चुकी हैं।'

मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसकी रूह एक साफ तह किए हुए रूमाल की तरह उसकी आंखों से निकली। एक पल के लिए हवाई अड्डे के ट्रांजिट लाउंज के बोझिल वातावरण में लटकी रही। फिर शीशे के भारी दरवाजों को तोड़कर बाहर हवाई पटरी की ओर बढ़ी और उसके बाद उड़ान भरते हुए एयर इंडिया के विमान के पीछे उड़न छू हो गई।

जब उसने मेरी ओर आंखे घुमाईं तो वे बेजान थीं।

काफी देर बाद मैंने कहा-'अजीत सिंह तुम बहुत बदल गए हो।'

'हां भाईसाहब', वह बोला-'बदलाव तो प्रकृति का नियम है। अगर हम बदलें नहीं तो जड़ हो जाएं। हम मिले भी तो 15 वर्ष के बाद हैं। आइए एक-एक बीयर हो जाए।''

हीथरो हवाई अड्डा यूरोप के अतिव्यस्त अड्डों में से एक है। हर तरफ घमाघमी, नाना प्रकार की भाषाओं में बातचीत, चहल-पहल, लेकिन रेलपेले नहीं। ट्रांजिट लाउंज का वातावरण अपनी जगह खुद एक आकर्षण रखता है। गद्देदार कुर्सियों पर लोग बैठे या ऊंघते हुए। कुछ लोग ड्यूटी फ्री दुकानों के चक्कर काटते हुए। कुछ वक्तगुजारी के लिए अनायास टहलते हुए और कुछ मेरी तरह अखबार पढ़ते हुए। मैं वारसा से लंदन तक पोलिश एयरलाइंस की सुबह की फ्लाइट से पहुंचा था और मुझे छः घंटे की प्रतीक्षा के बाद एयर केनाडा की फ्लाइट से टोरंटो जाना था। अभी चार घंटे ही गुजरे थे मगर मुझे कॉफी की तलब महसूस हो रही थी। मैंने अखबार को तह किया और अपनी पढ़ने वाली ऐनक उतारी। उस वक्त मुझे महसूस हुआ कि मुझसे दस कदम दूर खड़ा हुआ एयरपोर्ट सिक्योरिटी की वर्दी पहने एक व्यक्ति मुझे गौर से देख रहा है। रंग और चेहरे के नैन-नक्श से वह भारतीय मूल का मालूम होता था। उसका असाधारण ध्यानाकर्षण मेरे लिए सिर दर्द था। अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के इस जमाने में कोई ऐसा हवाई मुसाफिर होगा जो हवाई सिक्योरिटी के किसी कर्मचारी से उलझने की कोशिश करेगा? मैंने पहलू बदला। थोड़ी-सी घबराहट हुई, लेकिन बेपरवाही दिखाते हुए मैंने अखबार फिर पूरी तरह खोलकर अपने चेहरे के सामने कर लिया। एक मिनट के बाद मुझे अहसास हुआ कि एयरपोर्ट सेक्यूरिटी कर्मचारी मेरे

सम्पर्क: 606, Adams Street Herndon Virginia-20170, U.S.A

सामने आकर खड़ा हो गया और मुझे अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश कर रहा है। मैंने अखबार हटाकर उसकी तरफ देखा।

'जी।' मैंने हड़बड़ाकर कहा, 'आपको पहचाना नहीं मैंने?'

वह आगे बढ़ आया, 'ओए भाजी। आपने अजीत सिंह को नहीं पहचाना? जीतू को? अपने छोटे भाई को? अपने सेवादार को?' अपने हाथों से मेरे घुटने छूते हुए उसने सम्मान प्रकट किया और फिर दोनों हाथों से मुझे उठाते हुए मुझसे लिपट गया।

'मैं जी-मैं। आपका जीतू, आपका छोटा भाई, आपका सेवादार जी।' उसकी आंखों में आंसू आ गए। आपने मुझे नहीं पहचाना जी? आपको तो रोज याद करता हूं। अब पंजाब में मेरा काटेज है। आप मुझे भी भूल गए जी?'

'अजीत सिंह!' मैंने कहा, 'अरे तुम हो मेरे भाई। मैंने तो सोचा, हवाई सेक्यूरिटी अफसर मेरी तलाशी लेने को है।' मैंने फिर उसे गले लगा लिया, 'तुम्हें कैसे भूलूंगा, मेरे प्यारे। क्या मैं पंजाब के सबसे बड़े तैराक और अपने दोस्त को भूल सकता हूं?'

वह मेरे पास बैठ गया, 'जब मैंने देखा आपको, तो मैंने कहा-दुनिया इधर की उधर हो जाए, मैं भूल नहीं सकता। ये मेरे भ्राजी हैं। तब मैंने सोचा देखूं मुझे पहचानते भी हैं कि नहीं।''

मैंने एक भरपूर नजर उसके चेहरे पर डाली। बीस बरस पहले का अजीत सिंह मेरी आंखों के सामने उभर आया। चौड़ा सीना, भरा-भरा चेहरा जिस पर अभी मसें फूटी ही थीं। आंखों में शुरू जवानी की गुलनार मस्ती और उस पर बाजू की फड़कती हुई मछलियां, जो एक तैराक की विशेषता थी। अजीत सिंह उर्फ जीतू, जो सारे देही इलाके का माना हुआ तैराक था। जिसने हर साल देहात की प्रांतीय खेल प्रतियोगिताओं में तालाब की दो-दो सौ बार लंबाइयां तैरकर खिलाड़ियों और प्रबंधकों से अपना लोहा मनवाया था। अजीत, जिस पर गांव की अल्हड़ हसीनाएं मरती थीं, अलजबरा और ज्यामिति में बार-बार फेल हुआ था। मगर तैराकी प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार जीता करता था।

यह वही जीतू था। लेकिन कितना भिन्न। जो व्यक्ति मेरे सामने खड़ा था उसके गाल पिचके हुए थे। सिर के बाल छिदरे होते-होते विलुप्त होने लगे थे। सीना भरा हुआ था। लेकिन सांस दमे के एक रोगी की तरह थी। ज़िंदग़ी की रोशनी की यह लहर थी जो ज्वार-भाटा का दौर पूरा होने पर भी चालू रहती हैं जब उस रोशनी की लहर ने मुझे अपनी गिरफ्त में ले लिया तो मैंने पूछा, 'पंद्रह बरसों में एक बार भी वापस वतन नहीं गए?'

और तब मुझे पलभर के लिए ऐसा महसूस हुआ मैंने उसकी रूह एक साफ तह किए हुए रूमाल की तरह उसकी आंखों से निकाली हो। थोड़ी देर के लिए हवा में लटक रही हो फिर एयर इंडिया के विमान के पीछे उड़ गई हो।

हम दोनों ने एक-एक बीयर पी। फिर जीतू ने कहा, 'भ्राजी, आप थोड़ी देर बैठिए। मैं आधे घंटे की शार्ट लीव (छुट्टी) लेकर आता हूं। फिर इत्मीनान से बैठेंगे।'

जब वह चला गया और मैंने बीयर का एक और गिलास सामने रख लिया तो यादों के रेले में हीथरो हवाई अड्डे का वातावरण बह गया और मैं पंद्रह, बीस बरस पहले की उस दुनिया में पहुंच गया जहां मैं यूनिवर्सिटी प्रोफेसर था और अजीत सिंह एयरपोर्ट सिक्योरिटी कर्मचारी न था। जहां हम दोनों बचपन के यार थे।

अजीत सिंह मुझसे तीन बरस छोटा था। सूबेदार हरदत्त सिंह का लड़का, अल्हड़, अक्खड़, तेज स्वभाव, लेकिन बहुत ही प्यारा, यारों का यार। उसके पिता को इटली के मोर्चे पर अद्वितीय वीरता के लिए विक्टोरिया क्रास मिला था जो बरतानवी साम्राज्य का सबसे बड़ा सैनिक सम्मान था। मशहूर था कि सूबेदार हरदत्त सिंह अपना दायां हाथ दस्ताने में हमेशा इसलिए रखते थे कि जिस हाथ को मैडल सीने पर सजाने के बाद इंग्लैंड के राजा से मिलाने का गौरव प्राप्त हुआ हो, उसे अब किसी अन्य साधारण व्यक्ति से मिलाना अपमानजनक है। अजीत सिंह या उसके निकट दोस्तों को ही इस बात का पता था कि सूबेदार साहब का दायां हाथ कटा हुआ था और उसकी जगह कृत्रिम हाथ था, जिस पर वे हमेशा दस्ताना चढ़ाकर रखते थे। मजे की बात यह थी कि उस कृत्रिम हाथ ही उंगलियां स्वाभाविक हाथ की तरह चलती थी। उनसे वे गिलास पकड़ सकते थे, गांठ खोल सकते थे, सत्तर बरस से ऊपर की उम्र होने के बावजूद अपने बुढ़ापे की औलाद अजीत सिंह की पिटाई कर सकते थे। अजीत सिंह की मां तो उसे पैदा करते ही मर गई थी। एक बूढ़ी फूफी ने उसे पाला था। लेकिन वह भी अजीत सिंह के बचपन में ही मर गई थी।

जीतू पहली बार छठी कक्षा में फेल हुआ। मैं उन दिनों नौवीं कक्षा में था। परिणाम के दिन घर पर उसकी खूब पिटाई हुई, लेकिन एक सप्ताह के बाद जिले की तैराकी प्रतियोगिताओं में प्रथम आने पर उसे मैडल, सर्टिफिकेट और दो सौ रुपए नकद पुरस्कार में मिले, तो हेड मास्टर साहब ने अपना निजी अधिकार प्रदर्शित करते हुए उसे सातवीं कक्षा में बिठा दिया। उसके बाद जब पाठ्यक्रम में खेलों, शारीरिक प्रतियोगिताओं और पी.टी. का

ऐच्छिक विषय सम्मिलित हो गया तो जीतू के दिन भी बदल गए।

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है, जब हम सबने जुलूस की शक्ल में जीतू को फूलों के गजरे पहनाकर बस पर बिठाया था कि वह जिले के हेडक्वार्टर पर जाकर अपनी तैराकी दिखा सके। प्रतियोगिता विभिन्न जिलों के खिलाड़ियों में थी। गांव के तालाब और निकटवर्ती गांवों की झीलों और नहरों में तैरने वाले जीतू ने न सिर्फ हर प्रतियोगिता जीती और कई रिकार्ड तोड़े बल्कि दर्शकों के विशेष आवेदन पर और डिप्टी कमिशनर साहब की एक खास निजी पुरस्कार की घोषणा के बाद स्विमिंग पूल के, 6 घंटे में 180 चक्कर पूरे करके प्रांतीय रिकार्ड भी तोड़ दिया। पत्र-पत्रिकाओं में उसके चित्र छपे तो उनकी कटिंग्स कई महीने तक हेडमास्टर साहब के दफ्तर में दीवारों पर लटकी रही और उसके पिता ने उनको फ्रेम कराकर अपने सैनिक चित्रों के साथ लटकाया।

अब वह दिन मैं कैसे भूलूंगा जब आधी रात के वक्त मेरी बैठक के बाहर गली में खुलने वाले दरवाजे पर दस्तक हुई और मैंने दरवाजा खोला था तो जीतू को खड़े पाया। उसके पीछे सिर से पांव तक चादर ओढ़े हुए एक आकृति थी जो सर्दी से कंपकंपा रही थी।

'जीतू, अंदर आ जाओ। क्या बात है? कौन है तुम्हारे साथ?'

'भ्राजी हरबंस कौर है, चरण सिंह की बहन।' उसने कहा, 'मैं अंदर नहीं आऊंगा। मुझे आपकी मोटर सायकल चाहिए। मुझे इस शहर से जाना है।'

'जीतू अंदर तो आओ।' मैंने उसे बाजू से पकड़कर अंदर खींच लिया। उसके पीछे हरबंस कौर भी झेंपती, लजाती, कंपकंपाती हुई अंदर आ गई।

'बैठ जाओ, हरबंस कौर।' मैंने कहा, 'हां अब बताओ बात क्या है?'

'इसकी शादी कर रहे हैं जी परसों, माना वाले जमींदार जोगेंदर सिंह के साथ। जोगेंदर पचास साल का है और इसके भाई ने पांच हजार रुपए लिये हैं उससे। मैं नहीं होने दूंगा जी यह शादी। गुरू की सौगंध, कभी नहीं होने दूंगा।'

'शहर में कहां ले जा रहे हो इसे?'

'डी.सी. साहब के पास जी। अभी पिछले सप्ताह तो उन्होंने कहा था-जीतू, जब जी चाहे मेरी कोठी आ जाया करो। मैं उनके लड़के को तैरना सिखाता हूं भ्राजी। बड़े अच्छे अफसर हैं। खुद तैराक रहे हैं। मुझे मद्रास प्रतियोगिता के लिए भेज रहे हैं। कहते हैं रूस भी भेजेंगे। उनसे कहूंगा यह कहां का न्याय है कि 18 बरस की लड़की का ब्याह उसकी इच्छा के बिना ही कर दिया जाए? अदालत में इसके साथ शादी करूंगा जी।'

जीतू हरबंस कौर को लेकर डी.सी. साहब के पास नहीं गया क्योंकि उसी वक्त मेरी मां और पिता अंदर से आ गए और उन्होंने चरण सिंह को बुलाकर उसकी बहन को उसके हवाले कर दिया। सूबेदर हरदत्त सिंह भी आ गए और जब समझाने-बुझाने के बाद जीतू भी उनके साथ चुपचाप चला गया तो मैंने सोचा यह जीतू की ज़िंदगी की सबसे बड़ी हार है। अब वह कभी तैराकी प्रतियोगिता नहीं जीत सकेगा, कभी सिर उठाकर गांव की गलियों में नहीं चल सकेगा। उसके बाजुओं की मछलियां रेत की तरह खुश्क होकर अधमरी हो जाएंगी। वह टूट जाएगा।

बाद में मालूम हुआ कि उसने किसी क्लब के स्विमिंग पूल में लाइफ गार्ड की नौकरी कर ली है। छह महीने बाद उसके पिता का देहांत हो गया। जब वह गांव लौटा तो मैं यूनिवर्सिटी में प्रवेश के लिए शहर जा चुका था। लेकिन कुछ दिन बाद वह मेरे होस्टल में मुझसे मिलने गया।

'भ्राजी, एक प्रतियोगिता के लिए यहां आया था। आपसे मिले बगैर कैसे जा सकता था?'

मैंने उसकी ओर देखा। उसके चेहरे पर गंभीरता थी, ठहराव था। ज़िंदगी ने उसे सोचना सिखा दिया था।

'क्या प्रोग्राम है?' मैंने पूछा था।

'भ्राजी', उसने कहा था, 'मैं मद्रास भी गया था। धनुष कोटी के तट से श्रीलंका तक तैरा जा सकता है। कई तैराकों ने यह फासला पार भी किया है। मुझे मद्रास के एक क्लब से आफर भी है। मैं आपके आशीर्वाद से यह दूरी तय कर लूंगा।'

'बहुत अच्छा अजीत!' मैंने कहा था, 'वह दिन भी आएगा जब तुम इंगलिश चैनल पार करोगे।'

'वह कहां है भ्राजी?' उसकी आंखों की चमक और गहरा गई थी।

मैंने उत्तर में इंग्लैंड और फ्रांस को तटों को धोते हुए उस छोटे से समुद्र का जिक्र किया था जो 24 किलोमीटर चौड़ा है। और जिसे तैरकर पार करने वाले एक नहीं, दर्जनों ऐसे तैराक हैं जो कई-कई बरस के अभ्यास और कई-कई बार ही कोशिश के

बाद सफल हुए हैं। मैंने एटलस निकालकर उसे पूरा विवरण दिया था और उसे बताया था, 'हाल ही में एक बंगाली युवक ने भी यह कारनामा किया है और शायद एक या एक से अधिक औरतें भी इसे तैरकर पार कर चुकी हैं।'

'इसके लिए इंग्लैंड जाना पड़ेगा?' उसने पूछा, 'पासपोर्ट बनवाना पड़ेगा?'

'हां, मैंने कहा, 'और वीजा भी लेना पड़ेगा। ज्यादा कठिन काम है।'

22-23 बरस का जीतू, जिसे तैराकी की अब चुनौतियां पसंद थीं, जो औरत के प्यार की बाजी हार चुका था, जब मेरे कमरे से गया तो पूरा विवरण लिखकर ले गया, एक आशा के साथ। कुछे दिन इंग्लैंड जाकर वह यह प्रतियोगिता भी जीतेगा।

यादों के बादल गहराते चले गए। मैंने बीयर और मंगवा ली और फिर अतीत के धुंधलकों में खो गया।

मैं जब गर्मियों की छुट्टियों में एक दो बार गांव गया तो जीतू के समाचार मिले। वह अमुक प्रतियोगिता में प्रथम आया। उसे अमुक पुरस्कार मिला। अमुक अधिकारी या मंत्री ने उसे विदेश भेजने का वादा किया और प्रांतीय हेडक्वार्टर पर आकर मिलने के लिए कहा। अमुक जगह भरी हुई सभा में यह कहा गया कि जीतू दुनिया का सबसे अच्छा तैराक है और अगर उसे बाकायदा ट्रेनिंग मिले तो वह ओलंपिक खेल प्रतियोगिता में स्वर्ण मैडल जीत सकता है। लेकिन हर बार यह भी सुनने को मिलता कि बहुत कोशिशों के बावजूद जीतू की पहुंच सरकार के उन वर्गों तक न हुई जो इन कामों के लिए राशि निश्चित करते हैं या खिलाड़ियों की सूची को अंतिम रूप देते हैं। हर बार उसकी जगह किसी सिफारिशों का नाम डाल दिया जाता और उसकी पीठ थपककर उसकी प्रशंसा के पुल बांधकर अफसर लोग उससे यह कह देते कि अगली बार तुम्हारा नाम अवश्य सूची में ऊपर आएगा।

यूनिवर्सिटी में लेक्चरर बनने के बाद मेरा गांव आना-जाना बिल्कुल ही बंद हो गया। जीवन एक दूसरी डगर पर बहने लगा। डाक्टरेट की डिग्री के लिए अमेरिका गया तो तीन बरस लग गए। उसके बाद भी कांफ्रेंसों और सेमिनारों में सम्मिलित होने के लिए कई बार विदेश जाना पड़ा। अत: जीतू से संबंध तो एक प्रकार अंत की मंजिल तक पहुंच गया।

कई बरसों के बाद गांव में स्कूल के एक टीचर किसी निजी काम से यूनिर्वसिटी में पधारे और मुझसे मिले तो उन्होंने बताया कि जीतू इंग्लैंड पहुंच गया है।

मैं बहुत हैरान हुआ, 'वह कैसे?'

'बहुत निराश हो गया था बेचारा!' वे बोले, 'भारत से श्रीलंका तक का फासला एक बार नहीं दो बार उसने तय किया। उदयपुर, राजस्थान की उदय सागर झील का गोलाई में चार बार चक्कर काटकर एक रिकॉर्ड स्थापित किया। लेकिन उसे बाहर जाने के लिए आर्थिक सहायता किसी ने न दी। मंत्रियों, अधिकारियों और खेल प्रतियोगिता कर्मचारियों के वादे कभी पूरे न हुए। बेचारे को कदम-कदम पर निराशा का सामना करना पड़ा। फिर एक दिन गांव आकर उसने अपना खेत और मकान बेच दिए और जो 30-40 हजार रुपए मिले वे एक ट्रेवल एजेंट को देकर जाली वीजा पर ईरान और वहां से तुर्की पहुंच गया। वहां से पश्चिमी जर्मनी और कई महीने बाद इंग्लैंड। उसने यह सारा सफर कैसे तय किया, मुझे इसका ज्ञान नहीं हो सका। हां, उसके पत्र बराबर मुझे मिलते रहे और मुझे पता होता रहा कि वह कहां है?

मेरे विचार से अब उसे इंग्लैंड में कानूनी तौर पर रहने और काम करने की इजाजत मिली हुई है।

'यह तो बहुत बढ़िया समाचार है।' मैंने कहा, 'उसकी बचपन की यह ख्वाहिश थी कि वह तैरकर इंगलिश चैनल पार करे। अभी अखबार में तो कोई खबर नहीं आई। लेकिन मुझे विश्वास है कि वह जरूर सफल होगा।'

'भ्राजी', जीतू मुझे यादों के गहरे धुंधलके से वापस हीथरो के प्यार के वातावरण में खींच लाया, 'क्षमा करें, मुझे देर हो गई।'

मैंने घड़ी देखी। मेरी फ्लाइट में दो घंटे शेष थे।

'आपकी फ्लाइट गेट नं. 12 पर है। हमारे पास काफी वक्त है। आइए कुछ पेट-पूजा कर लें।'

दोनों ट्रांजिट लाउंज के रेस्तरां में चले गए। वह दुखी था। लेकिन उस दु:ख को महीन चादर के ऊपर भी एक और मोटी पर्त पड़ी हुई थी, जिससे वह बार-बार अपने दिन की कशमकश को छुपा रहा था, 'आपके लिए क्या उपहार लाता भ्राजी?' उसने कहा, 'आप तो इतनी दुनिया घूम चुके हैं। आपके लिए कौन-सी चीज नई है। मेरी तो बस यही दुआ है कि वाहेगुरू आपको सुखी रखे।'

उसकी आंखों में आंसू देखकर मेरी आंखें भी भीग गई, 'जीतू

पंजाब लौट जाओ। यहां की आबो हवा ने तुम्हारे साथ न्याय नहीं किया।' मैंने कहा।

'हा जाऊंगा भ्राजी? वहां मेरा अब कौन है? यहां तो सब ---------- यार, भाईबंद, मेरी भाषा बोलने वाले। एयरपोर्ट पर अक्सर इलाके के लोगों से भी मेलजोल रहता है।'

'तुम्हारे स्वास्थ्य को क्या हुआ जीतू?' मैंने आखिर पूछ ही लिया।

'भ्राजी, स्वास्थ्य तो तुर्की में ही खराब होने लगा था। कई महीने होटल में बर्तन धोए। कारें साफ की। कंस्ट्रक्शन का काम किया। काम का पर्मिट न होने पर जर्मनी में जेल भी काटी। फिर यहां जाली पासपोर्ट पर पहुंचा। अजीत सिंह तो एक साधारण नाम है। इस नाम के पासपोर्ट और वीजा आम मिलते हैं, यहां आकर पहले कपड़ा मिलों में काम किया। कुछ महीने कोयला खदानों में भी काम करना पड़ा। तब निमोनिया हो गया। फिर प्लूरिसी हो गई और एक फेफड़े में पानी भर गया। इलाज से ठीक हो गया। मगर डॉक्टर कहते थे कि मैंने तैर-तैरकर अपने फेफड़ों की बनावट ही खराब कर ली है।' वह हंसा, 'खैर इलाज हो गया। फिर लंदन आ गया। अब आठ बरस से यहां हूं। एयरपोर्ट सिक्यूरिटी में अच्छी नौकरी है। छह-सात सौ पौंड मिल जाते हैं।'

उसकी आंखों में पलभर के लिए प्रकाश-सा लहरा गया। लेकिन वह चुप रहा।

'और इंग्लिश चैनल को पार करने का प्रण?' मैंने पूछा।

वह हंसा। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, 'इंग्लिंश चैनल तो मैंने पार कर ली भ्राजी।' उसने कहा, 'पूरी तरह पार कर ली। वह देखिए। उसने दाईं ओर इशारा किया। कुछ दूरी पर एक गोरी मेम मुस्कुराती हुई हमारी तरफ आ रही थी। 'आपको मिलवाने के लिए इसे काम से बुलवाया। खासतौर पर कहा कि आ जाए और अपने जेठ भाई से मिल ले।'

इससे पहले कि मैं हैरत में डूबा हुआ उससे कुछ पूछ सकता, पास आने वाली गोरी औरत को उसने दोनों हाथ पकड़कर मेरे सामने कर दिया, 'यह मैगी है जी, मारग्रेट सिंह, मेरी पत्नी। मेरी पत्नी। मेरे बेटे की मां। यही मेरा भाई, मेरा दोस्त है भ्राजी।' उसने परचिय दिया, 'हमारी शादी, भ्राजी आठ बरस पहले हुई थी। मैगी हस्पताल में नर्स है। इसने मेरी बीमारी के दिनों में मेरी सेवा की थी।' उसने प्यार से मैगी की ओर देखा।

'मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।' मैंने कहा, 'मेरी दुआ है कि आप दोनों खुश रहें।'

गेट नं. 12 की ओर बढ़ते हुए जीतू ने कहा, 'भ्राजी, अब आपको विश्वास हो गया होगा कि मैंने इंग्लिंश चैनल पार कर लिया है।'

'हां, मैंने कहा, 'गांव के तालाब से इंग्लिंश चैनल तक का फासला तुमने अच्छी तरह पार कर लिया है जीतू।' यह कहते हुए मैंने उसे गले लगा लिया।

✠✠✠

अमेरिका में हवन आयोजन

कॉस्मिक की कस्टडी

सुधा ओम ढींगरा

मैं दो डिपार्टमेंट स्टोरों पर काम करती थी। एक से गुजारा नहीं होता था। ग्रेग पढ़ रहा था। सर! मैं सिर्फ हाई स्कूल पास हूँ। पति की जब अकस्मात् मृत्यु हुई तो मैं बौखला गई। पढ़ी-लिखी होती तो मुझे इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती, जितनी मैंने की। मैं ग्रेग को खूब पढ़ाना चाहती थी, इसलिए मैंने ग्रेग को बाहर काम नहीं करने दिया। ग्रेग का जन्म मेरी बढ़ती उम्र में हुआ था, अब मैं रिटायर्ड हूँ। अकेली भी हो गई हूँ। ग्रेग शार्लेट शहर में रहता है और मैं रॉली शहर में रहती हूँ। बूढ़ी हो रही हूँ। मुझे कॉस्मिक का साथ चाहिए।

सम्पर्क: 101 Guymon Court, Morrisville, NC-27560, U.S.A
ईमेल: sudhadrishti@gmail.com

इस केस ने मुझे चौंका दिया; जब मिसेज रॉबर्ट ने बोलना शुरू किया-'सर कॉस्मिक एक दिन का था; जब मेरी गोद में आया था। मैंने कॉस्मिक को पाला है। उम्र के इस दौर में मैं उसे अपने पास रखना चाहती हूँ। मेरा बेटा ग्रेग इसके लिए मान नहीं रहा।'

'यह सच है कि मैंने एक दिन के कॉस्मिक को मॉम की गोद में डाला था। कॉस्मिक एक दिन का था, जब इसकी माँ की डेथ हो गई। उस समय कॉस्मिक को माँ के प्यार और देख-भाल की जरूरत थी। इसका मलतब यह तो नहीं हुआ कि कॉस्मिक मॉम का हो गया। सर कॉस्मिक मेरा है, मेरा ही रहेगा। मॉम का इस पर कोई अधिकार नहीं।' ग्रेग ने सिर झटकते हुए बड़े गुस्से से कहा।

मिसेज रॉबर्ट ने ग्रेग की ओर देखा और उनकी आँखों में पानी की लकीर खिंच गई। मिसेज रॉबर्ट का चेहरा बेहद उदास हो गया। इस केस की ज्यों-ज्यों परतें खुलती गईं, मैं हैरान होता गया। कई बार सोचता हूँ कि कुदरत को मुझे क्या-क्या दिखलाना है और किन-किन अनुभवों से गुजारना है, जो मैं इस पेशे में आया। हालाँकि यह पेशा मैंने चुना है, किसी ने मुझ पर थोपा नहीं। सच्चाई तो यह है कि इसी पेशे को अपनाने के लिए मैं बहुत कुछ पीछे छोड़ आया। खुली आँखों ने एक सपना देख लिया था और उस सपने ने अपने पर फैला लिए, बस उस सपने के साथ मैं भी उड़ जाना चाहता था। मैं उड़ ही आया....दूर दराज। इतनी दूर निकल आया कि अपने, बहुत अपने भी पीछे छूट गए। कई बार पीछे छूट गए अपनों के प्रति मन कचोटता है और अपने में उलझ कर रह जाता हूँ। दिल और दिमाग में ऐसा द्वंद्व छिड़ता है कि उसे शांत करना मुश्किल हो जाता है। अक्सर यह द्वंद्व मेरे काम पर भी हावी हो जाता है। केस के आरंभ में ही मुझे पता चल जाता है कि कुछ टूटेगा या छूटेगा। बस बेचैन हो जाता हूँ। इस केस में भी कुछ टूटेगा, महसूस कर व्याकुल हो गया हूँ।

मिसेज रॉबर्ट और ग्रेग अपना-अपना पक्ष बता रहे हैं.... 'सर्दियों के दिन थे, मैं भूल नहीं सकती 10 दिसम्बर का वह दिन, जब कॉस्मिक को ग्रेग ने मेरी गोद में डाला था। वह ठंड से काँप रहा था। मैंने उसे कम्बल में लपेटा था। वह भूखा था। स्टोर से जाकर मैं उसके लिए दूध की बोतल और पॉटी ट्रेनिंग के लिए सामान लेकर आई थी।'

'मॉम, आप ही वह सब ला सकती थीं, मुझे तब इस सबकी

नॉलेज नहीं थी।'

'मैं गोद में लेकर उसे दूध पिलाती। मैंने उसकी पोटियाँ साफ कीं। रात को साथ सुलाया। वह आधी रात को मेरी छाती के साथ लग जाता था। माँ को मिस कर रहा था। मैंने दो-दो नौकरियाँ करके ग्रेग का भी ध्यान रखा ताकि यह अपनी मंजिल पर पहुँच जाए और कॉस्मिक को भी पाला।' मिसेज रॉबर्ट अतीत में डूबी अपनी धुन में बोल रही हैं।

ग्रेग शांत हो गया लगता है चुपचाप सिर झुकाए बैठा सुन रहा है।

यह सब एक कॉन्फ्रेंस रूम में हो रहा है। जिसके बीचोंबीच एक बड़ी अंडाकार टेबल पड़ी है और उस टेबल के इर्द-गिर्द कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं। मैं उसी टेबल के एक तरफ बैठा हूँ और सामने पड़ी दो कुर्सियों पर मिसेज रॉबर्ट और ग्रेग बैठे हैं। कमरे के एक कोने में कॉफी, चाय, पानी, ठंडा और गर्म नाश्ता पड़ा है। कई तरह के ठंडे पेय पदार्थ भी हैं।

मैंने उस टेबल की ओर इशारा करके कहा-'कुछ लेंगे?'

दोनों ने सिर हिला कर मना कर दिया।

'ग्रेग तुमने कहाँ तक पढ़ाई की है?' मैंने पूछा।

'सर मैंने नॉर्थ कैरोलाइना यूनिवर्सिटी से कम्प्यूटर साइंस में मास्टर्ज किया है।'

'कहाँ जॉब करते हो?' मैं केस को अच्छी तरह समझना चाहता हूँ, इसलिए पूछा।

'शार्लेट में इन्वेस्टमेंट कंपनी जेपी मॉर्गन के कम्प्यूटर डिपार्टमेंट का हेड हूँ।'

इसका मतलब जिम्मेदार पद पर है। दिखने में लापरवाह लगता है। मैंने मन ही मन सोचा।

अरे, मैंने अपनी बात शुरू कर दी और आपको बताया ही नहीं कि मेरा नाम सुधीर पटनी है और मैं फैमिली कोर्ट्स का डिस्ट्रिक्ट एडवाइजर अटर्नी हूँ। कोर्ट में केस भेजने से पहले मैं दोनों पक्षों को बैठा कर केस को सुलझाने यानि दोनों पक्षों का समझौता करवाने की कोशिश करता हूँ, अगर दोनों पक्ष आमने -सामने बैठने को मान जाएँ। तभी समझौता संभव होता है। कभी-कभी आवेदनकर्ता के मन में दूसरे पक्ष के प्रति बहुत रोष, आक्रोश और गुस्सा होता है। वह दूसरी पार्टी के साथ आमने-सामने बैठने के लिए नहीं मानता तो दोनों पक्षों को अलग-अलग कमरों में बैठा कर भी बात की जाती है। इस केस में दोनों पक्ष आमने-सामने बैठने को मान गए हैं और अपना-अपना पक्ष बता रहे हैं। मेरा काम है उनके पक्ष सुनना और अंत में निर्णय लेना।

पूर्व की हवाओं ने वर्ण भेद के ऐसे पत्ते उड़ाए, मैं जज बनते-बनते रह गया। पश्चिम से आई रौशनी ने आँखों में एक सपना चमका दिया, जिसे पूरा करते हुए ऐसी हकीकत का सामना करना पड़ा, जिसने भीतर तक हिला दिया। पश्चिम की रौशनी रंग भेद और नस्ल भेद के अँधेरे को अभी तक मिटा नहीं पाई है.....यह हकीकत जब समझ में आई तो बहुत देर हो चुकी थी।

मैंने ऐसा सपना देख लिया था, जिसे पूरा करना बेहद कठिन था। सच्चाई को स्वीकारा तो रास्ता आसान हो गया अंततः जज की बजाय मैं फैमिली कोर्ट्स का डिस्ट्रिक्ट एडवाइजर अटर्नी बन गया।

मैं देख रहा हूँ आप मेरी बात सुनते हुए कुछ सोचने लगे हैं!

अच्छा आप कॉस्मिक के बारे में सोच रहे हैं.....

मुझे भी नहीं पता कॉस्मिक का माजरा क्या है? आपके साथ-साथ मैं भी जान पाऊँगा। मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि मिसेज रॉबर्ट अपने बेटे ग्रेग से कॉस्मिक की कस्टडी चाहती हैं जो उनका बेटा उन्हें देना नहीं चाहता।

समय की पाबन्दी है.... चलिए केस को सुनते हैं....

'मिसेज रॉबर्ट आप क्या काम करती हैं?'

'मैं दो डिपार्टमेंट स्टोरों पर काम करती थी। एक से गुजारा नहीं होता था। ग्रेग पढ़ रहा था। सर! मैं सिर्फ हाई स्कूल पास हूँ। पति की जब अकस्मात् मृत्यु हुई तो मैं बौखला गई। पढ़ी-लिखी होती तो मुझे इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती, जितनी मैंने की। मैं ग्रेग को खूब पढ़ाना चाहती थी, इसलिए मैंने ग्रेग को बाहर काम नहीं करने दिया। ग्रेग का जन्म मेरी बढ़ती उम्र में हुआ था, अब मैं रिटायर्ड हूँ। अकेली भी हो गई हूँ। ग्रेग शार्लेट शहर में रहता है और मैं रॉली शहर में रहती हूँ। बूढ़ी हो रही हूँ। मुझे कॉस्मिक का साथ चाहिए।'

'मॉम अकेली तो आप तब भी थीं, जब मैं कॉलेज में था।' ग्रेग ने हल्का सा चेहरा ऊपर उठाते हुए कहा।

'हाँ तब कॉस्मिक मेरे साथ था। तुम तो उसका ध्यान रख नहीं पाते थे। तब मुझे अकेलापन नहीं लगता था और हर वीकेंड तुम मुझे और कॉस्मिक को मिलने आते थे।'

'मिसेज रॉबर्ट आप ग्रेग के पास जा सकती हैं कॉस्मिक और ग्रेग को मिलने। शार्लेट तीन ही घण्टे की दूरी पर है। रेलगाड़ी वहाँ जाती है और बस भी।' मैंने उन्हें सुझाव देते हुए कहा।

'जो बेटा मेरा फोन नहीं उठाता, छोड़े गए संदेशों का उत्तर नहीं देता, यहाँ तक कि एस.एम.एस. का भी उत्तर नहीं देता, उसके घर मैं कैसे जाऊँ!'

'आप माँ हैं, वहाँ जाने का हक है आपका।' बीस वर्षों से इस देश में रह रहा हूँ, अपने पेशे के दायरे को भी समझता हूँ, पर देसी मन को कौन समझाए! रोकता रहता हूँ , फिर भी हर केस में कुछ न कुछ कह देता है। लो.... फिर बोल गया।

यह सुनते ही मिसेज रॉबर्ट की रुलाई छूट गई.....

मेरे उठने से पहले ही ग्रेग उठा और थोड़ी दूर पड़ी मेज के पास चला गया, जहाँ पानी, कॉफी और कुछ हल्का नाश्ता पड़ा है। उसने पानी का गिलास भरा और अपनी माँ के पास ले आया। पहले उसे बाँहों में भरा, माँ के आँसू पोंछे और फिर उसे पानी पिलाया।

दृश्य देख कर मैं भावुक हो गया हूँ। दिल गवाही दे रहा है कि कुछ क्षण पहले जो मैं महसूस कर रहा था, वैसा कुछ नहीं होने वाला। दोनों की समस्या विशेष गंभीर नहीं, कोर्ट तक जाने की नौबत नहीं आएगी। बस दोनों में संवाद लुप्त हो गया है, उसे जगाना है वरन् एक दूसरे के प्रति भावनाओं और संवेगों में कमी नहीं आई है।

'मॉम मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ, इसलिए उत्तर नहीं दे पाता। कितनी बार कहा है आपको, अपने लिए कोई साथी ढूँढ़ लें। आपका अकेलापन कम हो जाएगा। न कॉस्मिक की जरूरत पड़ेगी, न मेरी।' ग्रेग ने प्यार से माँ के सिर पर हाथ फेरा और माथा चूम कर बड़े नरम लहजे में कहा।

मैं हैरान हो रहा हूँ.... ग्रेग जब थोड़ी देर पहले यहाँ आया था और मेरे सामने बैठने तक बहुत गुस्से में था। मिसेज रॉबर्ट उससे पाँच मिनट देर से आई थीं। तब से वह माँ के प्रति गुस्सा और लापरवाही दिखा रहा था। माँ को रोते देख उसमें इतना परिवर्तन! इसका मतलब यह सब उसने ओढ़ा हुआ था.... पर क्यों?

''मैं तुम्हें कितनी बार कह चुकी हूँ, मुझे कोई पुरुष साथी नहीं चाहिए। तुम्हारे डैड और मैं बचपन के दोस्त थे, बचपन का दोस्त जब जीवन साथी बनता है, तो वह अपने -आप में पूर्णता होती है। क्या हुआ अगर तुम्हारे डैड जिस्मानी तौर पर मेरे साथ नहीं, पर मेरे दिल और आत्मा में तो रॉबर्ट अभी भी बसते हैं। हमारा जितना भी साथ रहा, मैं भीतर तक तृप्त हूँ, संतुष्ट हूँ।''

अब समझ में आया ग्रेग की माँ को अपने नाम से पुकारा जाना क्यों पसंद नहीं! वे मिसेज रॉबर्ट ही कहलवाना चाहती हैं। हालाँकि उनका नाम मैरी है।

'ठीक है मॉम' ग्रेग थोड़ा मुस्कुराया और माँ से अलग होकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। उसका गुस्सा माँ के आँसुओं के साथ बह गया था।

'सर आपने कहा कि ग्रेग के घर जाने का माँ का हक बनता है। मैं उसी हक से इसके घर गई थी। जाने से पहले भी इसे एस.एम.एस. किया था, इसने कोई उत्तर नहीं दिया। वहाँ जाकर घर के सामने खड़े होकर भी इसे सन्देश भेजा था। न यह आया और न ही इसने उत्तर दिया।'

'माँ, मैं कितनी बार कह चुका हूँ, मैंने वे मैसेजिस तब देखे जब आप वापिस रॉली लौट आई थीं, पर आपको मेरी बात पर यकीन नहीं होता। उन दिनों मैं बहुत व्यस्त रहता था।'

'तुम तो हर समय ही व्यस्त रहते हो। इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ लो।'

ग्रेग ने फिर अपना सिर झुका लिया। वह कुछ बोला नहीं।

'काम में माँ तो कहीं खो गई है। हालाँकि तुम जानते हो तुम्हारे अलावा मेरा कोई नहीं। मेरी फिक्र करनी तो तुमने छोड़ दी है, मैं समझ गई हूँ। हमारी चर्च की सहेलियाँ और आस-पड़ोस के परिवार हैं मेरे दु:ख -सुख के साझीदार। कॉस्मिक पर इतना अत्याचार क्यों?' मिसेज रॉबर्ट की आवाज में दर्द उतर आया था।

मिसेज रॉबर्ट की बात समाप्त करते ही ग्रेग एकदम भड़क गया-'मॉम आप मुझ पर गलत दोष लगा रही हैं। मैं कॉस्मिक का पूरा खयाल रखता हूँ।'

'क्या खयाल रखते हो? जब मैं तुम्हारे घर गई थी, मैंने बाहर और कार में बैठकर ही पूरा दिन काटा था। तुम तो लौटे नहीं, मुझे यह भी पता नहीं कॉस्मिक कहाँ था?'

'आपको पता न होने से उसका शोषण हो गया? उस दिन मैं बहुत व्यस्त था। मैंने आपको कई बार बताया है।' ग्रेग गुस्से में बोला। लगता है ग्रेग को गुस्सा जल्दी आ जाता है और जल्दी चला भी जाता है।

'सर, अब मैं इसके सामने एक राज खोलना चाहती हूँ। मैं तीन

बार इसके घर गई थी और तीनों बार ड्राइव करके गई थी। इसे कोई मैसेज नहीं भेजा था। इस उम्मीद के साथ कि शाम को जब यह घर आएगा तो मुझे बाहर बैठा देखकर खुश होगा। इसे सरप्राइज बहुत अच्छे लगते हैं। रॉली से शार्लेट जाने में तीन घंटे लगते हैं। इतना आसान भी नहीं है बार -बार जाना। पर मैं गई। मैं इसकी केयर करती हूँ, यह मेरा बेटा है। जब यह आधी रात तक नहीं लौटा, तो मैं वापिस रॉली आ गई। मैंने सारा-सारा दिन इसके घर के बाहर बैठ कर गुजारा। इसके पड़ोसी भी इस बात को जानते हैं। उन्होंने भी मुझे बताया कि ग्रेग कई बार रात-रात भर घर नहीं आता। आप खुद सोचिए, कहाँ रहता होगा और क्या हाल होता होगा कॉस्मिक का! कितना अकेला हो गया है मेरा कॉस्मिक!' मिसेज रॉबर्ट की आवाज भर्रा गई।

कुछ क्षण थम कर वे फिर बोलीं-'अब भी यह कहेगा कि मैं इस पर गलत दोष लगा रही हूँ।'

इस बात पर ग्रेग विचलित हो गया और माथे पर आए पसीने को पोंछने लगा।

'सर, कॉस्मिक आठ साल का हो गया है। पिछले सात साल वह मेरे साथ रहा। एक वर्ष से वह ग्रेग के साथ है, जबसे इसकी नौकरी लगी है।' मिसेज रॉबर्ट ने ग्रेग की ओर देखते हुए कहा।

'ग्रेग यह कह कर कॉस्मिक को मुझ से ले गया कि कॉस्मिक इसका बेटा है, इसके साथ रहेगा।' मिसेज रॉबर्ट ने अपने दोनों हाथ मेज के साथ टिकाये हुए हैं और बस कहीं अपने में खोई हुई बोल रही हैं-'डॉक्टर कहते हैं कि मैं निराशा में जा रही हूँ, अकेलापन और निराशा दूर करने के लिए मुझे किसी का साथ चाहिए।'

ग्रेग तड़प उठा-'मॉम आपने मुझे बताया क्यों नहीं.....' वह बात पूरी नहीं कर पाया। भावनाओं के आवेग ने शायद चुप करा दिया। आँखें डबडबा रही हैं....

अब मिसेज रॉबर्ट सीधे ग्रेग को देख कर उसे कह रही हैं -'अगर तुम मुझे कॉस्मिक को दे देते हो तो सबसे बड़ा सहारा मुझे मिल जाएगा। कॉस्मिक बहुत समझदार और सुलझा हुआ है। हम दोनों एक-दूसरे को समझते हैं। दोनों मिलकर एक-दूसरे का अकेलापन दूर कर लेंगे।'

ग्रेग की दोनों कोहनियाँ मेज पर टिकी हुई हैं और उसने अपने दोनों हाथों से एक मुट्ठी बना कर उस पर अपना सिर टिका लिया है। ऐसा लग रहा है जैसे वह कुछ भी सुन नहीं रहा, बस किन्हीं खयालों में खोया हुआ है.....

मिसेज रॉबर्ट फिर ग्रेग की ओर मुखातिब होकर बोलीं-'पता नहीं तुम्हारा अहम् क्यों आड़े आ रहा है। कॉस्मिक तुम्हारा बेटा है, तुम्हारा ही रहेगा..... मैंने तो आया की तरह पाला है, अब भी वैसे ही पालूँगी.....' यह कहते-कहते मिसेज रॉबर्ट ने अपना सिर कुर्सी की पीठ के साथ टिका दिया, जैसे निढाल हो गई हों और आँखें बंद कर लीं और कमरे में उदास-सी खामोशी छा गई। मिसेज रॉबर्ट के अंतिम शब्द मुझे विह्वल कर गए। मैं कुर्सी पर बैठ नहीं सका। ज्योंही मैं कुर्सी से उठा, ग्रेग भी अपनी कुर्सी से उठा और तेजी से बाहर चला गया। मैं कॉफी बनाने के लिए नाश्ते की मेज की ओर बढ़ा ही हूँ , मिसेज रॉबर्ट के चेहरे पर नजर पड़ गई। आँखों ने कई दरिया बहा दिए हैं... कुछ पलों तक कॉफी की सुगंध कमरे की खामोशी के साथ गलबहियाँ डाले रही।

मुझे अब ग्रेग के लौटने का इंतजार करना है। इंतजार करने के अतिरिक्त मेरे पास और कोई विकल्प नहीं है। कम से कम दस मिनट तक मुझे उसका इंतजार करना है, फिर कोई कार्यवाही करूँगा। मैं कॉफी की चुस्कियाँ लेने लगा....पाँच मिनट के भीतर ग्रेग ने कमरे में प्रवेश किया। उसके साथ एक खूबसूरत लड़की है और ग्रेग ने एक कुत्ते की लीश पकड़ी हुई है, जिससे वह बंधा है। मैं बौखला गया। अरे यह क्या?.... मेरा माथा ठनका! एकदम से उनकी फाइल खोलकर देखने लगा हूँ। बस यही लिखा है, कॉस्मिक की कस्टडी मिसेज रॉबर्ट को चाहिए। क्या कॉस्मिक इनका कुत्ता है? मैं तो कुछ और ही समझ रहा था। मेरे कुलीग ने एक बार मुझे बताया था कि यहाँ के लोग कुत्तों के लिए बहुत संवेदनशील होते हैं। बच्चों की तरह उन्हें मानते और प्यार देते हैं। अगर कभी किसी कुत्ते का केस आए तो बेहद सावधानी बरतना। मुझे कुलीग की बात याद आ गई.....। मध्यम कद का, भूरे और सफेद रंग का खूबसूरत बीगल नस्ल का कुत्ता मिसेज रॉबर्ट को देख कर लीश को खींच कर छूटने की कोशिश करने लगा। ग्रेग ने उसे अपनी मॉम के पास ले जाते हुए कहा-मॉम सँभालो अपने छोटे बेटे कॉस्मिक को.... कॉस्मिक मिसेज राबर्ट के कदमों पर लोटने लगा। मिसेज रॉबर्ट उसकी छुअन से ही सचेत हो गई....

''मॉम यह डनीस है मेरी गर्ल फ्रेंड....''

मैं अपनी फाइल उठा कर एक सुखद दृश्य को देखता हुआ कमरे से बाहर आ गया हूँ। पहली बार मेरे पास आए किसी केस का सुखद अंत हुआ .... कुछ नहीं टूटा, कुछ नहीं छूटा। बेहद सकून मिला है..... ✠✠✠

सोच नई सुबह की

पुष्पा सक्सेना

''सच कहूं तो कुछ खट्टे-मीठे अनुभवों के बावजूद भारत के रिश्तों में गहरी आत्मीयता है। मुहल्ले की चाची-मौसी से सगों जैसा प्यार मिलता है। शादी-ब्याह, तीज-त्योहार पर सबका जुड़ाव, क्या यहां संभव है? यहां तो तीज-त्योहार भी वीकेंड के लिए छोड़ दिए जाते हैं। मेरे ख्याल में वर्षों यहां रहकर भी अपने देश की गलियां-पनघट सबको याद आते होंगे।''

कैलीफोर्निया हॉल में दोनों की भेंट अचानक हुई थी। दोनों लेखिकाओं का परिचय कराती पुनीता नंदी ने इसे प्रतिभागियों का सौभाग्य माना था कि एक साथ भारत की दो जानी-मानी लेखिकाएं सम्मेलन की चर्चा में भाग लेने उपस्थित थीं। नंदिता रे, अपने समय की बंगला की लोकप्रिय कहानीकार थीं। पिछले चार-पांच वर्षों से कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में वे विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में कार्य कर रहीं थीं। सुप्रिया जादवानी हिन्दी की उभरती कहानीकार थीं, उनकी कहानियां नारी-केन्द्रित होती थीं। सम्मेलन में प्रवासी-भारतीय महिलाओं के अलावा अमेरिकी, अफ्रीकी तथा अन्य एशिआई देशों की महिलाएं सम्मिलित थीं। सम्मेलन में महिलाओं की स्थिति बेहतर बनाने पर चर्चा चल रही थी।

अमेरिकी पत्रकार लिंडा जॉन ने नंदिता से साफ शब्दों में प्रश्न किया—

''क्या ये सच है कि भारत में लड़कियों को भ्रूण में ही मार दिया जाता है?''

''ठीक कहती हैं, भारत में महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय है। बचपन से बुढ़ापे तक वे बस तिरस्कार और लांछना का जीवन जीती हैं .....'' गम्भीर वाणी में नंदिता रे ने अपनी बात कही थी।

''एक लेखिका के रूप में आप इसके लिए क्या कर रही हैं?'' एक प्रवासी भारतीय महिला के स्वर में दर्द था।

''मेरी अधिकांश कहानियों में स्त्रियों की पीड़ा है। उनकी समस्याएं हैं। मूलत: मेरी कहानियां वीमेन-ओरिएंटेड हैं।''

''कहानी में उनकी पीड़ा-दर्शा आप क्या सजीव करेंगी?'' लिंडा के प्रश्न पर नंदिता रे अचकचा उठीं।

''नारी की पीड़ा जानकर ही तो उसका परिष्कार संभव है।'' नंदिता रे ने कहा..

''भारत में नारी-पीड़ा पर पोथियां लिखी जा चुकी हैं, पर महिलाओं की स्थिति आज भी वैसी ही है।'' पुनीता के स्वर में

सम्पर्क: 13819NE 37th PAL, Valleyway Viaginia-98005 USA

आक्रोश झलक रहा था।

''यहां क्या नारी वो सब पा चुकी है, जो उसका प्राप्य है?'' बेहद शांत स्वर में सुप्रिया ने पूछा था।

''क्यों नहीं, यहां स्त्रियों को पुरुषों का सम्मान मिला है। घर के कामकाज में पुरुष-स्त्री का पूरी तरह हाथ बंटाता है।'' पुनीता के स्वर में गर्व था।

''फिर भी पुरुष का अहं, इस देश में भी आड़े आता है, क्यों ठीक कहा न, लिंडा?''

''हां ... आं .... आपके कथन में कुछ सच्चाई तो जरूर है। अमेरिकी स्त्रियां भी पुरुष-शोषण का शिकार बनती हैं, पर उनकी स्थिति उतनी खराब नहीं।''

''लेकिन मैं ऐसा नहीं मानती, कम से कम यहां रह रहे भारतीय पति तो पत्नी को बहुत सम्मान देते हैं।'' नीरजा ने विरोध प्रकट किया था।

''क्योंकि वह पति के बराबर पैसा जो कमाकर लाती हैं।'' शांता बेन के चेहरे पर मुस्कान थी।

''पर भारत में तो कामकाजी महिलाओं की भी वही स्थिति है, कुछ साल पहले एक आइ.ए.एस. लड़की की हत्या उसके पति ने की थी, इट्स हॉरिबिल.'' अपनी बात कहती नीरजा सिहर उठी थी।

''कभी-कभी फायदा उठाने के लिए आत्महत्या को भी हत्या की संज्ञा दी जा सकती है, नीरजा।'' सुप्रिया ने विषय को दूसरा तर्क देना चाहा।

''स्त्री को आत्महत्या के लिए विवश करना, क्या हत्या से कम अपराध है?'' नंदिता रे बोलीं।

''पता नहीं किसका क्या सच है, पर मुझे तो कभी ऐसा लगता है, यू.एस. में कानून का भय दिखा, पत्नियां पतियों का शोषण कर रही हैं।'' शांता बेन गम्भीर थीं।

''शांता बेन, आपने तो समस्या को एक नया ही मोड़ दे दिया।'' पुनीता हंस पड़ी।

''ठीक कहती हूँ पुनीता, कहने को तो मेरे तीन-तीन बेटे हैं, पर उनकी शादी करके लगता है, मैंने बेटे नहीं बेटियां ब्याही हैं। उनकी पत्नियां जिस तरह अपनी स्थिति का फायदा उठाती हैं, मेरे तो गले से नहीं उतरता। हर बात में 9/11 का डर दिखा, हर चाहा-अनचाहा काम करने को विवश करती हैं। भला ये कोई अच्छी बात है?''

''चलिए ये तो अच्छा है, कहीं स्त्रियों को कुछ एडवांटेजस पोजीशन मिली है।'' सुप्रिया हंस पड़ी।

''आप हंस रही हैं, पर मेरा दिल तो रोता है। बहू ने बेटे को जनम दिया, पूरा घर उस पर सौ जान न्योछावर है, पर ये क्या अच्छी बात है, रात में जब भी बच्चा रोए निखिल को ही उठकर चुप कराना है, डाइपर बदलना है, फार्मूला बनाकर फीड कराना है, यानी पूरी रात का जागरण, मेरे निखिल को ही झेलना है।''

''तो इसमें गलती क्या है शांता बेन, आफ्टर ऑल वह बेबी का फादर है, ये काम उसी की ड्यूटी है।'' लिंडा विस्मित थी।

''गलती कैसे नहीं है? बेचारा निखिल पूरे दिन आफिस में सिर खपाकर लौटे और रात भर बीबी-बच्चों की सेवा करे। बहू तो दिन में आराम से सोती है, फिर भी रात में बच्चा नहीं देखती। क्या भारत में कोई मां ऐसा कर सकती है? मुझे तो निखिल का मुंह देखकर रोना आता है।''

''तो आप क्यों नहीं बहू-पोते की सेवा करतीं, शांता बेन?'' किसी महिला ने परिहास किया था।

''मुझे हाथ लगाने दे, तब न? कहती है पिता के साथ इंटरेक्शन से ही बच्चा पिता को प्यार करेगा, वर्ना वह किसी और को पिता का अधिकार दे सकता है। भला ऐसी बातें कभी सुनी थी?'' सबकी सम्मिलित हंसी पर शांता बेन खिसिया गई।

''शायद आपकी बहू ठीक कहती है शांता बेन, भारत में बच्चों का पिता के साथ भावनात्मक संबंध कम ही होता है, शायद उसकी एक वजह ये हो।'' नंदिता रे ने अपनी राय दी थी।

''नहीं, आपके इस तर्क से मैं सहमत नहीं, मैं तो अपनी मम्मी की जगह पापा से ही ज्यादा अटैच्ड हूँ।'' पुनीता के स्वर में गर्व था।

''मुझे लगता है इंडिया में बच्चे के जन्म के समय उसके पिता की उपस्थिति निषिद्ध होती है, शायद इसीलिए बच्चे को पिता से कम लगाव होता है, यहां तो जन्म के पहले से जन्म के बाद तक, पिता को हर बात की जानकारी दी जाती है। बच्चे के

जन्म के समय पिता की उपस्थिति अनिवार्य होती है ताकि उसे बच्चे से ज्यादा अटैचमेंट हो।'' एक विदेशी महिला ने अपनी राय दी थी।

''जी हां, ये ठीक बात हैं, भारत में स्त्रियों को भोग की वस्तु माना गया है। वह सिर्फ एक शरीर है इसलिए उसके सुदंरतम रूप से पुरुष को रिझाया जाता है। बच्चे के जन्म की प्रक्रिया वितृष्णा उत्पन्न करती है, इसीलिए पुरुष को उस क्षेत्र से वर्जित रखा गया है। मुझे लगता है भारत में भी बच्चे के जन्म के समय पिता की उपस्थिति अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।'' नंदिता रे का स्वर उत्तेजित था।

''हमने तो सुना है, भारत में आध्यात्मिकता पर बल दिया जाता है, पर आपकी बातों से लगता है वहां स्त्री भोगी जाती है, वह देवी नहीं मानी जाती।'' विदेशी महिलाओं का कौतूहल बढ़ता जा रहा था।

''एक बात बताइये, भारतीय स्त्री एक पति के साथ अपना पूरा जीवन कैसे बिता लेती है? क्या उन्हें चेंज की जरूरत नहीं लगती?'' लिंडा ने नंदिता रे से सीधा सवाल किया था।

''चेंज की जरूरत स्वीकार करने के लिए हिम्मत चाहिए। बचपन से पति परमेश्वर का पाठ घुट्टी में पीती आई लड़की तिल-तिल कर मर भले ही जाय, पर पति बदलने की बात सोचने का साहस कोई ही कर पाए।'' अपनी बात कहती नंदिता रे मुस्करा पड़ी थीं।

''शायद आप इन्हें भारतीय संस्कृति की जानकारी ठीक नहीं दे रही हैं, भारतीय समाज आज भी भारतीय नारी की सहिष्णुता, उसके त्याग पर स्थिर है वर्ना वहां भी रोज तलाक होते रहें।'' नंदिता रे की बात सुप्रिया ने हिन्दी में बोलकर काटी थी।

''क्या हर्ज है तलाक होने में? आप जैसी लेखिका भी तलाक के विरुद्ध बात करें, क्या ये शोभा देता है? क्या फर्क है आपमें और एक अशिक्षित स्त्री में?'' नंदिता रे बेहद उत्तेजित थीं।

''मैं तलाक की विरोधी नहीं हूँ, पर फैशन के नाम पर तलाक देने का समर्थन भी नहीं करती। अगर परिस्थितियां सचमुच ऐसी हों जब विवाह को खींच पाना असंभव लगे तो नारकीय जीवन जीने की जगह तलाक ही ठीक है।''

''आप क्या समझती हैं, मैंने फैशन के नाम पर पति से तलाक लिया है?'' नंदिता रे के नथुने फूल उठे।

''क्या, आप ये क्या कह रही हैं, क्षमा करें, मुझे आपके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी पता नहीं है। आई डू नॉट मीन इट। आई एम रियली सॉरी!'' सुप्रिया स्तब्ध रह गई। बात कहां से कहां जा पहुँची।

अपने ही देश की दो महिलाएं आपस में इस तरह उलझ पड़ें, क्या ये अशोभनीय नहीं था?

दोनों के बीच हो रही जोरदार बहस का मतलब लिंडा को किसी भारतीय महिला ने समझा दिया था। सहानुभूति के साथ वह नंदिता रे के पास खिसक आई।

''आप डाइवोर्सी हैं? ये बताइए डाइवोर्स की पहल किसने की थी। हमने तो सुना है, भारतीय स्त्रियां तलाक का नाम लेते भी डरती हैं।'' लिंडा ने जानना चाहा।

''पर मैं उन भीरु लड़कियों में से नहीं हूँ। जिस दिन लगा पति के साथ मेरी नहीं पट सकती, अदालत में तलाक की दरख्वास्त दे डाली थी।'' नंदिता रे ने जोर से कहा।

''हे, यू आर ग्रेट नंदिता जी। आपके अपने घरवालों ने आपको तलाक देने से नहीं रोका?'' नीरजा चहक उठी थी।

''घरवालों की सुनती तो आज उसी दरबे में कैद, भात पका रही होती। खुद सुबोध को भी पत्नी कम, दासी की ज्यादा जरूरत थी। तलाक की सुनते ही उसका मुँह फक पड़ गया था, माफी तक मांगी थी।''

नंदिता रे की बात पर सबने जोरों की तालियां बजाई थीं।

''क्या भात पकाने के साथ और कुछ नहीं किया जा सकता?'' शांता बेन का प्रश्न तीखा था।

''आप भी शांता बेन बस बेसुरा ही आलापती हैं। कुछ कर पाने के लिए स्वतंत्रता भी तो चाहिए न, वर्ना आपकी प्रतिभा क्या यूं कुंठित रह जाती?'' पुनीता का स्वर रूष्ट था।

''सुप्रिया जी, आप भी एक लोकप्रिय कहानीकार हैं, बताइए अपने लेखन और घर में आप कैसे तालमेल बिठाती हैं?'' नीरजा के प्रश्न पर सुप्रिया मुस्करा उठी।

''मेरी रचनाएं तो घर की नोक-झोंक में ही जन्म लेती हैं। जीवन

में अगर चुनौतियां न हों तो जीवन एकरस न हो जाएगा?''

''आप लकी हैं सुप्रिया जी, वर्ना भारत के अधिकांश घरों में लड़कियों की प्रतिभा दबा दी जाती है।'' शांता बेन उदास थीं। अपने शास्त्रीय संगीत का अभ्यास न कर पाने के लिए उनका मन हमेशा कचोटता। पति और सास को उनका गायन शत्रु लगता।

''कुछ गलती तो उस लड़की की भी होती है, शांता बेन। आप इतने वर्षों से ऐसे देश में रह रही हैं जहां की नारी स्वतंत्रता का पूर्ण उपभोग करती है फिर भी आप अपना संगीत जीवित न रख सकीं। अगर आप विरोध का स्वर मुखर करतीं तो शायद आपको यूं पराजित न होना पड़ता।'' पुनीता ने शांता बेन की दुखती रग पर हाथ धरा था।

''मेरी बात छोड़ो ..... हमारा जमाना दूसरा था, तब हम 9/11 का भय दिखाकर अपने मन की नहीं कर सकते थे, पर हां तुम्हारी बात में कुछ सच्चाई तो जरूर है। अब तो निखिल के पापा भी महसूस करते हैं, मेरे संगीत पर उन्हें रोक नहीं लगानी चाहिए थी ..... अब जो बीत गई सो बीत गई।'' शांता बेन ने नि:श्वास छोड़ी थी।

''इतने बंधनों के बावजूद भारत में ऐसा क्या है जो आपको वहां से जोड़े रखता है, सुप्रिया जी? आप भी नंदिता जी की तरह यू.एस. क्यों नहीं आ जाती?'' लिंडा के सवाल में आग्रह था।

सधी मीठी आवाज में सुप्रिया कहती गई:

''सच कहूं तो कुछ खट्टे-मीठे अनुभवों के बावजूद भारत के रिश्तों में गहरी आत्मीयता है। मुहल्ले की चाची-मौसी से सगों जैसा प्यार मिलता है। शादी-ब्याह, तीज-त्योहार पर सबका जुड़ाव, क्या यहां संभव है? यहां तो तीज-त्योहार भी वीकेंड के लिए छोड़ दिए जाते हैं। मेरे ख्याल में वर्षों यहां रहकर भी अपने देश की गलियां-पनघट सबको याद आते होंगे। वहां आज भी सब प्यार के इन्द्रधनुषी धागों में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, उस धागे को तोड़ पाना आसान नहीं, कभी भारत आओगी तो इस सच को समझ सकोगी लिंडा।''

सुप्रिया की बातें सुनती अधिकांश भारतीय स्त्रियां आत्मविस्मृत थीं, पर न जाने क्यों नंदिता रे चिड़चिड़ा उठीं, शायद वह सुप्रिया का महत्व स्वीकार नहीं कर पा रही थीं।

''सुप्रिया, तुमने भारत की बड़ी रंगीन तस्वीर खींची है, काश् इन काल्पनिक रंगों की जगह यथार्थ के रंग भरतीं तो इन्हें भारत की नारी की पीड़ा का आभास तो हो पाता। एक सच्ची लेखिका से सच की अपेक्षा की जाती है, फेंटेसी की नहीं।''

''मैंने जो कहा सच ही तो कहा है।''

उत्तर-प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए बिना नंदिता रे चर्चा बीच में अधूरी ही छोड़ वापस चली गई थीं।

दूसरी सुबह फोन पर सुप्रिया की आवाज सुन, नंदिता चौंक गई।

''कहिए कैसे याद किया, कुछ और सुनाना बाकी है क्या?''स्वर में व्यंग्य स्पष्ट था।

''कल की मेरी बातों से अगर तुम्हें चोट पहुँची है तो माफी चाहती हूँ। मैने जानकर ऐसा नहीं चाहा था।''

''मुझे क्यों चोट पहुंचने लगी? अपना महत्व जताने के लिए कोई झूठ का सहारा ले, उससे मुझे क्या लेना-देना? तुमने ऐसा सोचा भी क्यों?''

''तुम अचानक बीच में उठकर चली जो गई थीं।'' शान्ति से सुप्रिया ने कहा।

''अगर सच जानना चाहती हो तो सुन लो, मैं स्पष्टवादी हूँ, झूठ का सहारा ले, लोगों को भरमाना मेरा काम नहीं है, एक लेखिका से वैसा अपेक्षित भी नहीं है।''

''सच क्या मुझसे ज्यादा कोई जान सकता है, नंदिता?''

''तो क्या तुम्हारा सच यही नहीं है कि भारत-भूमि स्वर्ग से महान है, वहां नारी की पूजा की जाती है।'' नाराजगी से नंदिता रे ने जवाब दिया।

''नहीं, सच ये है कि खुद मेरी छोटी बहिन को उसके दहेज लोभी श्वसुर गृह में जलाकर खत्म कर दिया गया!'' सुप्रिया की आवाज रूंध गई।

''ओह! आई एम सॉरी, पर इस सच के बावजूद तुम उस देश की वकालत कर रही थीं?''

''हां, इस सच के बावजूद मैं उन सबके सामने देश के इस दुखद सत्य को उजागर नहीं करना चाहती ..... अन्तत: मैं लेखिका हूं। न्याय-अन्याय की निष्पक्ष समीक्षा मुझसे अपेक्षित है न?''

''क्यों सुप्रिया क्या अपनी बहिन की मृत्यु के लिए दोषी देश के साथ तुमने न्याय किया?''

''हां! अगर मेरी बहिन अग्नि की लपटों को समर्पित कर दी गई, उसमें दोष हमारे देश का नहीं, हमारा, हम सबका है। वह ससुराल न भेजे जाने के लिए रोती रही, गिड़गिड़ाती रही, पर उसकी नियति जानते हुए भी परिवार-जनों द्वारा उसे बार-बार उसी नर्क में ढकेला जाता रहा। अंत अपेक्षित था। मुट्ठी भर अतृप्त स्वप्नों की राख बन, उसने परिवार का सम्मान बचा ही लिया न।''

''ओह! ये तो नृशंसता की सीमा है, इसीलिए तो मैं कहती हूँ, इस देश में औरत पर ऐसे अत्याचार नहीं हो सकते।

नहीं नंदिता, यहां भी औरत पर क्रूर, नृशंस अत्याचार होते हैं, पर यहां का मीडिया उन घटनाओं को आम जनता तक पहुँचा, अन्यायी-अत्याचारी को दंड दिलाता है।

ठीक है यही सही, पर क्या हमारे यहां टी.वी. पर इस तरह की घटनाएं दिखाई जा सकती हैं, नहीं न?''

''हां, अब यह संभव है नंदिता। स्त्री-अत्याचार के विरुद्ध मीडिया सजग है। जन-मानस की नारी के प्रति विचारधारा में परिवर्तन के लिए हमारा टी.वी. सचेत है। अब हमारा-तुम्हारा और हम जैसी और लेखिकाओं का ये कर्तव्य बनता है कि हम अपनी कहानियों द्वारा समाज के नारी संबंधी सोच में परिवर्तन लाएं। हमसे यही अपेक्षित है न, नंदिता? एक नई सुबह लाने में हमारी महती भूमिका है।''

''ठीक कह रही हो सुप्रिया, लेखिका का दायित्व हमें पूरा करना है। सच कहूँ तो कभी सुबोध के लिए भी मन उदास हो जाता है। अपने लेखकीय दंभ में मैंने उसके साथ अन्याय किया है, काश! मैंने उसे माफ कर दिया होता।''

''अब क्या माफ नहीं कर सकतीं, नंदिता?

''नहीं सुप्रिया, बहुत देर हो चुकी, अब वह नई दुनिया बसा चुके हैं।''

''शायद हम सब कहीं न कहीं कोई गलती कर जाते हैं और बाद में पछताते हैं। तुमसे बातें करके बहुत अच्छा लगा, नंदिता। भारत से हजारों मील दूर, यहां मिलकर क्या हम दोनों और नजदीक नहीं आ गए हैं?''

''ठीक कह रही हो सुप्रिया, तुमसे बातें करके मेरी सोच भी शायद नई दिशा लेगी।''

''तो फोन रखती हूँ, बाय नंदिता!''

फोन रख सुप्रिया ने छलछला आई आंखें पोंछ डाली थीं।

✠✠✠

वेस्ट वर्जीनिया के नव वृंदावन में चैतन्य महाप्रभु

कौन कितना निकट

रेणु राजवंशी

समीर सोचता रहा कि यदि ये सब लोग भारत में रह रहे होते तो इनकी क्या मानसिकता होती। ये प्रवासी भारतीय भारत की गंदगी, भीड़, गर्मी, महंगाई से दूर भ्रष्टाचार, अनाचार से अछूते आज भारत को ही अध्यात्म का पाठ पढ़ा रहे हैं। अमेरिका में अध्यात्म मुखरित है और भारत में अध्यात्म मौन है। धक्के खाती ज़िंदगी आज अध्यात्म के बल पर ही सांस ले रही है। ये इन्हें दिखाई नहीं देता है। आज भी परिवार इकाई में जुड़े हुए हैं।

आज सुबह से ही घर में उत्सवीय वातावरण है। बहुत दिनों बाद या महीनों की मरघट की खामोशी के बाद घर में सुगंध फैली है, बाहर पक्षी चहक रहे हैं, हवा में लहरें उठ रही हैं।

रसोई में मम्मी जा-जाकर खाने का निरीक्षण कर रही हैं। सब कुछ बदला-बदला देखकर समीर को अच्छा लग रहा है। वरना पापा की लंबी मृत्युप्राय बीमारी ने मानो घर भर को बीमार बना दिया है। मानो सब मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठे हैं। किसी भी क्षण यह पल आ सकता है। मम्मी ने समीर की विचार-शृंखला को तोड़ा।

'बेटे, बाजार से आलू जरूर ले आना। चौकवाली दुकान की कचौड़ी और बंगाली वाले के संदेश जरूर लेकर आना।'

पापा भी क्षीण स्वर में आंखें खोलते हुए कह रहे हैं, 'आलू की सब्जी जरूर बना लेना, अमर को बहुत पसंद है।'

हां, तो यह सब अमर भैया के आने के स्वागत में हो रहा है। बड़े भैया अमेरिका से बीमार पिता को देखने आ रहे हैं। बड़ी मुश्किल से तीन सप्ताह की छुट्टी मिली है। बहुत व्यस्त जीवन है न वहां पर। समीर कुछ सोचते-न-सोचते काम में लग गया है। उसका जीवन भी बहुत व्यस्त है। परंतु यहां की व्यस्तता-त्रस्तता क्यों किसी को दिखाई नहीं देती है। बीमार पिता, नौकरी, बाजार, डॉक्टर के चक्कर एवं इन सबसे ऊपर कानपुर की गर्मी एवं भीड़। जहां आधी ऊर्जा यहां की गर्मी, बाढ़ रूपी भीड़ एवं खस्ता सड़कें निगल जाती हैं, वहीं आधी शक्ति बरसाती बेल-सी बढ़ती बेहिसाब महंगाई, स्वाति की शून्य में प्रश्न करतीं निगाहें एवं स्वस्ति एवं शाश्वत की बिना पूरी की हुई मांगे निगल जाती हैं।

परंतु आज यह सब सोचने का समय नहीं है। दवाई एवं बाजार का सामान लाकर उसे तुरंत ऑफिस पहुंचना है। शाम को ऑफिस से सीधे स्टेशन पर अमर भैया को लेने पहुंचना है। ठीक छह बजे ट्रेन आ जाती है। आज वह स्कूटर की जगह कार ले गया है। वरना रोज-रोज कार ऑफिस ले जाना उसके बूते की बात नहीं।

सम्पर्क: 6070, Eagle Drive, Westchester, Ohio-45069, USA

अमर भैया वैसे ही समीर से अधिक तरुण दिखते, मुस्कुराते हुए, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पर चिंतन बघारते हुए, पसीना पोंछते एवं कानपुर की गर्मी को कोसते हुए ट्रेन से उतरे। पापा की बीमारी के विषय में पूछताछ करते दोनों घर पहुंचे। सहज ही पापा-मम्मी एवं दोनों बच्चों का ध्यान अमर भैया पर केंद्रित हो गया था। समीर ने रसोई में झांका तो स्वाति चाय बना रही थी। वह खोया-खोया अपने कमरे में थोड़ा सुस्ताने चला गया। पलंग पर लेटा ही था कि अमर भैया की आवाज गूंजी, अरे भई समीर, यहां पापा के पास आकर बैठो।' समीर पापा के कमरे में पहुंच गया। सब चाय पीते रहे, दोनों तरफ से समाचारों का आदान-प्रदान होता रहा।

भैया बता रहे थे कि अस्मिता के आने की बहुत इच्छा थी, परंतु बच्चों के स्कूल के कारण नहीं आ सकी। आशीष-अभिनव ने अपने छोटे भाई-बहिनों के लिए खिलौने भेजे हैं। स्वस्ति-शाश्वत बार्बी डॉल, रिमोट-कंट्रोल कार देखकर सब कुछ भूल गए। समीर ने अनुमान लगाया कि दोनों खिलौने यहां दो हजार रु. से कम तो क्या मिलेंगे। समीर को लगने लगा कि भैया सबको खेला ही तो रहे हैं-किसी को खिलौनों से, किसी को डॉलर से तो किसी को नए-नए सीखे दार्शनिक ज्ञान से। चूंकि यह आवागमन एक तरफ ही होता है, अत: बातों का सिलसिला भी एकतरफा ही होता है। अगले दिन से फिर वही भाग-दौड़, यंत्रवत् दिनचर्या आरंभ हो गई।

सुबह बच्चों के स्कूल जाने के बाद अमर एवं पापा-मम्मी अकेले रह गए। तो वह परिवेश का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगा। समीर आठ बजे ऑफिस चला जाता है। बच्चों की बस नौ बजे आती है। उसके बाद नहाने का क्रम एवं कपड़े धोने की मशीन चालू होती है। बारह बजे दिन का खाना खाने के बाद स्वाति अपने कमरे में चली गई। दो बजे बाहर आई। तीन-चार बजे तक बच्चे स्कूल से आ गए। फिर शाम की चाय, बच्चों की पढ़ाई एवं रात का खाना। समीर शाम को आकर मम्मी को सामान सौंपता। साथ चाय पीकर वह भी अपने कमरे में चला जाता। रात के खाने के समय 15-20 मिनट बातें होतीं, फिर सोने की तैयारी।

अमर की पैनी निगाहें घर में फैली तल्खी के वातावरण को भांप गई। समीर-स्वाति दोनों यंत्रवत् अपने काम में जुटे रहते हैं। दोनों कर्तव्यपरायण हैं। जहां स्वाति घर के काम का मोर्चा संभाले हुए है, वहीं समीर पापा के उपचार के सारे प्रबंध संभाले हुए है। परंतु उसे पापा के कमरे में अधिक जाते नहीं देखा, मम्मी से अधिक बातें करते नहीं देखा। आज दिन-भर अमर घर पर ही सुस्ताता रहा, मम्मी से बातें करता रहा। पापा से भी थोड़ी बातचीत हुई। चूंकि वह अपने घर में मेहमान ही था, अत: पापा-मम्मी के पास बना रहा।

शाम तक बोरियत-सी होने लगी। सोचा, समीर आएगा तो बाहर घूमने चलेंगे। समीर आया सात बजे, वह भी थका-मांदा। अमर दोनों बच्चों को आइसक्रीम खिलाने बाहर ले गया। बच्चे तो खुश...।

पापा की सारी तीमारदारी का काम प्राय: मम्मी ही करती हैं, बाहर का काम समीर। अमर इसमें से क्या कर सकता है, वह सोच रहा था। उसे लगने लगा कि वह किसी काम का नहीं रहा। घर से दूर रहकर वह अपनों से भी दूर हो रहा है। मम्मी बाथरूम में पापा के नहाने की तैयारी कर रही हैं। हाथ पकड़कर पापा को कुर्सी पर बैठाया। पानी डाल-डालकर नहला रही हैं। धीरे-धीरे कपड़े पहनाए, खाना खिलाया, दवाई दी। कभी-कभी पापा अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में ही होते हैं। तब उनका ध्यान अधिक रखना पड़ता है। उसकी बूढ़ी मां बूढ़े पिता की सेवा-सुश्रूषा कर रही हैं और वह उनका बेटा चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रहा है। यदि वह सेवा का भार अपने ऊपर ले भी ले तो कितने दिन के लिए? तीन हफ्तों के लिए। उसके बाद। सहसा उसे समीर पर क्रोध आने लगा। क्यों वह पापा का काम नहीं करता? उनके पास बैठकर बातें नहीं करता?

शाम को समय निकालकर अमर ने समीर को अपने कमरे में बुलाया। लगता है समीर ने पापा से बात तक करनी छोड़ दी है। कुछ तनाव-सा है। पापा समीर को प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे हैं और समीर अपनी विवशता पर... चलते-फिरते अस्वस्थ पापा को पलंग पर अवश पड़े देख झुंझला-सा गया है। इधर अमर पापा से अमेरिका की, बचपन की, घर-बाहर की, अध्यात्म की बातों में डूबा है। मम्मी मंत्रमुग्ध-सी बातों में डूबी हैं और समीर-स्वाति कटते-से जा रहे हैं।

अगले दिन अमर ने समीर से अकेले में बात की। समीर ने चुप्पी साध रखी थी। अमर ने बताना चाहा कि दोनों में वार्तालाप होते रहना चाहिए। मरीज को हंसमुख वातावरण देना चाहिए। उनसे बातें करनी चाहिए। ईश्वर-चिंतन में पापा के साथ समय बिताना चाहिए। सदैव से मजाकिया समीर को समय ने चुप कर

दिया है। क्या उसने यह सब नहीं चाहा था... साथ-साथ रहते... घर-बाहर डॉक्टर, अस्पताल के बीच दौड़ते समीर भीतर से थक गया है। छह महीने से पापा की बीमारी ने मन के झरने को सुखा दिया है। आज अमर भैया, जिनकी भूमिका मात्र दो बार तीन हफ्तों की हाजिरी और दो हजार डॉलर का चेक रही है... उन्हें यह अधिकार दे रही है कि समीर को उपदेश दे सकें। परंतु छोटा भाई होने के नाते वह चुप रहा। उसने आश्वासन दिया कि वह पापा के साथ और समय बिताएगा।

पांच-सात दिन यूं ही बीत गए। शाम को चाय पर प्राय: सब इकट्ठे होते। अमर भैया की बातें केंद्र-बिंदु पर होतीं। मम्मी यही सोचकर निहाल होती कि उनका परदेसी बेटा उनके बारे में कितना सोचता है। समय निकालकर मिलने जातीं।

दिनभर की दौड़-धूप से दूर, डॉक्टर-अस्पताल के चक्करों से दूर, दवाई की दुकान, फलों की दुकान के धक्कों से दूर, अमर भैया सबको विवेकानंद बनने की सलाह देते।

बातों का सिलसिला दीपक चोपड़ा तक पहुंचा। अमर भैया अपने साथ किताबों का पुलिंदा लाए थे। 'एजलेस बॉडी टाईमलेस माइंड' पढ़ रहे थे। शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता के चिंतन पर बातें हो रही थीं। भैया पापा को समझा रहे थे। दीपक चोपड़ा एक भारतीय डॉक्टर अमेरिका का आध्यात्मिक गुरू बना हुआ है।

समीर सोचता रहा कि यदि ये सब लोग भारत में रह रहे होते तो इनकी क्या मानसिकता होती। ये प्रवासी भारतीय भारत की गंदगी, भीड़, गर्मी, महंगाई से दूर भ्रष्टाचार, अनाचार से अछूते आज भारत को ही अध्यात्म का पाठ पढ़ा रहे हैं। अमेरिका में अध्यात्म मुखरित है और भारत में अध्यात्म मौन है। धक्के खाती ज़िंदगी आज अध्यात्म के बल पर ही सांस ले रही है। ये इन्हें दिखाई नहीं देता है। आज भी परिवार इकाई में जुड़े हुए हैं। वह मां-बाप की सेवा का भार वहन कर रहा है। अपने खर्चे ताक पर रखकर दवाई पर पैसे खर्च कर रहा है। क्या यह अध्यात्म नहीं है। अध्यात्म के बिना आज का भारतीय बौरा नहीं जाता? भूखी माता बच्चों को छाती से लगाने की बजाय नदी में बहाने लगती, माता-पिता को वृद्धाश्रम की ओर धकेलने में उनके पुत्र-पुत्रियां संकोच नहीं करतीं।

क्यों नहीं, भैया ने पापा को इलाज के लिए अमेरिका बुलवा लिया? वह सदैव यही दलील देते हैं कि बिना इंश्योरेंस के इलाज बहुत महंगा है, तो यहां कौन-सा सस्ता है? क्यों नहीं अस्मिता भाभी पापा की सेवा-सुश्रूषा के लिए यहां आकर रहीं। समीर को उपाय सूझा। वह वार्तालाप भंग करता हुआ बोला, 'भैया, मैं कल एक जरूरी मीटिंग में व्यस्त रहूंगा। आप पापा को अस्पताल डॉक्टर के पास ले जाना। रास्ते में से दवाई आदि लेते आना।'

अगले दिन शाम को अमर भैया अध्यात्म पर कम, गर्मी-खर्चे, डॉक्टर की फीस, दुकानदार की बदतमीजी पर अधिक चर्चा करते रहे।

भैया का अमेरिका जाने का समय आ गया। पापा-मम्मी को अश्रुपूरित करके अमर भैया वापस लौट गए। घर में फिर वही छह प्राणी रह गए। निकट दूर... कटे-जुड़े... अपनी धुरी पर घूमते... एक-दूसरे से तारतम्य। मम्मी को घर का एकांत समझा रहा है कि जो चला गया, वह परदेसी है। जो रह गया है... चुप या बोलता... सहृदय या सखा... वही, उनके सुख-दु:ख में काम आनेवाला है। पापा को डॉक्टर के पास ले जाने वाला, दवाई लानेवाला... अपना है। समीर को भी भैया के जानेवाला क्षण कहकर गया है कि उसे ही पापा की बीमारी का भार वहन करना है। मम्मी को उसे ही संभालना है।

उड़ने वाले पंछी हैं,
दूसरी डाल के
रह गए वे हैं,
जो हैं
इसी नीड़ के।

✠✠✠

गिद्ध सारे मर गये हैं।

डॉ. कविता वाचक्नवी

ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई, गिद्ध बढ़ते सुनाई पड़ते..... आतंक भी बढ़ता ही दिखाई पड़ता। कुछ विरले ही पुरुष दिखाई देते जिनकी दृष्टि में स्त्री की जीवित देह को नोचने की लालसा न दीखती। यजुर्वेद का 'मा गृधः' पूरे व्यवहार में आना तो दूर माँस के प्रति लोभ भी न निवार पाएगा। ऐसा सोच-सोच अजब वितृष्णा जागती। गिद्ध और आतंक, गिद्ध और लोभ, गिद्ध और कुत्सा, एकमेक होकर सर्वव्यापी होते दिखाई देते।

जिस उम्र में लड़कियाँ गुड्डे-गुड़िया छोड़ धीरे-धीरे घर में रचने लगती हैं, उस वय में आने से पहले ही जाने कितने मन्त्र कण्ठाग्र हो गए थे। मन इन मन्त्रों के प्रति श्रद्धावनत-भर होने जितनी आस्था से अधिक इन पर सोच-विचार करने की परिपाटी में दीक्षित हुआ था। यह मन भी निराला है। पवित्र शब्द-भर मानने वाली भावुक व कोरी आस्था केवल हृदय से उपजती है और वहीं रहती है। संकल्प-विकल्प का अधिकार मन के पास और तब निर्णयात्मिका बुद्धि। यह सब तो बाद में जाना- माना। फिर जानने के बाद आस्था के विविध सोपान भी प्रतीत होने और समझ आने लगे। जिनकी आस्था व्यक्तियों, दृष्टियों, विचारों, स्थानों, मतों, मन्तव्यों के प्रति अदली-बदली करती दीखी तो यह भी लोकानुभव ने बताया कि उसका मन दीक्षित नहीं हुआ था, क्योंकि दीक्षित होने के बाद ऐसा सधता है कि फिर पलटता नहीं।

स्कूल से लौटते समय कुल्फी वाले की लाल ठेला-गाड़ी, उस पर बना धातु का पञ्जा (जिसका लाभ विशेष दाम की कुल्फी लेने पर ही हथेली की मार से दबाकर मिलता था) लाल कपड़े से ढकी, साँचों में सींकों पर लगी कुल्फियाँ; सब कुछ बेमानी हो जाता, इस दीक्षित होते मन के हाथों। तिस पर तुर्रा यह कि सखियों से बोल-चाल बन्द होने की नौबत आ जाती। सिद्धान्त सिर चढ़कर नियामक होने लगे थे। विद्यालय वालों ने गर्व करना आरम्भ कर दिया था संस्कृत श्लोकोच्चारण में सर्वप्रथम आने वाली किशोर होती एक बच्ची पर। वह युग कोई बहुत पुराना नहीं, पर आज की इस आधुनिकता के समक्ष तो पुराना ही कहलाएगा, क्योंकि तब अंग्रेजी उस देश के सामान्य नगर में, जिले के आधुनिक स्कूल में विषय-भर थी गर्व का विषय नहीं। स्कूल वाले गर्व करते थे उस भाषा पर, जिसके पढ़ने वाले आज रोटी-भाषी देश में बहुत नुक्कड़ पर जा लगे हैं । ..... और वही भाषा हममें भरती थी आत्मगौरव ....।

यों ही 5-6 वर्ष सैकड़ों मन्त्रों व श्लोकों के पवित्र अनुष्ठान के लिए कृत संकल्प रहकर बीत गए। कॉलेज में प्रवेश के समय डी.ए.वी. गर्ल्ज कॉलेज का कोई विकल्प भी नहीं सोचा जा सकता था। संस्कृत या 'नैतिक शिक्षा' की आरम्भिक कक्षाओं

सम्पर्क: +1-832-874-3376, ह्यूस्टन (अमेरिका)

में वहाँ 'ईशोपनिषद्' भी थी। पुस्तकें अभी पूरी तरह खरीदी नहीं गई थीं। 'मैडम' ने पहला मन्त्र शब्दार्थ करके पढ़ाया। अगले दिन सभी से पूछते-पूछते अपनी भी बारी आ गई। पिछले दिन के पढ़ाए शब्दार्थ को तिलाञ्जलि देते हुए मैंने जैसे ही कहा कि यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय ही ईशोपनिषद् है; और यह मन्त्र उस 40 वें अध्याय का पहला मन्त्र है तो स्थिति कुछ और ही हो गई। फिर ''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।।'' की अपनी की व्याख्या पर स्वयं ही आश्चर्य हो आता रहा। बाद में अकेले में कई-कई बार उस दृश्य की कल्पना की, बार-बार उसे जी कर देखा, हर्षित हो-होकर अकेले में बहुत अच्छा लगता रहा। कुछ दिन यह सब चला और इसका परिणाम यह हुआ कि 'मा गृध:' 'मा गृध:', 'मा गृध:' ही बस हरदम कौंधता रहता।

एकड़ों में फैली अपनी जमीन के वर्जित क्षेत्र मन में रोमांच जगाते। भट्ठे जब 'सुलगा' दिए जाते थे उससे पिछले महीने से लेकर आगामी कई महीनों तक हम और हमारे भाई-बहनों की तिगड़ी का वहाँ फटकना भी मना होता। बिहार से आए हमारी उन भट्ठियों के 'भइये' उधर जाने वाले रास्ते के आरम्भ में ही अपने-अपने कमरों के बाहर ईंटें जोड़ साँझ ढलते खाना पकाने लगते। यों दिन-भर भी वहाँ जमीन में गड़ी लोहे की सात-आठ फुट ऊँची तराजू के पास कुर्सी डाले कोई-न-कोई 'भइया' ड्यूटी पर रहता। हम बेपरवाह-सी मुद्रा धारे तराजू के इर्द-गिर्द डोलते, वहाँ से आगे जाने का जुगाड़ लगाने की कोशिशों में दिन में दस-दस बार तराजू पर अपना वजन तोलने की बारी बाँधते या कभी अकेले, कभी दुकेले, कभी तीनों कभी भरे पेट, कभी खाली पेट, कभी बूट पहन कर, कभी शॉल ओढ़ कर। लोहे के 10-10, 20-20 किलो के बाटों के मध्य लगी मजबूत छड़नुमा पकड़ में 'भइया' अपनी खुरदुरी, काली और कड़ी उंगलियाँ अड़ाता, नीचे से उंगलियाँ ऊपर को मोड़ मुट्ठी बन्द करता और बाट जंगलेदार तराजू के दूसरे सिरे पर रख देता। हमारे सिर के ऊपर काँटा तेजी से पलटी मारता और फिर धीरे-धीरे स्वीकार लेता अपनी पतली, नुकीली देह पर सारा वजन। यह तराजू झूला भी बन जाती, दोनों ओर हम एक-एक बच्चा सवारी करते। इतना ही काफी नहीं होता था, कई बार तो उछलकूद-मयी दगाबाजी करने वाले की बजाए निष्ठावान् सवार को तराजू पटक देती, जब एक ओर से कोई दूसरा झट-से नीचे कूदता तो दूसरी ओर का पाट 'ट्ठा' से नीचे जमीन पर टकराता; दूसरी ओर का सवार कुछ समझ पाने से पहले ही चोट खा चुका होता। ऐसी आहत करने वाली तराजू की ही तीमारदारी करने फिर-फिर पहुँच जाते हम। क्योंकि आगे का पथ प्रशस्त हो सकने के लिए तराजू पर की पहरेदारी हटने की कभी न पूरी होने वाली प्रतीक्षा का अड्डा ही एक आशा था।

जिन दिनों भट्ठियाँ चिनी जातीं, उन दिनों तो जानवरों की 'पहरेदारी उनके चारों ओर होती। दूर-दराज भू-भाग से लाया पत्थर, फिर कोयला.... फिर पत्थर आदि तह-पर-तह बिठाए जाते। बीस-बीस मीटर के आर-पार के माप की गोल भट्ठियों में नीचे से आग दी जाती थी। तीन ओर से सुरंग जैसी व्यवस्था होती। भट्ठियाँ पूरी चिनी जाने के बाद कोई सिद्धहस्त 'भइया' उनमें आग देता। एकाध बार सुना कि फलाँ-फलाँ भइया उस सुरंग की गैस में दम घुटने से नहीं रहा। पर तब कहाँ आन्दोलन-वान्दोलन होते थे। काम धन्धे के सिलसिले में पराए देस, घर के मर्द का चुक जाना जितना आम उनके परिवारों के लिए था, उससे बहुत कम हमारे लिए। कई-कई दिन हवेलीनुमा घर पारिवारिक सदस्य की मौत-सा दु:ख व सन्नाटा अनुभव करता। महीनों दहकती हुई दस-दस भट्ठियाँ दूर से देखने वाले हम बच्चों के मन में दहशत भरतीं। हवा में दहकती आग की गर्मी दूर से ही भट्ठियों के ऊपर लहरों का संसार रच देती। मैं वहाँ जाने की सारी जिज्ञासा छोड़ इस सौंदर्य पर मुग्ध होती। पलकों को समेट कर, अधखुली आँखें बना कर शाम को उसे देखने को जी मचलता। पर आग तो आग है, लगभग 30 मीटर से अधिक गहराई तक में गुपचुप दहकती आग....छिपी आग... सुलगती आग .... सोयी आग, पत्थरों को चूने की डलियों में रूपायित व रूपान्तरित करने में लगी होती - और जो आग पत्थर को सफेद भुरभुरा कर सकती थी, वह और क्या नहीं कर सकती। साँझ में पर फड़फड़ाती तेजी से गुजरती चिड़िया यदि भट्ठी के मीटर-भर ऊपर से भी गुजरने का दुस्साहस कर जाती तो उसके अवशेष भी शेष नहीं होते।

हमें डर भी बहुत लगता।

उधर ही एक बड़ी कद-काठी का पीपल अपना चन्दोवा ताने रहता था। तराजू पर खड़े-खड़े लुभाता। क्योंकि भट्ठियों के खुल जाने के बाद जिन दिनों ट्रकों की आवाजाही अन्दर होने लगती, उन दिनों की चहल-पहल के जाने कितने घण्टे प्रतिदिन वह बच्चों की बलइयाँ लेते काट देता। उसकी मोटी ढलानदार डालों पर लेटने का सुख तीस-पैंतीस बरस बाद भी देह को मसोसता रहता है। सारे स्पर्श जीवित हो उठते हैं पीठ और हड्डियों पर।

पीपल के पत्ते इस खुले परिसर में छन-छना-छन-छन पैंजनी खनकाते नाचते। बाल मण्डली ने पीपल के ललौहें-हरे पत्तों में सौंफ और चीनी भरकर सैकड़ों पान बनाए-खाए। पत्तों को किताबों में सुखा-सुखा कर उनके भग्नावशेषों का तार-तार सौन्दर्य सम्हालने में कोई कोताही नहीं होने दी। बड़े होकर जब ''द्रुत झरो जरा के जीर्ण पत्र'' पढ़ा तो जीर्ण पत्र का बिम्ब पीपल के उन तार-तार, रेशा-रेशा धानी-भूरे पत्तों का ही बना। डाल पर ही मुरझाए हल्के हुए बादामी रंग के पत्तों का गिरना और लड़खड़ाते या उड़ते हुए हवा के संग कहीं किसी ओर को सस्वर चल देना, या कभी- कभी दब कर चूर-चूर चूर्ण होना कभी नहीं सोहा। इस पीपल पर कई दुपहरियाँ और कई शामें कटीं। साँझ ढलने से पहले ही आकर कोई 'भइया' हमें पीपल से लिवा ले जाता। पीछे दूरी पर सीमा बनाती एक ऊँची दीवार थी, जिसके पार का क्षेत्र भट्ठियों से काफी गहराई-नीचाई में था। इस क्षेत्र में बहुधा दुर्गन्ध भरी रहती। मरे जानवर तो अक्सर ही नुञ्चते दीखते। दूर-दूर कुछेक पेड़ भी थे। हमारे कॉलेज के बरसों में वहाँ सरकार ने कृत्रिम झील बना दी ।

निचले परिसर में ठूँठ नुमा एक पेड़ भी खड़ा था और एक पतरे का खम्भा भी। तीन अंकों के टेलीफोन नम्बर के उस युग में नगर के इने-गिने चार-छह घरों में फोन थे, जिनमें से एक यहाँ बने अपने दफ्तर में था, जहाँ रखा हुक्का गुड़गुड़ाना और फोन की देह में नन्ही उँगलियाँ गुभा कर घुमाना सबसे उमंगदायी उपादान होते थे। दूर लगा खम्भा सफेद कनटोप-सा लगाए 'भट्ठियों' के 'दफ्तर' की बाहरी दीवार पर बँधी एक तार का दूसरा छोर उस कनटोपे-से में लपेटे खड़ा रहता। मैदान में चीलें झुण्ड बनाए लम्बी गरदनें झुकाए शवों के इर्द-गिर्द जुटी रहतीं। बादल या आँधी से पूर्व तो पूरे आकाश पर चक्कर लगाती मण्डरातीं। कई बार दीवार के ऊपर आ बैठतीं। भयंकर दृश्य बनते। ठूँठ पर बीच-बीच में गिद्ध आ जाते। दो ओर चमकीली आँखें फिराते, पर खोलते तो लगता लपक लेंगे परों ही से हमारे आकार-प्रकार से अधिक बड़े फैलाव वाले भारी पर। चीलें और गिद्ध नोच खाने वाले भयंकर जीव थे, जिनके नाम भी बाद में पता चले। उनसे डरकर रहना होता। वे जरा हरकत में आए या उड़ने को हुए तो हम चीखते भाग आते। किसी ने चोंच से माँस खिंचते, देखा हो तो वही इस भयंकर दृश्य की भयावहता समझ सकता है। हमें बताया जाता कि गिद्ध यदि पास आ जाए तो आँखें खींच लेगा। इसलिए हमारे लिए पृथ्वी के सबसे बड़े आतंकवादी उन दिनों यही गिद्ध थे।

उम्र बढ़ी। बढ़ती उम्र का रंग युवा होती लड़कियों पर चढ़ने से पहले ही पढ़ लिया - 'मा गृधः' लालच मत करो, लोभ मत करो, छीनो मत, झपटो मत, गिद्ध मत बनो। अब तो तय हो गया कि गिद्ध ही 'आतंक प्रमुख' आतंक के सरगना, कुत्सा के शिरोमणि हैं। उम्र का रंग जब देह और मन पर चढ़ा तो संयुक्त परिवार की जिम्मेदार स्त्रियों ने अपनी शैली में बहुत कुछ बिना कहे और बहुत कुछ कह कर समझाया-सिखाया।

जैसे भट्ठियों का एक 'निषिद्ध क्षेत्र' था, खतरनाक था, गिद्ध आते थे, उसी प्रकार लड़कियों के लिए निषिद्ध क्षेत्र, निषिद्ध खेल, निषिद्ध लोग, निषिद्ध आना-जाना जैसे बचाव के दर्जनों निषेध लागू हो गए। लड़कों के साथ खेलना, बोलना, घूमना, पढ़ना, बैठना, व्यवहार करना सब कुछ निषिद्ध। लड़के भी गिद्ध की श्रेणी में सम्मिलित हो गये। लड़कियों के कॉलेज के बाहर खड़े लड़के 'शोहदों' जैसा व्यवहार करते। मौका मिलते ही डराने वाली कोई-न-कोई हरकत किसी-न-किसी के साथ कर जाते। घर वाले समझाते कि यदि लड़कियों पर प्रतिबन्ध न लगाये जाएँ तो मरे आदम जात मर्द तो लड़कियों को नोंच खाएँ। यह सुन-समझ, नोच खाने वाले गिद्ध मेरे सिर पर मँडराने लगते। समझ में आता कि ठीक ही तो बात है यह। क्योंकि गिद्धों पर तो कोई प्रतिबन्ध व नियम नहीं लगाया जा सकता था, जैसे भट्ठियों में भी तो हमीं पर प्रतिबन्ध लगाया जाता था।

ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई, गिद्ध बढ़ते सुनाई पड़ते..... आतंक भी बढ़ता ही दिखाई पड़ता। कुछ विरले ही पुरुष दिखाई देते जिनकी दृष्टि में स्त्री की जीवित देह को नोचने की लालसा न दीखती। यजुर्वेद का 'मा गृधः' पूरे व्यवहार में आना तो दूर माँस के प्रति लोभ भी न निवार पाएगा। ऐसा सोच-सोच अजब वितृष्णा जागती। गिद्ध और आतंक, गिद्ध और लोभ, गिद्ध और कुत्सा, एकमेक होकर सर्वव्यापी होते दिखाई देते। पाकिस्तान के साथ युद्ध के दिनों में खाइयों में छिपना पड़ा तो खाइयों तक में सिर पर एक बड़ा गिद्ध मँडराता .... पाकिस्तान ... युद्ध ....। उफ...कितने गिद्ध ... ?

इन गिद्धों की संख्या लगातार बढ़ती चली गई, बढ़ती रही ... अबाध निरन्तर... दोगुनी-चौगुनी-छहगुनी.... भट्ठियाँ छूटे 30 से ऊपर वर्ष हो गए, गिद्ध देखे भी इतना ही समय हो गया। गिद्धों के आवासीय-परिसर को उजाड़ वहाँ एक झील बना दी गई, जहाँ अब दिन-रात भीड़ फिरा करती है। कहते हैं वहाँ अब डर नहीं, गिद्ध अब नहीं आते। पर किसे पता नहीं कि गिद्ध उस

भीड़ में भी अभी वहाँ हैं। मेरे सिर पर मँडराने वाले वे गिद्ध कभी नहीं मरे, न मरते।

वैज्ञानिकों ने बताया कि प्रकृति में सन्तुलन की व्यवस्था के लिए पशु जगत् अपने लिए नियत प्राप्य से अधिक नहीं लेता, न छीनता। मनुष्यों के बर्बाद किए पर्यावरण में कितनी प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं। यह भी बताया कि इस क्षेत्र के 1000 किलोमीटर घेरे में एक भी गिद्ध नहीं बचा। गिद्ध की प्रजाति उस क्षेत्र में लुप्त हो गई है। वैज्ञानिक गिद्ध की उपादेयता समझ कर उसके विलुप्त हो जाने से चिन्तित हैं। गिद्ध को लाने-बचाने की योजनाएँ बन रही हैं।

मैं जैसे सोते से जगी हूँ। गिद्ध से भी अधिक भयंकर प्रजाति कोई अन्य है, वह तो जीवित है जिसे हम ''मा गृध:'' सिखा रहे हैं। पर यह क्या हुआ ! असल गिद्ध तो रहे नहीं। आज मेरे सिर पर केवल आतंक रह गया है। पीपल के पार, मृत पशु नोचने वाले गिद्ध सारे मर गए हैं। मैं सच में बहुत उदास हूँ कि कितना अन्याय किया मैंने उनके साथ, उनसे घृणा कर। मैं सच में शर्मिन्दा हूँ, दु:खी हूँ, परेशान हूँ, घबरायी हूँ। कोई नहीं सुनता, कोई नहीं समझता। सारे गिद्ध मर गए और मुझे अब पता लगा? किससे बाटूँ यह अनकही? यादों का बचपन और बचपन के वे गिद्ध मर चुके।

मैं सपनों में इधर-से-उधर बौरायी दौड़ती हूँ, पर सुनाई पड़ती हैं पीपल के बादामी, सूखे, ऐंठे, गिरे पत्तों की हवा के साथ-साथ चले जाने की ध्वनियाँ; जो अब नहीं रहा। बच्चे अब उस पर नहीं, झील पर खेलते हैं। और गिद्ध.....???? वे रूप बदल कर झील पर ठहाके लगाते हैं .... इक पगली भिखारिन को यहीं झुटपुटे अन्धेरे में इक दिन झपट-नोंच लिया था..... पता तब चला जब मांस का रक्त भीगा इक लोंदा उसकी देह से अलग हुआ और वह झाड़ियों तले उस से बँधी मृत पाई गयी।

मैं बचपन के उन पंख-भर उड़ने वाले गिद्धों से क्षमा माँगने के लिए उनके वंशज ढूँढ़ती फिरती हूँ .....! उनके बसेरों का रूप बदल, ये कौन-से गिद्ध घर कर रहे हैं?

✠✠✠

अमेरिका में गगनांचल गोष्ठी

रौनी, राज और राधा

लावण्या दीपक शाह

(अमरीकी स्कूलों में भयानक ' स्कूल - शूटिंग' की दु:खद वारदातें होती रहतीं हैं। इन हादसों में निर्दोष व मासूम शिशु अपने प्राण गवातें हैं। टीनेजर्स की यह कहानी प्रासंगिक है।

श्रद्धांजलि सहित दिवंगत मासूम आत्माओं की सद्गति के लिए अश्रुपूरित प्रार्थना सहित रौनी, राज और राधा : 3 ऐवरेज अमेरिकन टीनएजर्स की कहानी, गगनांचल के लिए-सं.)

आज अमरीका में अपने सत्रह साल के जवान बेटे रौनी को देख कर छप्पन के पड़ाव पर ठिठके हुए, कुलदीप खुराना जी को, अपना बचपन याद हो आया। हाय कित्ते प्यारे दिन थे। भारत के मध्य वर्गीय घर में बेशक उनके परिवार के पास ऐसी चमचमाती गाड़ियां न थीं पर बीजी के प्यार से संवरा हुआ वह घर, जन्नत से कम न था। बीजी का प्यार और बाउजी की कठिन परिश्रम करने की लगन से ही तो परिवार के सभी को सारी सुख सुविधाएँ मिलीं थीं। अपने स्नेह पाश में, सभी को वह छोटा सा घर बाँधे हुए था। सभी को उस आशियाँ में कितना आराम मिला करता था।

रौनी आज अपनी नई कार चला कर स्कूल आया है, जिस दिन रौनी के युवा जीवन के 17 वर्ष पूरे हुए थे उसी दिन उसकी बर्थ डे पार्टी की शाम को, तोहफे में, उसके डैड, कुलदीप खुराना और मोम शरणजित ने अपने बेटे रौनी के लिए एक नई चमचमाती, ब्रांड न्यू ब्ल्यू रंग की माजदा स्पोर्ट्स कार खरीद कर उसे दी थी। नई गाड़ी में कीलेस एन्ट्री का उपकरण था जिसे अपने लाडले बेटे, रौनी के हाथ में थमाते हुए, माता पिता बेहद गर्व का अनुभव कर रहे थे और अत्यंत प्रसन्न थे! नई गाड़ी की चाबी अपने लाडले के हाथों में थमाते वक्त कुलदीप खुराना जी को अपने जवानी के संघर्ष भरे दिनों की बरबस याद हो आई थी! कितनी मेहनत की थी कुलदीप ने पढ़ाई करते हुए। पहले भारत के स्कूल में फिर आगे उच्च शिक्षा के लिए अमरीका आकर वे नियम से पढ़ाई कर अच्छे नंबरों से पास हुए थे। भारत की याद आते ही अपने घर का आँगन आँखों के आगे खड़ा हो गया। घर के बहुत से कामों में हाथ बंटाना, कुलदीप के जीवन का अहम् हिस्सा था। बाउजी और अम्मी को 'हाँ जी बाऊजी, जी माँ' के अलावा, कुलदीप कभी कुछ और कह न पाया था। भारत में बड़ों की इज्जत करना उन जैसे मध्यम वर्ग के परिवारों में रिवाज था। यही चलन था। अपनी संतान के लिए उनके बचपन के दिनों में, उंडेला ढेर सा लाड - प्यार, अधिकतर भारतीय मध्य वर्ग के परिवारों में देखा जाता है और ये एक आम बात है। परन्तु जैसे-जैसे परिवार में बच्चा बड़ा होने लगता है, उसे भी संस्कार, पारिवारिक रीति रिवाज, बड़ों की मर्यादा का महत्त्व ऐसी कई बातें समझ में आने लगती हैं। बड़ों की इज्जत करना, बच्चे सीख ही लेते हैं। यदि रोज नहीं करते तो भी कई बच्चे, अक्सर खास त्योहारों पर, जैसे दिवाली पर, अपने बुजुर्गों के पैर छू कर आशीर्वाद लेना, सीख

सम्पर्क: 7062, Middletown way Mason OH 450040 USA.
Lavnis@gmail.com

ही लेते हैं। रिश्तेदारी हों या पास पड़ौस के बड़े बुजुर्ग हों, उन्हें सम्मानपूर्वक सम्बोधित करना आम आदत हो जाती है। सारे पुरुष 'अंकल' या 'चाचाजी' कहलाते हैं और महिलाएं 'आंटी जी' या चाईजी कहलाती हैं। यह तो रोज के व्यवहार में बच्चों को सिखलाया ही जाता है!

'कुलदी ... पे, इत्थे आ पुत्तर।' जब भी माँ जी या बाउजी की आवाज आती 'जी हाँ' कहता छोटा सा कुलदीप आवाज की दिशा में खिंचा चला जाता था।

आज अमरीका में अपने सत्रह साल के जवान बेटे रौनी को देख कर छप्पन के पड़ाव पर ठिठके हुए, कुलदीप खुराना जी को, अपना बचपन याद हो आया। हाय कित्ते प्यारे दिन थे। भारत के मध्य वर्गीय घर में बेशक उनके परिवार के पास ऐसी चमचमाती गाड़ियां न थीं पर बीजी के प्यार से संवरा हुआ वह घर, जन्नत से कम न था। बीजी का प्यार और बाउजी की कठिन परिश्रम करने की लगन से ही तो परिवार के सभी को सारी सुख सुविधाएँ मिली थीं। अपने स्नेह पाश में, सभी को वह छोटा सा घर बाँधे हुए था। सभी को उस आशियाँ में कितना आराम मिला करता था। हाँ, सभी, अपनी अपनी जिम्मेदारियाँ निभाते रहते थे।

कुलदीप के बाउजी, दिनभर जी तोड़ कर, खूब मेहनत किया करते थे और माँ, दिन भर रसोई घर में मिलतीं। सब के आराम की फिक्र करतीं, खपती रहती थीं। पर माँ हमेशा मुस्कुराया करती थीं! रिश्तेदारी, ब्याह - त्यौहार, सब के जन्मदिन इन सारी बातों का न जाने कैसे माँ ही ख्याल रखा करतीं थीं। कोई ऐसा त्यौहार न था जिसे वे पूरे उत्साह से, परिवार को इकट्ठे रखे ना मनाती हों। कुलदीप खुराना को आज अतीत में झांकते हुए यूं महसूस हुआ कि, उन के उस छोटे से परिवार में, उस पुरखों के घर में, भारत की तेज धूप की मानिंद, अमन - चैन, पसरा रहता था। अब इत्ते बरसों के बीतने पर कुलदीप के जहन में बचपन की, अपने उस घर की सुखद यादें ही बाकी रह गई हैं। वे सोचने लगे, ''इंसान को खुशी के लिए बहुत नहीं, बस थोड़ा सा सुख चाहिए होता है। सच, ज्यादा क्या चाहिए, जी?''

कुलदीप खुराना जी अपने बीते समय को, मानों सुनहरे धुन्ध में लिपटा देख रहे थे। एक संतोष भरी साँस लेते हुए, अपने मन को हठात आधुनिक समय में, आधुनिक परिवेश में, अमरीका के अपने आलीशान आवास के आँगन में, खुराना जी ने तब खींच लिया था।

अपने लाडले बेटे को आगे बढ़ कर खुराना जी ने गले से लगा लिया तो दरवाजे का सहारा लिए खड़ी हुई रौनी की मोम, शरणजित भी मुस्कुराने लगीं। कहा ''बाप बेटे गले मिल लो जी'' - फिर आशीर्वाद देते हुए बोलीं ''हैप्पी बर्थडे बेटे मेरे सोने रौने जिन्दा रहै पुत्तर!'' इस के बाद अब मोम शरणजित रौनी के गले लग रहीं थीं।

रौनी का असली नाम है रौनक। अमरीका में सब उसे 'रौनी' बुलाते हैं। सुन्दर, गोरा चेहरा, छरहरा बदन जिसे जिम में नियमित एक्सरसाइज कर, तराशे रखे हुए, रौनी बड़ा ही खुशमिजाज और एक हैंडसम टीनएजर लड़का है।

आज रौनी अमरीका की खुली साफ सड़कों पे, स्पीड से, अपनी स्पोर्ट्स कार चलाते हुए हाईस्कूल आ पहुंचा। वह दसवीं क्लास में पढ़ता है। अमरीका में दसवीं क्लास के छात्र को सोफोमोर कहते हैं। अमरीकी शिक्षा प्रणाली में, स्कूल से पास होने का ग्यारहवीं क्लास, अंतिम वर्ष होता है।

रौनी की स्कूल के आगे उसकी क्लास के कई लड़के, लड़कियाँ अपनी कारों को पार्क कर के भीतर जा रहे थे। वे स्कूल के विशाल मकान में दाखिल हो रहे थे। सामने से रौनी को, क्लास मेट, राधा स्वामीनाथन आती हुई दिखलाई दी तो रौनी ने हवा में हाथ लहराते हुए उसे 'हाय' कहा तब दोनों वहीं रुक गए।

अमरीका में रहते हुए राधा अपने नृत्य गुरु सुश्री जयश्री बाललिंगम जी से नृत्यालय डान्स एकेडमी में भरतनाट्यम नृत्य कला सीख रही थी। राधा, दुबली पतली, लम्बी और कुछ सांवली सी आकर्षक किशोरी है। तेज नैन नक्शवाली राधा जब भी भरतनाट्यम नृत्य में पहने जाने वाले पारम्पारिक आभूषण व परिधान पहनती है तब खजुराहो में उकेरी प्राचीन प्रस्तर मूर्ति मानों सजीव हो गयी हो ऐसा आभास होता है। नृत्य व अभिनय कला में दक्षता राधा स्वामीनाथन के आकर्षक व्यक्तित्व की पहचान थी।

राधा के नयनों से कोई घटना छिप न पाती थी। वह सभी बातों पर नजरें रखा करती थी। अपनी उम्र के समवयस्क छात्रों में, राधा उस स्कूल के छात्रों में पढ़ाई में सबसे तेज छात्रा थी! सभी टीचर्स की भी वह फेवरिट थी। इसीलिये सब कहते थे '' देख लेना इस साल यह राधा स्वामीनाथन ही 'वेलेडिक्टोरियन' बनेगी।'' अमरीकी स्कूलों में 'वेलेडिक्टोरियन' वही छात्र बनता है जो हर विषय में और सारे छात्रों में सबसे ज्यादा, टॉप नंबर

लाए और हर बात में सर्वश्रेष्ठ हो। स्कूल के अंतिम वर्ष में जब वे स्कूल से पास होकर आगे की पढ़ाई के लिए कॉलेज जाते हैं और उनका दीक्षांत समारोह या ग्रेज्यूएशन समारोह होता है उस में स्टूडेंट्स की ओर से अंतिम विदा - भाषण या फेरवेल स्पीच देने का अवसर भी उसी स्टूडेंट को मिलता है जो हर क्षेत्र में, सब से अव्वल हो। राधा को आगे अंतिम साल स्कूल जीवन की समाप्ति पे ऐसा मौका मिलनेवाला है ये सभी जानते थे और राधा को खूब मानते थे।

'सो राडा, वो वट्स-अप ?' रौनी ने पूछा .... 'रो नई' मीन्स 'डोन्ट क्राई' आई विल कॉल यू नई।' राधा ने तुनक कर अपने नाम के गलत उच्चारण से, गलत प्रननसिएशन से खीज कर कहा! फिर आगे बोली, '' कहो राधा''। ऐसे बोलो न। मेरा नाम राधा है राधा! व्हाट रौनी, तुम तो देसी हो। ये अमरीकन मेरा नाम ठीक से नहीं बोल पाते पर तुम तो सही-सही बोलो।'' राधा ने मुस्कुराते हुए रौनी को सुधारते हुए छेड़ा!

अमरीकी लोग शब्द उच्चारण में अक्सर 'ध' या भ' बोल नहीं पाते। उन्हें ये स्वर बोलने में बहुत मुश्किल लगता है। कईयों से 'ढ' और 'भ' अगर नाम में हों तो ठीक से ऐसा नाम बोला ही नहीं जाता! अपनी मुस्कराहट छिपाते हुए 'ओके ओके' रौनी ने कहा ''ओके मैडम। डन! राधा।''

अब राधा ने आज की ताजा खबर देते हुए कहा ''डू यू नो, (हमारी क्लास में एक नया लड़का भारत से आया है!) अभी सीधा इंडिया से आया '' उसका नाम है राज।''

राधा ने पूरी खबर देते हुए कहा।

'ओह देन ही इज ए-एफ.ओ.बी. ? रौनी ने व्याख्या करते हुए तड़ से 'फोब' का तमगा जड़ दिया। फोब होता है। मतलब जो अभी अभी ताजा बोट से उतरा हो। मतलब अमरीका में नया आनेवाला भारतीय 'फोब' कहलाता है।

राधा मुस्कुराई और बोली, 'राज इन कच्चा नीम्बू', तुम पक्का नीम्बू' राधा ने फिर उसे छेड़ा। फिर राधा आगे बोली, 'एट लीस्ट राज इज नॉट एबीसीडी लाइक यू।' अमेरिकन बोर्न कन्फ्यूज्ड देसी 'तेरे जैसा!'

'उफ्फ' रौनी मन ही मन सोचने लगा 'अच्छा तो आज राधा उसे खूब परेशान करने के मूड में थी। चलो कोइ गल नईं' रौनी की माँ से सीखी पंजाबी, सोचते समय, जहन में आ गयी जो मन में घुली हुई थी।

'जस्ट किडींग मेन। टेक इट लाइटली' राधा ने बात को खत्म करते हुए संधि प्रस्ताव रख दिया।

उसी वक्त, वह नया लड़का 'फोब' का तमगा पाया हुआ 'राज' भी वहीं उन दोनों के सामने आ कर खड़ा हो गया। गेहूंई रंगत लिए चेहरा, उस पर बड़ी बड़ी आँखें। कुछ-कुछ खुली हुई सी थीं। जिनमें कुछ सहमी हुई इच्छाएं दबीं थीं। परन्तु उन आँखों में आत्मविश्वास तैर रहा था, जो इस मंझोले कद के लड़के के बिहेवियर में, उसके व्यक्तित्त्व में, भारतीय मध्य वर्ग की शालीनता का संगम लिए अमूमन मौजूद था।

भारत से खरीद कर लाये हुए और पहने हुए कपड़े, उसके तन पर सलीके से सजे हुए थे। आज अमरीकी स्कूल में पहले दिन यह छात्र अपने परिवेश से मानो समझौता करने का प्रयास कर रहा था। अमरीका के स्कूल में, अमरीकन छात्रों के बीच, उसके भारत से खरीदे वस्त्रों की रंगत कुछ अलग ही दीख रही थी। खुद राज भी, अमरीकी स्टूडेंट्स के बीच में कुछ अलग-अलग सा दिख रहा था। मानो कोई सिल्क के थान पे टाट का पैबंद लग गया हो।

शहर में ठण्ड शुरू हो चुकी थी पर राज ने उस रोज चेक प्रिन्ट की पीली और लाल कमीज पे ब्राऊन स्वेटर पहन रखा था, जो शायद उसने भारत में कुछ वर्ष पहले खरीदा हो और जिसे वह कई बरसों तक पहन चुका था। आज भी उसने वही ब्राऊन स्वेटर, शान से पहन रखा था, अमरीकी मौसम की भीषण ठण्ड से बचने को राज का स्वेटर और खुद राज दोनों असफल प्रयास कर रहे थे।

राज को उस पुराने स्वेटर को पहने हुए देख, रौनी को एकदम से दया आ गई। झट से अपना महँगा और आधुनिक फैशन का नया लेदर जैकेट उतार कर उसने राज के सामने बढ़ाते हुए कहा 'यार ये पहन ले। इट इज टू कोल्ड टुडे।'

इस तरह, अचानक से दिया हुआ, कीमती तोहफा इस नए परिचित रौनी ने जब राज को थमाया तो राज को बहुत आश्चर्य हुआ। घड़ीभर के लिए वह झेंप गया फिर सकपकाया और सर उठाकर गौर से इस नव परिचित रौनी को ताकने लगा। पहली बार किसी से मिलने पर इतना महँगा चमड़े का कोट, रौनी ने उतार कर थमा दिया था। यह राज को बड़ा अजीब लगा। पर रौनी ने उसे अपने

हाथों से, वहीं स्कूल के बाहर लोन पर खड़े-खड़े अपना जैकेट इस नए दोस्त को, जबरन पहना ही दिया। अपने इस नए दोस्त को सजा संवार दिया।

फिर रौनी, राज को लगभग ठेलते हुए, अपने संग उनकी क्लास की ओर ले चला। उस वक्त न जाने क्यूँ रौनी बहुत खुश था। रौनी को यूं महसूस हो रहा था मानों उसका कोई छोटा भाई सा यह नया दोस्त, आज अचानक उसे मिल गया था, यह खुदा का करम था।

कुछ ऐसे ही भाव रौनी के मन में आ - जा रहे थे। इन दोनों के पीछे-पीछे, चहकती हुई, राधा भी उन दोनों के संग, क्लास की दिशा में चल दी।

साल पूरा होते तो तीनों भारतीय स्टूडेंट्स में गहरी दोस्ती हो गई। राज को अमरीकी सिस्टम के कई सारे 'राज' भी इन्हीं दोनों ने धीरे-धीरे बतलाए और सिखलाए थे।

रौनी के मोम, डेड ने जब से रौनी पैदा हुआ था उसकी आगे की पढ़ाई का सारा खर्चा (जब उनका बेटा रौनी बड़ा होकर कोलैज जाएगा) इस के लिए बचत कर धन बैंक में जमा करना शुरू कर दिया था। अमरीकन कायदों के तहत ऐसी बचत पर विशेष टैक्स की छूट दी जाती है। ताकि छात्र जीवन में आगे की पढ़ाई के लिए प्रत्येक छात्र का भविष्य सुरक्षित हो जाए। वैसे भी स्थानीय सरकारी एजेंसियां हर इलाके में स्कूल चलाती हैं। बस सेवा, हर एक क्लास के पाठ्यक्रम की किताबें, स्कूल की पढ़ाई इत्यादि के लिए कोई फीस नहीं होती। हर इलाके में रहनेवालों के टैक्स से ही सरकारी एजेंसियाँ बिना फीस लिए अमरीकी स्कूलों को चलाती हैं। इसी टेक्स प्रणाली से स्कूल खर्च का निर्वाह होता है। यदि कोई बच्चा एक या दो दिन तक स्कूल न पहुंचे तो फौरन उस प्रांत की शाखाएं सक्रिय होकर उस छात्र के बारे में बारीक छानबीन शुरू कर देतीं हैं। किस कारण से छात्र स्कूल नहीं आ पाया उसे जानने की पहल और कवायद शुरू हो जाती है। यदि माता, पिता गैर जिम्मेदार साबित हों तब कठिन सजा और कोर्ट केस भी शुरू किया जाता है। यदि छात्र की गैरहाजरी के पीछे अभिभावक की गलती साबित हो जाए तब उन्हें जेल में भी जाना पड़ सकता है।

माता, पिता बच्चों पर कदापि हाथ नहीं उठा सकते। अन्यथा उन्हें जेल हो जाती है। ऐसे कड़े कानून अमरीका के 50 प्रांतों में लागू किये जाते हैं। इन सभी नियमों का पालन बड़ी सख्ती से किया जाता है और प्रत्येक अमरीकी नागरिकों से सख्ती पूर्वक करवाया भी जाता है।

रौनी कुलदीप खुराना एक रईस परिवार का बेटा था। अमरीका में इंजीनियरिंग की पढ़ाई संपन्न करने बाद कुलदीप खुराना साहब को एक बड़ी अच्छी कम्पनी में काम मिल गया था। कुलदीप खुराना जी ने कई अपने जैसे बुद्धिजीवी भारतीयों की तरह, खूब तगड़ा वेतन पाते हुए, अपनी नौकरी में, उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए अच्छी सफलता हासिल की थी। परिवार के लिए अति शानदार और आरामदेह घर अच्छे इलाके में खरीद लिया था। परिवार के सदस्यों के लिए हर तरह की सुविधा खुराना जी ने अपने बलबूते हासिल की थी। अपने और परिवार के हर मौज शौक को खुराना जी ने पूरा किया था।

खुराना साहब के परिवार के विपरीत राज के पापा, श्री भाईलाल पटेलजी को उनकी बहन श्रीमती सरोज पटेल ने अमरीका बुलाया था। सरोज बहन पहले स्वयं अमरीकन नागरिक बनीं फिर अपने बड़े भाई, श्री भाईलाल जी को सरोज बेन ने स्पॉन्सर किया। जिसकी बदौलत भाईलाल पटेल, अमरीका में ग्रीन कार्ड हासिल कर, परिवार सहित अमरीका के लिए चल पड़े थे। भारत में वे गुजरात प्रांत के अपने छोटे से शहर से इतनी दूर अमरीका तक आ पहुंचे थे। अनजान देस, अजनबी लोग एक बहन के परिवार के लिए सभी पराये दिखाई दिए।

इस तरह एक नए शहर में आ कर बसना, समूचे पटेल परिवार के लिए एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण किन्तु कठिन कदम था। बरसों से आबाद अपने गाँव के घर को, अपने मुल्क को छोड़, इस तरह, नए सिरे से गृहस्थी बसाना, सच में, बहुत कठिन काम था। पर 'हमारे परिवार की उन्नति होगी' बस इस एक खयाल से पटेल परिवार हिम्मत जुटाकर अपना पुरखों का गाँव और अपनी धरती छोड़कर इस पराई धरती अमरीका में बसने के लिए, सात समंदर पार कर, लम्बी यात्रा करता हुआ आ पहुंचा था।

इस एक निर्णय से मानों पटेल परिवार की पूरी दुनिया बदल गयी थी। कितना नया-नया था सब कुछ। कुछ समय बीता तो लगा मानों जीवन कुछ स्थिर होने लगा है। पर तब भी, संसाधनों के आभाव में जूझता पटेल परिवार, अपनी इस प्रथम अवस्था में अमेरिका में, अब तक तो अपने पैर पूरी तरह जमा न पाया था। हाँ, आर्थिक स्थिति मजबूत करने की कमर तोड़ कोशिश जारी थी। नए परिवेश में सफल होने की उम्मीद मन में लिए पटेल परिवार काम करने में व्यस्त हो गया था।

राज के पापा श्री भाईलाल पटेल जी ने शुरू में जो भी काम मिला उसे स्वीकार कर लिया। भाईलाल पटेल जी ने अमरीकी वॉलमार्ट सुपर स्टोर में अपनी पहली जॉब ले ली थी। राज की बा, मीनल बेन, पास पड़ौस के बच्चों की बेबी सीटींग - मतलब बच्चों की देखभाल का काम करने लगीं। मीनल बेन गृह कार्य में दक्ष थीं पर वे ज्यादा पढ़ी लिखी न थीं। गुजरात प्रांत का नडियाद गाँव उनका मैका था उनका मूल निवास स्थान था। राज पटेल को नजदीक की स्कूल में दाखिल कर दिया गया था। इस तरह भारत की माटी से हरा-भरा नन्हा पौधा, अब अमरीकी धरा पर पनपने के लिए छोड़ दिया गया।

कुछ दिनों के बाद, राज को, रौनी और राधा ने ही बतलाया था कि जो अमरीकी छात्र स्कूल से आगे की पढ़ाई, मतलब उच्च शिक्षा या यूनिवर्सिटी शिक्षा की फीस देने में कुछ असमर्थ हों तो वैसे (निर्धन या कम आय वाले परिवारों के बच्चों के लिए) अमरीका में 'प्रेसीडेंट स्कॉलरशिप' का सरकार द्वारा किया हुआ प्रायोजित प्रबंध भी होता है। यदि राज कोशिश करे तो यह स्कॉलरशिप राज को भी मिल सकती है। यदि राज अप्लाई करे तो इस योजना के तहत उसका चयन भी हो सकता है।

अब क्या था, राज ने राधा और रौनी की मदद लेकर फॉर्म भर दिए और अप्लाई कर दिया। प्रेसीडेंट ओबामा उस समय अमरीकी राष्ट्रपति थे। राज पटेल को हाईस्कूल पास करने के बाद, 'प्रेसीडेंशयल स्कॉलरशिप' या 'स्टूडेंट्स लोन' मिल गई। अब राज उसी के सहारे, आगे की पढ़ाई के लिए रौनी के ही कोलिज में दाखिला ले कर उस प्रतिष्ठित यूनिवर्सिटी को ज्वाइन कर पाया था। राज के इस तरह, उच्च शिक्षा के लिए इतने अच्छे कोलिज पहुँच जाने से, पटेल परिवार बहुत प्रसन्न हुआ। उन सब को यह सोच-सोच कर बेहद खुशी हो रही थी कि उनका बेटा राज, आगे पटेल परिवार से पहला सदस्य होगा जो अमरीकी विश्वविद्यालय में, कॉलेज लेवल की पढ़ाई करेगा और वो भी इतनी अच्छी तथा ऐसी सुप्रतिष्ठित संस्था का छात्र बनेगा। अब पटेल परिवार के लिए अमरीकी सफलता का स्वप्न साकार होगा ऐसा आभास होने लगा था। आशा, सदा बलवती होती है।

एक साल ऐसे ही और बीत गया। अब इन तीनों में मित्रता गहराने लगी। रौनी, राधा और राज की दोस्ती, एक जिंदा त्रिकोण की तरह थी। एक सिरे पर था रौनी खुराना -जो एक अमीर घराने का, बिंदास बन्दा था। दूसरे कोण पर थी तेज छात्रा राधा स्वामीनाथन। राधा को विश्वास था कि आगे चलकर वह डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करेगी। उसे ऐसा मात्र अंदेशा ही न था, उसे अपनी दक्षता पर और अपनी लगन पर, पूरा भरोसा भी था। वह अपने चयनित विषयों की पढ़ाई में हमेशा व्यस्त रहा करती थी और अव्वल दर्जे से पास भी हुआ करती थी। मित्र मंडली के त्रिकोण के तीसरे कोण पर था अपने इस नए अमरीकी जीवन में स्ट्रगल करता हुआ राज पटेल। कहते हैं न कि जब इंसान का 'लक' अच्छा हो तो दोस्त भी अच्छे मिलते हैं। उसी तरह इन दो रौनी और राधा जैसे समझदार दोस्तों ने मिलकर, राज की तकदीर संवारने में बहुत बड़ा रोल निभाया। राज जिस कॉलेज में था वहीं ये दोनों आ जाया करते और अक्सर राज को अपने संग कॉफी पिलाने कैफेटेरिया में ले चलते।

एक रोज, राधा के घर, राज पटेल के परिवार को व खुराना परिवार को खास निमंत्रण देकर डिनर पे बुलवाया गया। रौनी के परिवार से पहली बार, पटेल परिवार के लोग मिले।

प्रथम मुलाकात के वक्त भाईलाल पटेल, कुलदीप खुराना साहब का हाथ थामे उन्हें गदगद कंठ स्वर से 'खूब-खूब आभार भाई' कहने लगे। खुराना जी को बरसों पहले, अपने देहली के घर में आबाद, अपने स्वर्गीय पिताजी की झलक, भाईलाल पटेल जी के विनम्र चेहरे पर दिखलाई दी। उनकी यादें फिर सजग हो गईं। खुराना जी की आँखें, इस संभ्रांत सज्जन श्री भाईलाल पटेल जी को देखकर, आज अचानक नम होने लगीं। पंजाबी खुराना साहब, गुजरात से पधारे पटेल साहब का हाथ थामे बड़ी देर तक वहीं खड़े रहे और कुछ देर बाद कुछ भर्राये गले से बोले, 'पटेल सा' ब ये तो जिन्दगी है। हम एन. आर. आई. लोग किस्मत के चलाये बन्दे हैं। क्या है न जी, ये जो किस्मत होती है न जी, वो बड़ी पवरफूल होंदी है जी, वो जित्थे ले जान्दी है, हम रब दे बन्दे बस सर उठाये उत्थे ही चल देते हैं ...

...कहना न होगा, उस शाम की दावत शानदार रही।

कुछ समय और बीत गया और अब राधा, रौन और राज तीनों 18 साल के हो रहे थे।

एक रोज रौन, राज के घर के इलाके से गुजर रहा था तो उसने अपने दोस्त को टेक्स्ट मेसेज भेज दिया, 'यार राज, चाय पिलाएगा? तेरे घर के नजदीक से गुजर रहा हूँ।'

राज ने फौरन जवाब दिया 'आ जा दोस्त। बा से कहता हूँ चाय

और नाश्ता दोनों रेडी रहेंगे।' कुछ देर में, रौन, राज पटेल का परिवार जहां रहता था उस पहली मंजिल के छोटे से अपार्टमेंट के दरवाजे पे आ पहुंचा। उसके इंतजार में दरवाजे पर राज को मुस्कुराता हुआ खड़े हुए देखा तो रौनी भी मुस्कुराया और अपने दोस्त के छोटे से घर में राज के काँधे पे हाथ रखे हुए दाखिल हो गया। राज की बा ने, एक छोटी टेबल पर, चाय और गुजराती नाश्ते, स्टील की तश्तरियों में सजा कर बड़े करीने से रखे हुए थे। गुजराती व्यंजन थेपला, ढोकला और मोहनथाल मिठाई, तश्तरियों में सजाये गए थे। पानी से भरे गिलास भी थे। उस रोज, रौनी को राज के इस छोटे से घर में इतना स्नेह मिला कि वह निहाल हो गया।

कुछ दिनों बाद, रौन टेनिस क्लब में मैच खेल रहा था तो उसने देखा राज वहां स्पोर्ट्स क्लब के 'फ्रंट डेस्क' पर काम कर रहा था। रौनी ने सोचा 'चलो अच्छा है मेरे यार को पॉकेट मनी मिल जाएगी। अभी से पढ़ाई के साथ साथ काम भी करने लगा ये राज। रेस्पोंसिबल है बन्दा।' उसे अपने मेहनतकश दोस्त पर गर्व हुआ।

फिर कुछ दिनों बाद रौनी और राधा की फोन पर बात हो रही थी तब राधा ने ही बतलाया था कि उनका दोस्त, राज, दो बसें बदल कर, स्पोर्ट्स क्लब पहुंचता है और वहां रोजाना पूरे 6 घंटे काम करता है और कॉलेज की क्लास अटेंड करने के बाद फिर घर जा कर आगे पढ़ाई और कॉलेज में दिया गया होमवर्क और एक्स्ट्रा रिसर्च भी करता है।

राधा और रौनी दोनों सुखी और समृद्ध परिवार से थे और उन्हें राज के इस तरह 'स्ट्रगल करने की बात' या कड़ा परिश्रम करने पर, मन ही मन अपने दोस्त पर तरस भी आ रहा था और अपने दोस्त की कर्मठता पर उन्हें बहुत गर्व भी हो रहा था। राज और रौनी कॉलेज के कई सब्जेक्ट की क्लास में जैसे 'ह्युमेनिटिक्स' जैसे विषयों के लिए एक साथ पढ़ाई किया करते थे। परंतु रौनी ने मेन सब्जेक्ट 'कॉमर्स' लिया था और राधा ने लिया था साईंस! राधा मेडीसीन में आगे डाक्टरी करने की सोच रही थी। राज ने 'आर्कीटेक्चर' अपने लिए मुख्य विषय चुन लिया था। कुछ सब्जेक्ट्स के लिए ये लोग साथ होते और दूसरे विषयों की क्लास में अलग होते। कौन जाने जीवन में आगे क्या होगा, परन्तु जो होगा सो होगा। इस वक्त तो तीनों छात्र जम के अपना-अपना काम करने में व्यस्त थे।

एक दिन की बात है। अचानक कुलदीप खुराना जी का भाईलाल पटेल के मोबाइल पर फोन आया, 'हेल्लो हेल्लो, पटेल सा' ब रौनी आया है क्या आप के यहां?'

खुराना जी के आवाज में एक अजीब तरह की बेचैनी और हड़बड़ाहट थी।

'नहीं तो खुराना भाई। राज और रौनी कॉलेज से चार बजे के पहले नहीं लौटते, क्यूँ क्या हुआ?' भाईलाल पटेल ने पूछा।

'आप फौरन अभी-अभी टीवी खोलो जी, देखो तो ये कैसी न्यूज आ रही है। अपने बच्चों की कॉलेज है न हाँ हाँ वही -- वहीं पे कोई हादसा हो रहा है पटेल भाई। स्कूल में शूटिंग हो रहा है।' खुराना जी की आवाज में अब साफ चिंता और एकदम भय के भाव उभर आए थे।

'शूं कहो छो साहेब। हे भगवान, अरे टीवी चालू करो तो' उन्होंने अपनी पत्नी को घबड़ाकर आदेश दिया और खुराना जी ने वही सुना जो उनके घर पर रखे टीवी सेट से प्रसारित हो रहा था। वहां पटेल जी के घर पर भी न्यूज चैनल की रिपोर्टर वही सब बतला रही थी जो खुराना जी के घर पर रखे टीवी सेट से प्रसारित हो रहा था। टीवी रिपोर्टर की वही सधी हुई परन्तु चिंतित आवाज, पटेल जी के घर से भी आने लगी। मानों ये हादसे की खबर द्विगुणित हो कर बार-बार आगाह उन्हें किये जा रही थी, जिसे सुन कर दोनों घरों में, पेरेंट्स के कलेजे मुंह को आने लगे थे।

ब्रेकिंग न्यूज यही था कि एक गुस्से से पगलाए लड़के ने जिसका नाम 'सांग व्ही चो' था उसने कॉलेज के 32 छात्रों को गोलियों से भून दिया था। पुलिस का इमेरजैंसी दस्ता जिसे अमरीका में ''स्वाट टीम'' कहते हैं वह भी वहां तैनात था।

कई एम्ब्युलेंस यूनिट, कई सारे पुलिस दस्ते, कॉलेज केम्पस को घेर कर चौकन्ने हुए तैनात थे। इस भयानक हादसे में फंसे हुए छात्रों और टीचरों तथा अन्य कार्यकर्ताओं को सलामती के दायरे तक, पुलिस के लोग, सावधानी पूर्वक पहुंचाने का काम कर रहे थे।

पटेल जी के घर और खुराना जी के घर पर दो जोड़ी माता और पिता, अपने अपने भगवान् से हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे थे और अपने बच्चों की जान बच जाए इसकी दुआएं माँग रहे थे।मानों भगवान ने इनकी प्रार्थनाएं सुन ली हों इस तरह लगभग एक ही समय पर दोनों घरों में फोन की घंटियाँ बजने लगीं।

'हेल्लो डेड, रौनी हूँ। मैं ठीक हूँ, मैं ठीक हूँ। डोन्ट वरी डेड,'

रौनी की ऊंची आवाज खुराना दंपति के कानों में मानों अमृत घोलने लगी।

दूसरी तरफ पटेल जी के घर पे 'हेल्लो पापा, मेरी बा से कहो मैं सलामत हूँ।' पटेल जी के घर में 'राज' की आवाज गूंजी तो, 'हे रणछोड़ राय लाज राखी रे।' राज की बा ने चीखते हुए हाथ पूजा की मुद्रा में ऊपर उठा लिए और मीनल बा जमीन पर ही धम्म से गिर पड़ीं। उन के आँसुओं के संग, मानों गंगा, यमुना ही बह चलीं। बच्चे जब घर सही सलामत लौट आए तो राधा भी उन के साथ खुराना जी के घर आयी। उसी से पूरा वाकया क्या हुआ था उस पूरी घटना के बारे में विस्तार से खुराना व पटेल परिवार को पता चला।

राधा ने खुराना साहब को बतलाया कि 'राज' ने उनकी कॉलेज के बड़े फाटक से, एक बहुत बड़ी सी गन लेकर आते हुए उस खतरनाक मुजरिम छात्र को, जो उनकी कॉलेज का ही एक पूर्व छात्र था, देख लिया था। उसके असंयमित व्यवहार से नाराज होकर कॉलेज ने उसे बाहर कर दिया था और शायद इसी कारण वह छात्र इतना क्रुद्ध था और दिमागी संतुलन खो बैठा था। उस को कॉलेज के परिसर में दाखिल होते हुए, सब से पहले, राज पटेल ने ही देख लिया था। उसको देखते ही राज का माथा ठनका। उसे मालूम हो गया अनहोनी घटनेवाली है। वह फुर्ती से दौड़ता हुआ, लगभग छलाँग लगाता हुआ सीधा रौनी की क्लास की ओर भागा।

रौनी के क्लास में पहुँच कर, अपने दोस्त का हाथ पकड़ कर, लगभग खींचता हुआ, राज अपने संग दूसरे कई छात्रों को, कॉलेज के पिछले दरवाजे से निकलने का इशारा करते हुए सभी को बचा कर, बाहर खड़े पुलिस के 'सेफ जोन' तक लाने का बहादुरी का काम कर रहा था। उस वक्त राज ने जो किया था उसी के कारण रौनी और उसकी पूरी क्लास के पचास छात्रों की जान बची। उस खूनी दरिन्दे ने पगलाए, बन्दूक से गोलियों की बौछार से आनन फानन में जो सामने दिखा उन पर गोली दाग दी, उस 'मौत के सौदागर' से राज की सूझबूझ ने ही आज रौनी और 49 अन्य छात्रों को बचा लिया था। मौत सामने विकराल रूप लिए खड़ी थी पर राज की सूझबूझ से उस हादसे के दौरान अपने छात्र मित्रों को बचाकर सेफ जोन में पहुंचाने से आती हुई भयानक मौत की परछाई भी टल गई थी।

राधा से, इस हैरतअंगेज घटना का आँखों देखा विवरण सुन कर खुराना साहब और शरणजित जी भाव विह्वल हो उठे। राधा और उसके माता पिता, स्वामीनाथन परिवार, खुराना परिवार मिलकर, पटेल साहब के घर आ पहुंचे थे और वहां पहुँच कर सभी ने बारी -बारी से बहादुर राज को गले से लगा लिया था। भर्राये गले से, खुराना जी ने कहा 'बेटे राज, बड़े बहादुर हो तुम! दोस्त हो तो तुम जैसा। तुमने मेरे रौनी को और इतने सारे बच्चों को ऐन वक्त पर बचा लिया। हम तुम्हारे ऋणी हैं बेटे।' विनम्रता की मूरत से राज ने तब झुक कर अपने खुराना अंकल जी के पैर छू लिए थे और कहा, 'अंकल जी, रौनी, मेरा बड़ा भाई है। मैं भी आप का बेटा हूँ। आज आप के आशीर्वाद मुझे मिले बस और क्या चाहिए।'

अमरीका की जिन्दगी में ऐसे हादसे बहुत होते हैं। क्राइम ब्रांच के अनुसार स्कूलों में और अमरीकी उच्च शिक्षा के केंद्रों में ऐसी हिंसक वारदातें अक्सर होती रहती हैं। ऐसे भयानक क्राइम आये दिन घट रहे हैं। किन्तु यदाकदा कोई बीच बचाव की घटनाएं भी सुनने में आती हैं। कईयों की हाजिरजवाबी के, बहादुरी के किस्से भी सुनने को मिलते रहते हैं। अमरीकी कानून व्यवस्था ऐसे जघन्य व संगीन अपराधों को रोकने का प्रयास कर रही है, किन्तु अमरीकी हथियार बनाने की लॉबी अत्यंत प्रचंड है। अमरीकी कानून अपने नागरिकों को हथियार रखने देता है परन्तु ऐसी गनें जिनसे एक साथ कई गोलियाँ छूटतीं हों जो युद्ध क्षेत्र के लिए इस्तेमाल होतीं हैं उन का रोजमर्रा की आम ज़िंदगी में क्या काम? निहत्थे छात्रों की सुरक्षा के बारे में कौन सोचेगा या कौन छात्रों की सुरक्षा का जिम्मेदार होगा? यह विचारणीय प्रश्न है। बेकसूर और मासूम जानें व्यर्थ में ना खोएं यह कई अमरीकी नागरिक सोचने लगे हैं।

सच्ची इंसानियत पर भरोसा बस इन्हीं बातों से, आज भी कायम रहता है जब नागरिक एक-दूसरे को सावधान करते हैं, सहायता पहुंचाते हैं और सुरक्षा देते हैं। ऐसे मन को दु:ख में डुबो देनेवाले हादसों के बीच भी कभी कभार यदि ऐसा 'राम भरत मिलाप' भी देखने को मिले तब तो भारतीय संस्कारों की लम्बी परम्पराओं पर हमें बेसाख्ता गर्व हो उठता है।

सच तो यही है कि भारत की पावन माटी की खुशबू दूर-दूर तक आ कर फैल चुकी है। जहां कहीं भी अच्छे भारतीय लोग जा-जा कर बसे हैं और सच्ची मानवता का धर्म निभा रहे हैं, वहीं पर भारत माता की सोंधी माटी अपनी खुशबू बिखेर रही है।

यह कहानी है, तीन भारतीय अमरीकन टीनेजर्स की।

✠✠✠

उसका नाम

आस्था नवल

"रूपा ने रेसेपी लेते हुए बताया था कि वह और अरविंद मिलकर खाना बनाते हैं। यह भी बताया था कि शादी के बाद अरविंद नौकरी छोड़कर आगे पढ़ाई करेगा और बस रूपा ही घर का खर्चा चलाएगी। 'उसके' लिए यह बहुत अजीब दुनिया थी। आदमी औरत शादी से पहले साथ रहें, साथ में खाना पकाएँ, औरत कमाए और पति पढ़ाई करे। यह सब जितना आश्चर्यजनक था, उतना ही आकर्षक भी।"

हम अपने आसपास कितनी ही कहानियाँ बुन सकते हैं। पता नहीं, कहानी बुनने की जरूरत होती है या कहानी पहचाननी होती हैं। हम थोड़ा-सा यदि महसूस करना सीख लें या थोड़ा-सा अपने से बाहर निकलकर देखें, पता चलता है कि हम ही नहीं हैं; जो किसी को याद करके रोते हैं या दोस्तों के साथ कभी-कभी बिन बात के ही खुशी मनाते हैं। आदमी हर जगह एक-सा होता है। आदमी से अर्थ पुरुष से नहीं मानव-जाति से है। संबंध भी एक जगह एक-से ही होते हैं, उनमें टकराहट भी एक-सी होती है। हर ओर सुबह भी आती है और शाम भी आती है। हम चाहें तो भी रात को रोक नहीं सकते, न आने, न जाने से।

फिर भी हम सब अपनी-अपनी कहानी में अटके हुए बस अपने-अपने ग़मों को रोते रहते हैं और अपनी खुशी में उलझे रहते हैं। ऐसे ही वह भी उलझी रहती थी अपने परिवार में, बच्चों में, रोजमर्रा की भाग-दौड़ में। उसने अपने परिवेश से बाहर कभी झाँकना नहीं चाहा था। पहले उसका परिवेश वही था; जो उसके माता-पिता का था, फिर उसके पति ने एक परिवेश दिया और अब ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े हो रहे हैं, वह उनकी नई दुनिया से सीख रही है। उसे लगता है कि जो उसकी दुनिया है, वही सबकी दुनिया है। जब-जब उसकी दुनिया बदलती है, तब-तब समाज भी बदलता है। संयोग से उसके पड़ोस में उसकी जैसी ही स्त्रियाँ हैं, जो केवल अपने बच्चों और पति को ही दुनिया समझती हैं। वह कभी-कभी नई फिल्में देखती है तो उन्हें देखकर यही सोचती है कि ऐसा सच में नहीं होता, फिल्में तो केवल कल्पना होती हैं। उसे लगता है औरत को उसकी ही तरह होना चाहिए और उसे अपनी माँ की तरह। उसके अनुसार हर व्यवसायी उसके पति की तरह होता है और हर पति कैसा होता है यह कभी सोचा ही नहीं। उसकी साधारण दुनिया में सब्जी-भाजी खरीदना और बनाना ही स्त्री का मुख्य काम है। वह इसे बखूबी निभाती है। इसलिए अपने-आपको एक आदर्श नारी के रूप में देखती है।

उसकी दुनिया तभी तक आदर्श थी, जब तक रूपा, उसके पति की चचेरी बहन उसके घर रहने नहीं आई थी। रूपा के माता-पिता का देहांत उसके बहुत बचपन में ही हो गया था।

सम्पर्क: 23042, Weybridge Sq. Broadlands, VA 20148, USA, asthanaval@gmail.com

रूपा को पढ़ने का शौक था, होस्टल में स्कॉलरशिप ले-लेकर बड़ी हुई और यूनिवर्सिटी ग्रांट लेकर बहुत सालों से विदेश में ही रह रही थी। परिवार के नाम पर रूपा के लिए बस इसी का परिवार था। इसका नाम कुछ भी हो सकता था। सीमा, सुषमा, आभा, रानी, रेखा, कुछ भी। इसने अपने नाम को कभी कोई महत्व नहीं दिया था और न ही कोई नाम बनाने की इच्छा की थी। पहले सब इसे ओमप्रकाश की बेटी की तरह जानते थे और अब सुधीर की बीवी की तरह और बच्चों के स्कूल में बच्चों की माँ के रूप में। उसे इससे अधिक कुछ होना भी कहाँ था।

यह अक्सर सुधीर से रूपा के बारे में जानना चाहती थी, पर सुधीर स्वयं यही जानता था कि रूपा बहुत होशियार है और बचपन से आज तक कुछ-न-कुछ पढ़ ही रही है। कभी-कभी रूपा का पोस्टकार्ड आता था और संक्षिप्त-सा कुछ लिखा होता था। सुधीर के माता-पिता जब तक थे, तब तक रूपा थोड़ी लंबी चिट्ठी भेजती थी। कभी-कभी ताऊ-ताई के लिए कोई उपहार भी भेज दिया करती थी। सुधीर के माता-पिता अक्सर उसकी चिट्ठी देखकर नाराज ही होते थे और रूपा की निंदा किया करते थे। बच्चों को जगह-जगह से आए पोस्टकार्ड देखकर बहुत रोमांच होता था और वह किसी विदेशी औरत की अपनी बुआ के रूप में कल्पना किया करते थे। जब रूपा का पोस्टकार्ड आया, जिसमें लिखा था कि वह कुछ दिनों के लिए भारत आ रही है और उसके घर में रहेगी तो एक अजीब सी उथल-पुथल मच गई। सुधीर ने भी रूपा को बचपन में ही देखा था, कुछ बारह-तेरह साल के ही रहे होंगे; जब रूपा होस्टल में चली गई थी और तबसे कभी आई ही नहीं। बचपन में सुधीर की रूपा से तुलना होती और रूपा के अच्छे नंबरों का हवाला देकर डाँट भी पिटती। बड़े होते-होते वह अच्छाई बुराई में बदल गई। सुधीर के माता-पिता दूसरों के सामने सुधीर को अच्छा बताते और रूपा को बुरा।

पता नहीं क्यों हमें किसी एक को अच्छा बताने के लिए दूसरे को बुरा क्यों बनाना पड़ता है? ऐसी क्या बाध्यता होती है कि एक को दूसरे के साथ तौलना ही होता है। क्यों हम किसी एक की तारीफ किसी दूसरे की बुराई किए बिना नहीं रह पाते। हर कोई कहीं-न-कहीं अच्छा और कहीं-न-कहीं बुरा हो सकता है। हर एक व्यक्ति अपने में अलग होता है, उसकी अपनी खूबियाँ होती हैं और अपनी खामियाँ। आइन्स्टाइन ने कहा था कि यदि मछली को योग्यता की पहचान उसे पेड़ पर चढ़ाना चाहोगे तो वह सारी उम्र शर्मिंदगी में ही रहेगी। पर खैर! सुधीर को पढ़ने में कोई रुचि थी नहीं, इसलिए रूपा के अच्छे नंबरों से उसे कभी परेशान नहीं किया और अपनी तारीफ उसने कभी सुनी नहीं, क्योंकि सुधीर के माता-पिता मानते थे कि बच्चों की तारीफ पीठ पीछे ही करनी चाहिए नहीं तो वह सिर चढ़ जाते हैं। सुधीर ने बी.ए. पत्रकारिता से किया था और बहुत जल्दी पिता का व्यवसाय संभालने लगा था। रूपा के विषय में सोचने का अवसर उसे कभी मिला नहीं।

पर जिस दिन से सुधीर की पत्नी ने पोस्टकार्ड देखा था, तबसे वह विचलित थी। फिल्मों की कई खलनायिकाओं जैसे चेहरे में रूपा की कल्पना कर चुकी थी। अपने आस-पास की सहेलियों को रूपा की सच्ची झूठी कहानियाँ बता चुकी थी। घर को और अधिक सुव्यवस्थित करने में जुट गई थी। अपनी एक सखी से कुछ पश्चिमी व्यंजनों की रेसेपी भी ले आई थी। बच्चों को बुआ के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह भी सिखाने लगी थी। घर में जब कोई भी आने वाला होता था तो ऐसा ही होता था। सुधीर और बच्चे इस ड्रिल से परिचित थे। बस पश्चिमी पकवान की प्रैक्टिस थोड़ी नई थी। वह हर रोज अपने बाल भी अलग तरह से संवारने की कोशिश कर रही थी, जिस पर सुधीर और बच्चों का कभी ध्यान नहीं गया।

उसके लिए रूपा किसी दूसरे मेहमान की तरह नहीं थी। वह कहीं-न-कहीं रूपा से बिना मिले ही भयभीत थी। रूपा उसके परिवेश से बाहर थी और ऐसी स्त्री थी, जैसी स्त्री की कल्पना भी वह नहीं कर पाती थी। कोई भारतीय स्त्री अकेले अपने बल-बूते पर विदेश में जाकर रहे, यह बहुत भयावह-सी बात थी। पता नहीं क्यों वह रूपा से बिना मिले ही उससे बेहतर बनने की कोशिश करने लगी थी। जिस दिन रूपा को आना था, उससे एक रात पहले, वह सो नहीं पाई, बार-बार सुधीर से उसके रंग-रूप के बारे में पूछती। कभी पोस्टकार्ड में रूपा की लिखावट देखती। सुधीर एयरपोर्ट लेने गया तो उसने बहुत सुंदर अक्षरों में रूपा के नाम का बोर्ड बना दिया। रूपा जब घर पहुँची तो उसे रूपा को देखकर अचंभा-सा हुआ। उसने मन में जिस खलनायिका की छवि बनाई थी, रूपा बिल्कुल भी वैसी नहीं थी। उसने तो पड़ोस की स्त्रियों से सुना था कि विदेश में अकेली रहने वाली स्त्रियों के बाल अैर कपड़े दोनों ही बहुत छोटे होते हैं। ऐसी स्त्रियों को बच्चों से भी दूर रखना चाहिए, अनाप-शनाप पट्टी पढ़ा देती हैं। सिगरेट-शराब के बिना रह भी नहीं पाती हैं।

पर यह क्या! रूपा तो एकदम साधारण भारतीय लड़कियों जैसी

लग रही थी। छोटा-सा कद, साँवला रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, पर उन पर चश्मा, बिना किसी रुचि के सँवारे गए लंबे बाल। रूपा को तो जैसे अपने रूप की कोई परवाह ही नहीं थी। एक लंबा कुर्ता और जीन्स। कहीं से भी असभ्य नहीं थी। फिर गोरी भी नहीं थी। उसके हिसाब से विदेश में हर कोई गोरा होता है। जन्म से न हो तो विदेश जाकर हो जाता है। रूपा सफर के कारण थक गई थी। सुधीर को भी सोने की जल्दी थी। बच्चे सो ही चुके थे। रूपा ने औपचारिक हैलो बोला और उसने भी। तुरंत ही वह घर की मालकिन बनकर सुधीर को बताने लगी कि रूपा का सामान किस कमरे में जाएगा आदि। रूपा को उसने अपने दिवंगत सास-ससुर का कमरा दिखाया, बाथरूम में साबुन इत्यादि कहाँ है, बताया और तुरंत रसोई में चल दी। सुधीर सोने चला गया और वह रूपा के फ्रेश होने का इंतजार करने लगी। रूपा नहा-धोकर बाहर आई और दोनों की औपचारिकता को तोड़ने के लिए बोली, 'सो! आई थिंक हम एक ही उम्र के होंगे। मुझे तो कभी सुधीर ने अपनी बीवी-बच्चों का नाम भी नहीं बताया। कभी पोस्टकार्ड का कोई उत्तर ही नहीं दिया'।

उसने तुरंत इतराते हुए कहा, 'नाम जानकर क्या करोगी। ये तुमसे दो साल बड़े हैं तो मैं रिश्ते में तुम्हारी भाभी लगती हूँ, भाभी ही कहो। बच्चों से सुबह मिलना हो ही जाएगा। अब बताओ सब्जी के साथ रोटी खाओगी या परांठे'।

रूपा ने बिना किसी औपचारिकता के कहा, 'नहीं नहीं, मैं बस एक कप चाय पीना चाहूँगी। अगर कोई साथ में बिस्किट या रस्क मिल जाए तो नथिंग लाइक इट। ये सब्जी मैं कल खाऊँगी।'

रूपा की अनौपचारिकता उसे अच्छी लगी, पर खाना न खाने की बात कुछ जीम नहीं, पर घड़ी देखकर कुछ ज्यादा बोली नहीं और चाय का पानी चढ़ाने रसोई में घुस गई। पीछे-पीछे रूपा भी आई और उसने अपनी पहली बार मिली भाभी से बहुत आग्रह किया कि वह उसे चाय बनाने दे, पर सुधीर की पत्नी ने यह तो कभी सीखा ही नहीं था कि घर आए मेहमान से काम करवाए। मौका देखकर उसने बहुत धीरे से रूपा से कहा, 'सुनो रूपा, एक रिक्वेस्ट है, प्लीज घर में सिगरेट-शराब मत पीना और बच्चों को कभी मत बताना कि तुम यह सब पीती हो। तुम्हारे भाई भी बच्चों को पता नहीं लगने देते।'

अचंभित-सी रूपा ने इस घरेलू स्त्री पर सर से पाँव तक नजर डाली, सामान्य-सा कद, सुंदर गोल चेहरा, कुछ परेशान-सी काजल वाली आँखें, बहुत ही सुव्यवस्थित बाल जैसे अभी-अभी संवारे हो। रूपा ने पूछा, 'आपने ये कैसे सोच लिया कि मैं सिगरेट और शराब पीती हूँगी?'

'तुम विदेश से आई हो ना। और फिर अकेले रहती हो।'

उसके भोलेपन पर रूपा को बहुत हँसी आई और कुछ मुग्ध होती सी बोली, 'तो आपको लगता है विदेश में जो लड़की अकेली रहती है, वह सिगरेट-शराब पीती होगी और क्या-क्या लगता है?'

'नहीं! मैंने सुना है कि विदेश में बहुत सर्दी होती है तो शायद पीनी ही पड़ती है।'

रूपा को समझ आ गया कि यदि वह और हँसेगी तो उसकी अभी मिली भाभी को अच्छा नहीं लगेगा। इतने सालों बाद किसी रिश्तेदार से मिलकर उसे नाराज कर देना ठीक नहीं होगा। सच में उसे रूपा का मुस्कराना बहुत खल रहा था। उसे लग रहा था जैसे रूपा उसका उपहास उड़ा रही हो। वह फिर घर की मालकिन की तरह बिना किसी हाव-भाव के बोली, चीनी कितनी लोगी?'

रूपा ने कहा, 'नहीं, मैं चीनी नहीं लेती। थैंक यू।' फिर कुछ विराम के बाद बोली, 'भाभी! मैंने सिगरेट कभी नहीं पी। मैं हैल्थ डिपार्टमैंट में हूँ और साँस से जुड़े रोगों पर ही शोध कर रही हूँ। जानती हूँ कि सिगरेट के क्या-क्या नुकसान हो सकते हैं। शराब सुनकर बहुत अजीब लगता है, पर हाँ कभी-कभी दोस्तों के घर जाती हूँ तो वाइन ले लेती हूँ, आज तक कुछ खास टेस्ट डेवलप नहीं कर पाई इसलिए पीने का शौक नहीं रखती हूँ और मैं जहाँ रहती हूँ ना, वहाँ ट्रॉपिकल वेदर है। लगभग बोम्बे की तरह। तो ऐसी सर्दी नहीं पड़ती।' चाय की चुस्की भरते हुए रूपा ने उससे पूछा, 'आप बताओ, आपने बारे में?'

'नहीं नहीं, मैं तो सिगरेट और शराब के बारे में सोच भी नहीं सकती। हमारे यहाँ की औरतें...' वह बहुत देर तक रूपा को अपने परिवेश और समाज की औरतों के बारे में बताती गई, बिना यह समझे कि रूपा उससे क्या पूछना चाह रही थी। जब वह बोलना बंद हुई तो रूपा ने चाय खत्म करते हुए कहा, 'चाय बहुत अच्छी बनी थी। आपके समाज की औरतों के बारे में जानकर अच्छा लगा। कल फिर बात करेंगे। वैसे मेरा सवाल था कि आप काम क्या करती हो? चलो गुड नाइट।'

सुधीर की पत्नी को अपनी बात पर बहुत शर्म आई। यूँ ही सिगरेट-शराब की बात लेकर बैठ गई। सारी रात वह सोचती रही कि उसने रूपा के सवाल को ठीक तरह से क्यों नहीं समझा। पता नहीं रूपा क्या सोच रही होगी उसके बारे में। असल में उससे कभी किसी ने यह सवाल किया ही नहीं था कि वह करती क्या है, इसका क्या जवाब हो सकता है, उसे पता भी नहीं था। एक गृहणी कितना कुछ करती है, रूपा को क्या पता? उसने रात-भर में एक बहुत लंबा चौड़ा-सा उत्तर बनाया कि वह दिन-भर में क्या-क्या करती है, पर फिर उस उत्तर को बार-बार मस्तिष्क के पन्नों से मिटाया और एक नया उत्तर बनाया। असल मे वह जानती थी कि रूपा के सवाल का जवाब है कि वह एक हाऊस वाइफ है, कोई नौकरी नहीं करती। आज से पहले खुद को हाउस वाइफ कहने में उसे कभी शर्म नहीं आई थी, पर कुछ अनकहा-सा था; जो वह अपने आपको रूपा से बेहतर दिखाना चाहती थी। शायद उसने अकसर अपने बच्चों की आँखें में बुआ का नाम आते ही चमक को देखा था या बहुत बार सुधीर से सुना था, 'रूपा तुम जैसी औरतों में नहीं आती।' शायद सुधीर के शब्दों में हिकारत की महक आती थी। इसीलिए उसके पास बस यही कुछ दिन थे, अपनी दुनिया यानि परिवार को दिखाने के लिए वह रूपा से बेहतर है, पर पहली मुलाकात में ही उसे लगा कि रूपा उसका उपहास उड़ाकर उसे निरुत्तर छोड़ गई।

आज भी वह ठीक तरह सो नहीं पाई। रूपा की काल्पनिक छवि टूट चुकी थी। रूपा को देखकर उसे निराशा भी हुई थी; क्योंकि पड़ोसी की देवरानी जब विदेश से आई थी तो कितना बन-ठन के निकलती थी और तड़क-भड़क के साथ आई थी। रूपा जैसी साधारण लड़कियाँ तो उसे रोज दिखती हैं। कहीं-न-कहीं वह अपने पड़ोसियों को दिखाना चाहती थी कि उसका संपर्क भी वैसी छवियों से है, जैसी फिल्मों में दिखती है, पर रूपा तो हिंदी भी बड़े सहज तरीके से बोल रही थी। थोड़े बहुत अंग्रेजी के शब्द तो आजकल सब ही प्रयोग करते हैं।

सुबह बच्चों को उठाते हुए उसने बताया कि बुआ वैसी नहीं है जैसा वह सोच रहे थे। उसने बच्चों को बुआ से मिलने के लिए इतना निरुत्साहित किया कि बच्चे जल्दी-जल्दी तैयार होकर रूपा से बिना मिले ही स्कूल चले गए। रूपा का कमरा भी तब तक खुला नहीं था। जब खुला तो फिर एक छवि टूटी। रूपा ने तो नहा-धोकर सलवार-कमीज पहन लिया था, वो भी पुराने फैशन का। उसने तो सोचा था कि रूपा भारतीय कपड़े कभी नहीं पहनती होगी। रूपा ने बताया कि किसी जरूरी काम से उसे बाहर जाना है। शाम को आकर बात करेगी। सुधीर ने रात को ही रूपा को छोड़ने और ले जाने की बात पक्की कर दी थी। रूपा की भाभी को यह अच्छा नहीं लगा कि सुधीर ने इस बारे में उसे कुछ बताया क्यों नहीं। वह अपने इस भाव को छिपा नहीं पाई और कुछ बड़बड़ाती हुई बोली, 'तुम दोनों ने ही कल कुछ नहीं बताया। अगर पता होता तो मैं दिन के खाने की तैयारी न करती।'

सुधीर नहा-धोकर नाश्ते की टेबल पर आ चुका था और अपनी पत्नी की खीज-भरे प्रश्न का उत्तर देता हुआ बोला, 'बताता कब? तुम रात को कमरे में आई या नहीं मुझे तो पता भी न चला। पता है रूपा, ये इतना काम करती है कि मेरे साथ बैठने का समय ही नहीं है इसके पास। मेरे सोने के बाद कमरे में आती है और उठने से पहले की खटर-पटर शुरू कर देती है। तुझे नींद ठीक आई?' सुधीर रूपा से बिना किसी औपचारिकता के व्यवहार कर रहा था। जहाँ पर उनका रिश्ता छूटा था, वहीं से शुरू हो गया था। रूपा ने भी सुधीर को 'तू' से ही संबोधित कर बातें शुरू कर दीं। बात करते-करते जब रूपा ने 'उसका' (सुधीर की पत्नी का) संबोधन भाभी की तरह किया तो सुधीर को बहुत हँसी आई और हँसता हुआ बोला, 'तुझे क्या हो गया है, भाभी बोल रही है इसे। तुझसे दो-तीन साल छोटी है आराम से। याद है बचपन में अपनी हर अच्छी सहेली को मुझसे शादी करने की सलाह देती थी; जिससे तुम एक घर में रह सको।' यह बोलते हुए सुधीर के सामने बचपन की सारी स्मृतियाँ सजग हो गई और वह थोड़ा-सा भावुक हो गया। रूपा ने माहौल को हल्का करने के लिए कहा, 'मुझे तो अब यही भाभी पसंद हैं। मैं इनके साथ रहने के लिए तैयार हूँ।'

सुधीर ने हँसते-हँसते कहा, 'तू फिर भाभी बोल रही है?' रूपा ने बताया कि ऐसा आग्रह हुआ है उससे तो सुधीर को बहुत हैरानी हुई और उसे चलते-चलते अपनी बीवी को संबोधित करते हुए कहा, 'तुम्हें पता भी है; ये जहाँ से आई है वहाँ छोटा-बड़ा, हर कोई एक-दूसरे को नाम से बुलाता है।' सुधीर को तुरंत जवाब मिला, 'मैं तो भारत में ही रहती हूँ। मुझे क्या पता वहाँ क्या होता है। आप लोगों को मैं गलत लगती हूँ, तो ठीक है बुला लो मुझे जैसे बुलाना है।' यह कहते ही उसका गला रुँध गया और वह अपने काम में लग गई। सुधीर को इतनी सी बात पर भावुक होने का अर्थ समझ नहीं आया और उसने जानकर भी अनजान बनना ठीक समझा। सुधीर ने गाड़ी की चाबी उठाई और बाहर चलता बना।

पुरुष अक्सर कई चीजों को अनदेखा कर देना चाहते हैं या तो उन्हें कुछ बातें नगण्य लगती हैं या फिर वह किसी भी भावुक स्थिति से दूर रहना चाहते हैं। सुधीर भी अक्सर ऐसी स्थितियों को अनदेखा ही करता है। जब तक उसकी माँ जीवित थीं, तब तक तो वह घर ही बहुत देर से आता था। उसे लगता था कि जितनी कम देर घर में रहेगा, उतनी कम सास-बहू की शिकायत सुनेगा। उसकी पत्नी को भी खुद को समझाने और सँभालने की आदत थी। उसने कभी सुधीर से ऐसी उम्मीद नहीं की थी। उसे याद था कि उसके पिता भी सुधीर जैसे ही थे। उसकी दादी ने भी बताया था कि आदमियों को हमारा रोना-धोना समझ नहीं आता, वे तभी खुश रहते हैं, जब हम उनके सामने मुस्कुराते रहें।

पर रूपा तो स्त्री थी और इसे अनदेखा नहीं कर पाई। कई वर्ष उसने होस्टल में रहकर, एक्सचेंज प्रोग्राम में जा-जाकर, कई तरह के लोगों को देखा था। रिश्तों की बारीकियों और लोगों की भावुकता उसे खूब समझ में आती थी। शायद जब खुद पर कठिनाई आ चुकी हो तो हम दूसरों का दर्द अधिक समझ पाते हैं। कुछ लोग अपने में खो जाते हैं और कुछ लोग संवेदनशील हो जाते हैं। साथ ही जब माता-पिता के साए के बिना रहना हो तब दूसरों के भावों इत्यादि का भी अधिक ध्यान रखना पड़ता है ना। रूपा ने अपना बड़ा-सा बैग और धूप का चश्मा उठाते हुए धीरे से अपनी भाभी के पास जाकर कहा, 'मैं तो तुम्हें भाभी ही बोलूँगी, रिश्तेदार के नाम पर एक तुम ही तो हो मेरी।' रूपा ने भाभी के कंधे पर हल्का-सा हाथ रखा और बाय कहकर बाहर चल दी। उसने सोचा नहीं था कि कभी किसी का ऐसा व्यवहार उसे इतना अच्छा लग सकता है। ऐसा क्या कह दिया था कि रूपा ने, जो दोनों के जाने के बाद वह खाली घर में बहुत देर तक रोती रही। न जाने कौन-सा गुबार था; जो रूपा के सौहार्द ने छेड़ दिया था। रोते-रोते कब सोई पता नहीं चला। बच्चों के आने पर उठी और फिर वही प्रतिदिन के गृहकार्यों में जुट गई। रोने के बाद थोड़ा हल्का महसूस कर रही थी। बच्चे बुआ के घर आने का बेसब्री से इंतजार करने लगे। जब शाम को सुधीर और रूपा घर लौटे तो रूपा बहुत से फल, चॉकलेट, कोल्ड ड्रिंक्स लेकर आई।

बच्चों को देखकर रूपा ने तुरंत उन्हीं की तरह बात करनी शुरू कर दी। उन्हें चॉकलेट दी और बताया कि वह विदेश से उनके लिए सामान का वज़न ज्यादा होने के कारण कुछ नहीं ला पाई। बच्चों के साथ वह ऐसी घुल-मिल गई जैसे उन्हें हमेशा से जानती हो। बच्चे उससे विदेश की बातें पूछते रहे और ग्लोब पर उसने कौन-सी जगह देखी है इत्यादि पूछ-पूछकर खुश होते रहे। रात को खाने की भव्य टेबल सजी। रूपा ने आग्रह किया कि सब एक साथ खाएंगें। भाभी रोटी पहले बनाकर रख लें। उसने बहुत मना किया, पर सबने जिद्द की तो मान गई। उसे आज तक लगता था कि सुधीर कभी रखी हुई रोटी नहीं खाएगा। वह अक्सर रसोई से देखा करती थी कि जब सुधीर की आखिरी कौर हो तब ताजा फूली-फूली रोटी उसकी प्लेट में रखकर आए।' उसकी माँ भी ऐसे ही करती थी, पर रूपा ने तो आते ही यह बदल दिया। न बच्चों को कोई तकलीफ न सुधीर को। बल्कि सभी ने टेबल पर उसका स्वागत किया। जहाँ एक ओर उसे अच्छा लग रहा था, वहीं उसे ग्लानि हो रही थी कि जैसे पति और बच्चों को बीस मिनट पहले बनी रोटी खिलाकर वह कोई अपराध कर रही हो। पहले दिन तो वह खुद खाना खा ही नहीं पाई। बस दूसरा ठीक से खा रहा है या नहीं यही देखती रही। एक बार फिर उसके मन में घर की मालकिन वाला रूप उभर आया और बदलाव का कारण रूपा को देखकर अच्छा नहीं लगा।

टेबल पर सभी रूपा से बातचीत करते रहे और एकदम से दोनों बच्चों में से बड़ी बेटी ने कहा, 'बुआ! आप बिल्कुल भी वैसे नहीं हो जैसा हमने सोचा था। न ही वैसे हो जैसा मम्मी ने आपके बारे में बताया था। यू ओर डिफरेंट।' इससे पहले कि कोई कुछ और बोले, बच्चों की माँ ने चौंककर बेटी की बात काटते हुए कहा, 'ये सोचते थे कि इनकी बुआ कोई गोरी स्त्री है। गोरी माने अंग्रेज'। रूपा मुस्कुराई और बेटी ने फिर कहा, 'पर मम्मी आपने तो कहा था बुआ आपसे बड़ी हैं और हमें उनके साथ वैसा ही बरताव करना है, जैसा हम आपकी फ्रेंड्स के साथ करते हैं। वो सारी आंटी तो कितनी बोरिंग हैं। बुआ आपसे छोटी हैं, बिलकुल सामने वाली दीदी जैसी'। सामनेवाले घर में एक नवविवाहिता थी; जो रोज सुबह बच्चों को बस स्टॉप पर जाते हुए बाय करती थी। बच्चे अभी सात-आठ साल के ही तो थे। उन्हें क्या पता कि ऐसा कहने से उनकी माँ को कितना कष्ट होगा। वह माँ, जो पहले से ही रूपा से भयभीत थी। ऊपर से सुधीर का यह बात सुनकर जोर से हँसना उसे भीतर तक आहत कर गया। अब वह सुबह की तरह रुआँसी नहीं हुई, पर एक अजीब-सी चुभन हुई अंदर। मन किया कि बोल दे सुधीर को और बच्चों को कि रूपा ने बच्चे पैदा नहीं किए, जो उसका शरीर बिगड़ा हो। या कह दे कि अगर वह भी बिंदी, सिंदूर इत्यादि न लगाए, बाल खोल दे तो रूपा जैसी ही लगेगी। या रूपा को कहे कि एक दिन पूरा घर सँभालकर दिखाए तो सबको पता चलेगा।

पर उसने ऐसा कुछ नहीं कहा। वह ऐसी कभी नहीं थी। अपनी इस सोच पर उसे बहुत हैरानी हुई। उस रात ब्रश करते हुए बहुत देर तक अपने को बाथरूम में लगे शीशे में देखती रही। सोचती रही कि कैसे उसका चेहरा उसकी उम्र से बड़ा लगने लगा। उसे एहसास हुआ कि शायद उसने पहली बार अपना चेहरा इतने ध्यान से देखा है। ऐसा नहीं था कि वह सजती नहीं थी। बाकायदा परिवारों की शादी इत्यादि में ब्यूटी पॉर्लर से तैयार होती थी। हर महीने फेशियल भी कराती थी, पर आज कुछ और देख रही थी जो पहले कभी नहीं देखा था। रूपा के आने से पहले जो उथल-पुथल मची थी, वह उसके आने के बाद बढ़ती ही जा रही थी। उसे कभी रूपा बहुत अच्छी लगती, कभी उससे ईर्ष्या होती। कभी मन में आता कि रूपा के पैर पकड़कर कहे, 'तुम क्यों आई मेरी दुनिया में, चली जाओ यहाँ से। नहीं जाओगी तो मुझे अपने मन की उथल-पुथल से उबारो।'

रूपा ने बताया कि उसके यहाँ आने का मकसद है अपने भावी ससुराल वालों से मिलना। उसके साथ ही एक बंगाली लड़का काम करता है, जिसके साथ वह जीवन बिताना चाहती है। उसका नाम अरविंद है, वह भी थोड़े दिनों में आएगा और तब रूपा को माता-पिता से मिलवाएगा। यह सब सुनकर सुधीर की पत्नी ने रूपा से कहा था, 'शादी करने का फैसला तुमने अपने आप ले लिया। किसी से पूछा नहीं?'

रूपा ने कहा, 'किससे पूछती भाभी? तुम और सुधीर ही तो हो।'

उसने फिर कहा, 'पर रूपा बंगाली लड़का, क्या तुम्हें बंगाली आती है?'

रूपा ने फिर कहा, 'अरविंद तो हिंदी और अंग्रेजी में ही बात करता हैं'।

'पर ससुराल में जब-जब सब बंग्ला में बात करेंगे, क्या तुम सबका मुँह ताकोगी?'

रूपा को ऐसे सवाल बहुत बचकाने लगते थे, पर अपनी भाभी का ख्याल करके बहुत प्यार से उनका जवाब देती थी। रूपा अक्सर अपने परिवेश के बारे में उसे समझाने की कोशिश करती थी। हर बात को समझाने के लिए रूपा लंबी-सी भूमिका बनाती थी। इस सवाल के जवाब में रूपा ने बताया कि वह बचपन से होस्टल में बहुभाषी लड़कियों के साथ रही है। वह कई ऐसे देशों में भी गई है; जहाँ की भाषा उसे बिलकुल नहीं आती थी। हर बार भाषा महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इंसान हर जगह एक से होते हैं। भावनाएँ वैसी ही होती हैं। भाषा तो एक बहुत छोटा-सा माध्यम है। रूपा ने यह भी बताया कि उसकी बेस्ट फ्रेंड जर्मन लड़की है। इस भूमिका के बाद भी रूपा की भाभी बार-बार वहीं आ जाती कि, 'पर ससुराल में तो सब बंग्ला बोलेंगे।'

तब रूपा ने उससे पूछा, 'अच्छा भाभी। तुम सुधीर से प्यार करती हो ना।'

ये सवाल भी कोई सवाल था? जब सुधीर उसक पति है तो प्यार करना ही था। उसने मन में इस सवाल की हँसी उड़ाई और रूपा की बात सुनती गई। रूपा ने कहा, 'अगर आज सुधीर ऐसे लोगों में बैठने लगे; जो कोई और भाषा बोलते हो तो क्या तुम उससे प्यार नहीं करोगी? भाभी। प्यार शर्तों पर नहीं होता। तुम सुधीर से जब पहली बार मिली थी तो क्या तुम्हें पता था कि वह तुम्हारा पति बन जाएगा?'

रूपा को नहीं पता था कि सुधीर की शुद्ध अरेंज मैरिज हुई थी। रूपा के परिवेश में यह अकल्पनीय था और उसकी भाभी के लिए रूपा का परिवेश असाधारण। दोनों एक-दूसरे से बात करती थी, पर अक्सर एक-दूसरे के लिए जो अजीब बात होती थी, वह किसी एक के जीवन का अंग होती थी। रूपा के प्यार वाले प्रश्न के बाद, 'उसने' यानि रूपा की भाभी ने रात को फिर शीशे में खुद देखकर सवाल किया था, 'क्या मैं सुधीर से और सुधीर मुझसे प्यार करते हैं?' रूपा के आने से पहले उसके जीवन में ऐसे सवालों का कहीं कोई सरोकार नहीं था, पर अब रूपा के कारण सब बदलता जा रहा था। उसे भी अब सबके साथ टेबल पर रोटी खाना अच्छा लगने लगा था। वह बिना किसी ग्लानि के अपने लिए समय निकालने लगी थी। एक दो बार रूपा के साथ घूमने भी गई तो साड़ी न पहनकर सलवार-कमीज पहनकर गई। बिंदी और सिंदूर भी लगाना कम कर दिया था। 'उसके' लिए यह एक आंदोलन की तरह था; जिसमें वह धीरे-धीरे रमने लगी थी। उसे हर रोज रूपा से कुछ सीखने को मिलता। रूपा ने जितनी उसके बनाए पकवानों की तारीफ की थी, उतनी आजतक किसी ने नहीं की थी। एक-दो चीजों की रेसेपी भी ली थी।

रूपा ने रेसेपी लेते हुए बताया था कि वह और अरविंद मिलकर खाना बनाते हैं। यह भी बताया था कि शादी के बाद अरविंद नौकरी छोड़कर आगे पढ़ाई करेगा और बस रूपा ही घर का खर्चा चलाएगी। 'उसके' लिए यह बहुत अजीब दुनिया थी। आदमी औरत शादी से पहले साथ रहें, साथ में खाना पकाएँ, औरत

कमाए और पति पढ़ाई करे। यह सब जितना आश्चर्यजनक था, उतना ही आकर्षक भी। अहिंदी-भाषी भी कभी दोस्त बन सकते हैं, उसकी कल्पना ही बहुत मजेदार थी 'उसके' लिए। रूपा के साथ वक्त बिताते हुए एक दिन उसने अपने कॉलेज के समय की पेंटिंग दिखाई। रूपा ने खुश होकर कहा था, 'भाभी इन्हें फ्रेम करवाओ। अब नहीं बनातीं?'

उसने हँसते हुए कहा था, 'अब तो शादी क्या, बच्चे भी हो गए।'

रूपा ने जोर से और कुछ गुस्से में कहा था, 'तो!!!'

उस तो का कोई जवाब नहीं था। बस फिर देर रात शीशे में खुद को तलाशती रही थी। उस शीशे में जैसे वह अपना अतीत देखती थी। उस रात अपने आपको पेंटिंग बनाते देखा था। शीशे में आर्ट टीचर पीठ थपथपाती हुई और माँ डाँटती हुई नजर आई थी। रूपा और अरविंद एक-दूसरे की पसंद-नापसंद इत्यादि के बारे में सब जानते हैं। यह 'उसे' सोचने पर मजबूर करता था कि वह सुधीर के बारे में और सुधीर उसके बारे में क्या जानता है। अभी वह ऐसी बातों को सोचना ही शुरू हुई थी कि रूपा के वापिस जाने के दिन आ गए। वह अरविंद के साथ भारत में ही एक-दो जगह घूमने जाने वाली थी। शादी विदेश में ही करनी थी; क्योंकि दोनों के करीबी लोग वहीं थे। अरविंद के माता-पिता शादी के समय विदेश चले ही जाएंगें। अरविंद, रूपा को ले जाने के लिए बकायदा सुधीर और परिवार से मिलने आया। अरविंद पहले सुधीर और बच्चों से मिला बाद में रूपा की भाभी से। जोर से हाथ मिलाया था 'उससे' और कहा, 'अरे! बहुत सुना है आपके बारे में। दस पंद्रह दिन में ही अच्छी दोस्ती हो गई रूपा से। क्या मुझे भी आपको भाभी बोलना होगा?' यह सुनते ही सब बहुत जोर से हँसे, और 'उसे' फिर भीतर तक कुछ चुभा था। क्यों चुभा था पता नहीं, पर कहीं वह आहत हुई थी। जाते-जाते रूपा ने कहा था, 'अच्छा भाभी अगर शादी पर आ सको तो जरूर आना। बहुत अच्छा लगा आपके साथ रहकर। काश! मैं भी आपकी तरह लाइफ को सिम्पली जी पाती, बिना किसी नाम के।'

पता नहीं रूपा ने उसकी तारीफ की थी या मजाक उड़ाया था। वह बहुत देर तक इन्हीं लफ्जों को शीशे के सामने खड़े होकर दोहराती रही थी। 'काश! मैं भी आपकी तरह लाइफ को सिम्पली जी पाती, बिना किसी नाम के।'

क्या 'उसका' जीवन अब उतना सरल रह पाएगा जैसा रूपा समझती है? पता नहीं रूपा 'उसके' जीवन में क्यों आई थी?

✠✠✠

रचनाकारों से विशेष अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता और लघुकथा दो से अधिक न भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र (हाई रेज्योलेशन फोटो) आदि भी भेज सकते है।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं वर्तनी को कृपया भली-भाँति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

गणेश के पापा

विशाखा ठाकर

शंकर तो कालभैरव हैं, काल के प्रतीक हैं, और पार्वती हैं हिमालय की पुत्री। पार्वती की कोख से पैदा हुए थे गणेश जिन्होंने आज मेरी मां की मानसिक कोख से पुनः जन्म लिया था। सदियों से चली आ रही हमारे देवी-देवताओं की कहानियां मैं अब भी बचपन में सुनती थी, उनमें से महाभारत के भीम और शिव-पुराण के गणेशजी मेरी पसंद के चरित्र थे। पापा से पौराणिक कथाएं सुनकर अक्सर मेरा मन करता था कि मैं हजारों सालों की परतें उखाड़कर भारतवर्ष के उस युग में पहुंच जाऊं

'तुम हंसो मत... और अगर हंसना है तो दूसरे कमरे में जाकर हंसो!' मुझे मेरी दीदी पर अब सचमुच ही गुस्सा आ रहा था। वह फिर से हंसी, 'लो चार तो बज गए, अब करोगी क्या? अब कहां से बुला लाओगी तुम शंकर भगवान को? तुम्हारे हिसाब से तो वे छह बजे आएंगे ही, वरना फोन करेंगे।'

मां अस्पताल के बिस्तर पे लेटे हुए हम दोनों की बातें सुन रही थी। माँ ने मुझसे पूछा, 'बेटा, कल तुम्हारी गणेश के पापा से ठीक ढंग से बात तो हुई है ना। फिर सरला क्यूं हंस रही है?'

'हां, मां, शंकर भगवान आज शाम छह बजे जरूर आएंगे। उन्होंने कहा था, फिर वे भी अपने बेटे को देखने के लिए उत्सुक हैं, अधीर हैं।'

मेरी बात सुनकर मां के बीमार चेहरे पर फिर से तृप्ति और प्रसन्नता छा गई।

घड़ी अब चार बजकर दस मिनट का समय दिखा रही थी। अभी मुझे बाजार जाकर मां की दी हुई लिस्ट की सारी सामग्री लानी थी। लाल रंग की साड़ी तो मैंने दो बजे ही पहन ली थीं। दोपहर में ही मां को दुबारा स्पंज करके अस्पताल का नया गाऊन पहना दिया था, उसी के ऊपर चुन्नी की तरह आसमानी रंग की साड़ी लपेट दी थी। मां के उलझे सूखे सफेद बालों में ब्रिलक्रीम लगाकर जूड़ा बना दिया था।

अपने कान की बुट्टी और गले का मंगलसूत्र भी मैंने मां को पहना दिए थे। पिताजी के देहांत के बाद मां हमेशा सफेद वस्त्र ही पहनती थी। पर आज, मां ने आसमानी साड़ी लपेटने से इनकार नहीं किया। फिर मां ने संकेत करके कहा कि मैं उसे कुमकुम का टीका लगाना भूल गई। 'कुमकुम तो मुझे बाजार से या दीदी के घर से लाना पड़ेगा, मां यह तो अस्पताल है। यहां किसके पास होगा, मां मेरी बातें सुनकर भी बार-बार अपनी उंगली अपने खाली ललाट पर रखकर बता रही थी कि मैं उस पर टीका लगा दूं। मुझे याद आया कि मेरे पर्स में एक लाल रंग के नेल-पालिश की शीशी पड़ी थी, मैंने झट से नेल-पॉलिश का टीका मां के ललाट पर लगा दिया, और मां ने प्रसन्नता से अपनी आंखें बंद कर लीं।

सम्पर्क: 129, Eastmore Drive Silver Spring Maryland-20901 USA.

मझली दीदी हैरानी से मुझे देख रही थी। गुजरात के सौराष्ट्र इलाके के राजकोट गांव में बड़ी दीदी के परिवार के अलावा हमारे कई सगे-संबंधी थे जो मां के दस साल के वैधव्य से परिचित थे। शाम को उनमें से कोई मिलने आ गया तो उसे यह सारा तमाशा कैसा लगेगा? दीदी को अपनी और मां की आबरू की पड़ी थी कि वैधव्य के बाद मां के ललाट पर कुमकुम का टीका देखकर लोग क्या कहेंगे?

'अरे, अब तो साढ़े चार बज गए।' मैं जल्दी से बाजार जाने के लिए मां के कमरे से बाहर निकली तो दीदी पीछे-पीछे आई।

'क्या तुम सचमुच मां का मंगवाया सामान लेने जाओगी?'

'हां, वही सब लेने जा रही हूं।'

'शंकर भगवान को कहां से लाओगी?'

'पता नहीं।' मैं संक्षिप्त में उत्तर देकर जल्दी से सीढ़ियां उतर गई थी।

'लगता है, मां के दिमाग के साथ-साथ तुम्हारा भेजा भी खराब हो गया है।' मझली दीदी फिर से बड़बड़ा रही थी।

मैंने मन-ही-मन सोचा, शायद दीदी का कहना सच था। सारी रात जागते हुए मैंने कितनी बातें सोची थीं, दीदी को कुछ अनुमान भी नहीं था।

मां की मंगवाई सारी सामग्री मुझे अस्पताल की सामने वाली दुकानों में से ही मिल गई। एक नारियल, कुछ पके हुए फल, धूप-अगरबत्ती, कुछ ताजा खिले फूल और मीठा। सब कुछ खरीदने में मुझे सिर्फ पंद्रह मिनट लगे।

अब मैं अस्पताल में मां के पास लौटकर क्या कहूंगी? शंकर भगवान की प्रतीक्षा में मां कितनी व्यग्र हो गई है, भगवान को कम-से-कम बीमार लोगों का तो ख्याल करना चाहिए। काश! उनको कोई 1-800 नंबर होता। जहां फोन करके मैं संदेश छोड़ सकती कि भई मां कई दिनों से याद कर रही है। ब्रह्मांड की परिक्रमा करते हुए थोड़ा-सा समय निकालकर राजकोट होते हुए जाना।

अभी छः बजने में एक घंटा और पंद्रह मिनट बाकी थे। अस्पताल की वे सीढ़ियां जो मुझे मां के कमरे तक ले जाती थीं, उन्हीं सीढ़ियों पर मैं दुकान से खरीदी सारी सामग्री लेकर बैठ गयी। पिछले शुक्रवार को तो इस समय मैं अमेरिका में अपनी प्रयोगशाला में बैठे काम कर रही थी। उसी दिन शाम को फोन पर भारत में मां के बहुत ज्यादा बीमार हो जाने की खबर मिली कि अब तो डॉक्टरों ने भी आशा छोड़ दी है। मां को कई दिनों से खून की उल्टियां हो रही थीं, पेट में पड़े हुए छालों से सतत खून बहता था। उसके दिमाग में खून की कमी की वजह से प्राणवायु पहुंचता नहीं था, इसलिए कभी-कभी वह बेहोश हो जाती थी, और वह अपनी स्वरचित दुनिया में मन-ही-मन चली जाती थी और असंबद्ध बातें करती थीं। डॉक्टर ने मुझे सावधान किया था कि मां याद तो करती है पर संभव है कि मुझे प्रत्यक्ष मुलाकात के समय पहचान न सके। मैं दूसरे दिन ही मां से अंतिम बार मिलने के लिए भारत जाने के लिए निकल गई थी।

रास्ते में हवाई जहाज के लंबे सफर में मैं बार-बार सोचती रही कि अब शायद मां से विदा लेने की मेरी बारी भी आ गई। हवाई जहाज में मेरी बैठक खिड़की के पास थी, और रात्रि के अंधेरे काले आकाश में कुछ सफेद बादलों के ढेरों को चीरता हुआ हवाई जहाज उड़ रहा था। मेरी मां का चेहरा खिड़की से दिखते आकाश के फलक पर बादलों के बीच कभी उभरता, कभी लुप्त हो जाता। मन करता था कि मैं आकाश के इन सितारों से पूछ के देखूं कि, 'मां इस वक्त कैसी हैं?' शायद जाग रही होगी। दीदी, जीजाजी सबने बताया तो होगा कि मैं आ रही हूं। क्या मां इतने होश में होगी कि मुझे पहचान सके?

आकाश के पट पर एक-एक करके उजागर हो रहे थे वे सारे साल जो मैंने मां के साथ गुजारे थे। देखा था, गुजरात जिले का सादरा गांव, जहां मेरे पापा स्कूल के हेड-मास्टर थे, और मैं थी साढ़े तीन या चार साल की।

मैंने गुलाबी गोटेवाला सफेद फ्राक पहना हुआ है। मां और पापा भी तैयार हो गए हैं। मैं बड़ी खुश हूं कि मां और पापा मुझे अहमदाबाद के सफर में अपने साथ ले जाएंगे। हमारा घर तीन मंजिलों का है। गांव के चौक में एक बड़ा-सा टॉवर है, उसके बड़े से घंटे के बजने की आवाज से दुबककर मैं मां की गोद में छुप जाती हूं। घर में चहल-पहल मची हुई है। मैं खुश हूं कि मुझ पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। मेरे लिए मां ने बढ़िया खाना बनाया है। सादरा से बस में बैठकर हम लोग अहमदाबाद आ गए। अब हम मां के कॉलेज के होस्टल के एक कमरे में हैं। पापा नीचे लाऊंज में हैं। उन्हें लेडीज होस्टल के कमरे में

आने की मंजूरी नहीं है। मां ने मुझे गोद में बिठाया है। अब धीरे-धीरे मेरी समझ में आ रहा है कि मां हमारे साथ सादरा वापस नहीं जाएंगी। सिर्फ मैं, मेरी दोनों दीदियां और पापा हम सब मां को यहीं छोड़कर वापस चले जाएंगें। मां कह रही थी कि मेरे नानाजी ने मां को कॉलेज में पढ़ने नहीं भेजा, अब कॉलेज पढ़ाई, मां की ख्वाहिश, मेरे पापा पूरी कर रहे हैं। मुझे अब अच्छा बेटा बनकर पापा और दीदी के पास रहना है। शाम को सादरा गांव वापस जाने से पहले मां ने अपनी आसमानी रंग की साड़ी मुझे दी और कहा कि जब भी मैं उसे याद करूं तो उस साड़ी को थामकर यही समझूं कि मां ने मुझे अपने आंचल में छुपा लिया है।

आकाश के कैनवास पर अब चित्र बदल गया है। हम लोग सादरा गांव वापस आ गए हैं। हर सुबह एक गंगा नाम की नौकरानी आती है। मैं गंगा के साथ छोटा-सा तांबे का घड़ा लेकर गांव के छोर पर जहां साबरमती नदी बहती है, वहां नदी की रेत पर बैठी हूं। प्रात:काल का समय है, पापा हर सुबह यहां जल्दी ही आ जाते हैं। इस गांव में ज्यादातर आदमी लोग नदी में जाकर ही नहा लेते है। कुछ पक्षी नदी की लहरों की सतह पर उड़ रहे हैं, मैं उनके पीछे भागती हूं, मेरा पांव फिसलता है, गंगा मुझे डांटती है, मैं रोती हूं, मुझे मां के पास जाना है।

मैं रूठी हुई हूं। पापा की मेज के नीचे जाकर बैठी हूं। पापा सिकुड़कर मेरे पास मेज के नीचे आते हैं और मुझसे कहते हैं कि मैं जिद छोड़कर खाना खा लूं तो वे मुझे कहानी सुनाएंगे। मैं दस लंबी कहानियों का वादा लेकर पापा की गोद में बैठ जाती हूं। पापा एक कागज दिखाते हैं, कहते हैं, 'सुनो मां ने तुम्हें चिट्ठी लिखी है।' पापा चिट्ठी खोलकर पढ़ते हैं—

'मेरे बेटे, विशु,

तुझे याद है ना, तू तो मेरा बेटा है। सिर्फ मेरा नहीं, तू सूरज का भी बेटा है। जो सूरज का बेटा हो, से तो कुंतीपुत्र की तरह बहुत ही बहादुर और तेजस्वी बनकर रहना पड़ता है। बहादुर बेटे कभी रोते नहीं। आज मैं तुम्हें एक ऐसी बात बताती हूं, जिसका भेद तुम अपनी पक्की सहेली मीनाक्षी को भी बताना नहीं। यह रहस्य सिर्फ तुम्हें मालूम होगा और तुम्हारे पापा को।

जानती हो, कुछ दिन पहले जब मैं लाइब्रेरी में पढ़ाई कर रही थी, तब तुम्हारी बहुत याद आई, और पढ़ाई करते-करते मुझे बैठे-बैठे ही नींद आ गई और सपने में मेरी कृष्ण भगवान से मुलाकात हुई। मैंने भगवान से कहा कि मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं जब भी चाहूं तक अपने विशु बेटे के पास पहुंच सकूं। परसों रात कृष्ण कन्हैया फिर मेरे सपने में आए और उन्होंने मुझसे कहा, 'जब भी तुम्हारा विशु बेटा गहरी नींद में सोएगा, मैं तुम्हें उसके पास पहुंचा दूंगा। मुझे अपने पास बुलाने के लिए हर रात को खाना खाके दूध पीने के बाद तुम छत पर खुले आकाश के नीचे पापा के पास पहुंच जाना। पापा तुम्हें हर रात कहानी सुनाएंगे और मैं यहां कॉलेज में पढ़ाई करके, अपना होमवर्क करके छत पर जाकर कन्हैया से कहूंगी कि वे मुझे तुम्हारे पापा रातभर के लिए पहुंचा दें और सुबह सवेरे यहां वापस ला दें। इस तरह किसी को पता भी नहीं चलेगा। मन में जो शक्तिकण होते हैं उनके बल पर इंसान कहीं भी पहुंच सकता है। न तो दुनिया की दीवारें उसे रोक सकती हैं न ही समय के किसी बंधन में वह कैद हो सकता है। तुम रोज रात जब गहरी नींद में सोई होगी तब ब्रह्मांड में घूमते हुए भगवान किसी सितारे से या किसी नक्षत्र से इस धरती की ओर अपनी किरनों की बाहें फैलाकर मुझे उठाकर ठीक तुम्हरे पास अपने घर की छत पर छोड़ जाएंगे।'

यही आकाश, यही बादल, ये सितारे जो मेरी मां के बचपन में मां की होस्टल से उठाकर मेरे पास लिवा लाते थे, वे सारे मेरे दोस्त बन गए। मैं अक्सर नदी के किनारे रेत पर पड़े-पड़े सादरा में आकाश को देखा करती थी, और मन-ही-मन गुलाबी गोट वाला सफेद फ्राक पहनकर बादलों के एक ढेर से दूसरे ढेर पर कूदती। कभी-कभी किसी की बात बुरी लगे तो रात की प्रतीक्षा करके सितारों से कह देती कि जब मैं सो जाऊं तो वे सितारे मां को यहां लाते वक्त रास्ते में ही सारी बातें सुना सकें।

गर्मियों की छुट्टियों के दिन हैं। हम लोग खेड़ ब्रह्मा के जंगलों में जहां आदिवासी रहते हैं वहां किसी शिविर में हैं। मां छुट्टियों में घर आई हैं और हमारे साथ हैं। पापा दिनभर किताबें पढ़ते हैं, या बैठकर कुछ लिखते हैं। नेत्र-दंत यज्ञ में मां डॉक्टरों का हाथ बंटाती है, पापा आदिवासियों को आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों का ज्ञान देते हैं। शिविर में कुछ और भी कार्यकर्ताओं के बच्चे हैं। मैंने तंबू में एक गिलहरी का बच्चा पाल के रखा है, इसलिए उसे देखने के लिए कुछ बच्चे मेरे आसपास मंडराते हैं। कोई मुझसे मेरा परिचय पूछता है, तो मैं गर्व से कहती हूं कि 'मैं सूरज का बेटा हूं।' शिविर के बच्चे मुझे चिढ़ाते हैं। कहते हैं, तुम लड़का नहीं लड़की हो, तुम हेड-मास्टर साहब डॉ. भास्कर राय की

बेटी हो। वे तंबू से गिलहरी का बच्चा उठाकर बाहर लाते हैं, एक उड़ती हुई चील झपट्टा मारती है, गिलहरी के बच्चे को अपनी चोंच में उठाकर उड़ने लगती है, सारे बच्चे जोर-से चीखते हैं, चील की चोंच से गिलहरी का बच्चा पटाक से गिरता है, सारे बच्चे भाग जाते हैं, मैं गिलहरी के बच्चे पर पानी छिड़कती हूं, बच्चा हिलता नहीं, मैं शिविर के बच्चों से, मां से नाराज हूं, पापा से शिकायत करती हूं। 'मां मुझे सूरज का बेटा क्यूं कहती है जबकि मैं पापा तुम्हारी—भास्कर राय की बेटी हूं। मां झूठ क्यूं कहती है? लड़के मुझे अपने साथ खेलने क्यूं नहीं देते, और खेलूं तो चिढ़ाते हैं। रात को पापा शिविर के सारे बच्चों को इकट्ठा करते हैं। बहुत सारे बच्चे पापा के आसपास बैठ जाते हैं जो मुझे चिढ़ा रहे थे वे भी कहानी के लालच में पेड़ की आड़ में छिपकर खड़े हैं। मैं गिलहरी के निश्चेतन बच्चे को एक छोटे-से बॉक्स में लेकर पापा के पास बैठती हूं, मुझे विश्वास है कि पापा की जड़ी-बूटी से वह ठीक हो जाएगा। पापा कहते हैं कि वे सूरज की कहानी सुनाएंगे।

बहुत-बहुत करोड़ों साल पहले ब्रह्मांड के एक तेजस्वी सितारे से कुछ टुकड़े टूटकर उससे अलग हो गए, और फिर उससे अलग होकर भी उसकी परिक्रमा करते रहे। बाद में वह तेजस्वी सितारा सूरज के नाम से पहचाना गया। सूरज का सिर्फ एक नाम नहीं, संस्कृत में उसके बारह नाम है। सूरज के टुकड़ों में से एक टुकड़ा जो पृथ्वी है वह हमारी धरती मां। इस दृष्टि से हम सबके लिए धरती हमारी मां है और सूरज हमारा पिता। इस सूरज के बारह नामों में एक नाम भास्कर भी है, इसलिए कोई भास्कर राय की बेटी हो, या सूरज की बेटी, अर्थ तो एक ही होता है। सुनकर मुझे बड़ा मजा आया था, मुझे चिढ़ाने वाले लड़के अपना मुंह लटकाकर बैठ गए थे। पापा जैसा विद्वान तो वहां कोई दूसरा था ही नहीं। उस रात मेरी दुविधा बढ़ गई थी। सूरज का धायं-धायं करता हुआ तेजस्वी गोला जो आकाश में चमकता है अगर वह मेरा पिता है, तो पापा, तुम क्या हो? अगर तुम सूरज की तरह हो, सूरज का दूसरा नाम धरकर दूसरे रूप में हो, तो तुममें से उजाला क्यूं नहीं निकलता? तुम्हारी मौजूदगी में मुझे क्यूं बत्ती जलानी पड़ती है? रात को देर से खाना खाने के बाद मां-पापा दोनो मुझे उठाकर शिविर के तंबू के बाहर खुले आकाश के नीचे ले गए थे और एक सितारे की ओर इशारा करके कहा था कि देखो, उस सितारे का नाम है विशाखा, उसको कहते हैं विशाखा नक्षत्र। फिर उन्होंने बताया था कि जिस तरह वे आकाश में सूरज के गोले के रूप में मौजूद हैं तो मैं भी प्रकाश अंश हूँ। जिस तरह सूर्य की किरनें होती हैं उसी तरह किरन के रूप में तुम मेरी बेटी हो। प्रकाश का न कोई शरीर होता है, न हाथ, न पांव, इसलिए प्रकाश का अनुभव किया जा सकता है पर किरनों को पकड़ा नहीं जा सकता। इसलिए पृथ्वी पर अवतरित होने के लिए हमें इस शरीर का वरदान मिला। मेरे इस शरीर का नाम भास्कर है और तुम्हारे शरीर का नाम विशाखा। इस शरीर के माध्यम से मैं अपनी बिटिया को कंधे पे बिठाकर घुमा सकता हूं, दुलार कर सकता हूं, तुम्हारे साथ खेल सकता हूं और तुम्हारे पसंद की चीजें, खास करके आईसक्रीम खिला सकता हूं। अगर तुम खाली किरण के रूप में होती तो किरन का न तो मुंह होता है न पेट तो फिर तुम आईसक्रीम खाती कैसे और ना ही मैं तुम्हारी मां के बनाए लड्डू खा सकता था इसलिए जब तक हम इस पृथ्वी पर हैं, हमें इस शरीर में रहना है। जब यह शरीर पुराना हो जाएगा, या तो भगवान को ब्रह्मांड के किसी जरूरी काम के लिए जब हमारी आवश्यकता पड़ेगी तो हम यह शरीर छोड़ के सूरज के प्रकाश में फिर से एकाकार हो जाएंगे। तुम्हारी मां तुम्हें बेटा कहकर बुलाती है, क्योंकि वह चाहती है कि लड़की के शरीर में यह जो तुम्हारी आत्मा को बेटे के रूप में स्वीकारा है, इसलिए शारीरिक रूप से तुम उसकी बेटी हो, पर मानसिक रूप से तुम उसका बेटा हो। मां तुम्हें सच्चे अर्थ में जो मानती है इसी नाम से तुम्हें पुकारती है। तुम सूरज का प्रकाश हो, तुम सूरज का बेटा ही तो हो।

फिर मिट्टी के दीये की लौ फड़फड़ाने लगी थी। मां ने झट से तंबू में जाकर तेल के बरतन से तेल मिट्टी के कटोरे में डाल दिया था। चांद पहाड़ियों की आड़ से धीरे-धीरे उभरकर खेड़ ब्रह्मा के जंगल में शांत खड़े पेड़ों की शाखाओं को चमका रहा था। पापा ने जैसे ही हाथ की लपट से दीया बुझाया तो चांद का प्रतिबिंब मिट्टी कटोरे में चमकने लगा। पापा ने मेरे बॉक्स से धीरे-से गिलहरी के बच्चे को उठाया था। मुझे उन्होंने बताया कि, 'गिलहरी के बच्चे की आत्मा उसका शरीर छोड़ के कहीं चली गई है।' मैं असंजमय में पापा के चेहरे को तकने लगती हूं।

पापा कह रहे थे, 'कोई भी जीव जब प्रस्थान करता है, तो सामान्यत: हम समझते हैं कि उस जीव की आत्मा भी उसके साथ-साथ भ्रमण करती है, स्थानांतरण करती है। पर, ऐसा प्रतीत होता नहीं है। जैसे मिट्टी के कटोरे में जल भरा जाए तो चांद या सूरज का प्रतिबिंब उसमें दिखाई देगा अगर हम इसी

कटोरे को यहां से उठाकर दूसरी जगह रख दें तो हमें लगेगा कि चांद का प्रतिबिंब भी हमारे साथ-साथ कटोरे में चल रहा है। परंतु वास्तव में यह सच नहीं है। प्रतिबिंब स्थानांतरण नहीं करता, वह तो जहां-जहां जीव रूपी जल होगा वहां पड़ेगा ही। अगर कटोरे में से जल सूख जाए तो उसमें से चांद या सूरज का प्रतिबिंब भी लुप्त हो जाएगा। इसी तरह से देह रूपी कटोरे में से जीवनरूपी जल जब खत्म हो जाए तो परमात्मा के प्रतिबिंब समान आत्मा के अस्तित्व का अनुभव का होना बंद हो जाता है, और इसी प्रक्रिया को लोग मृत्यु कहते हैं।'

'तुम्हारी गिलहरी की आत्मा आज चंद्रमा के प्रकाश में लुप्त हो गई।' उस रात फिर पापा ने मुझे स्वाति, चित्रा और विशाखा तीनों नक्षत्रों की कहानियां सुनाई। ध्रुव और अरुंधती के साथ-साथ सप्त ऋषियों के बारे में भी बताया। ध्रुव के एक पैर पे खड़े रहने की कहानी सुन के मैं ध्रुव के बारे में सोचते-सोचते सो गई, कि कल मैं खुद देखती हूं कि एक पैर पर कितनी देर तक मैं खड़ी रह सकती हूं।

हवाई जहाज के कप्तान की आवाज ने चौंका दिया कि अभी बंबई आने वाली ही है। हवाई जहाज की खिड़की के उस पार तिरते बादल मुझे कितने साल पीछे मेरे बचपन में ले गए थे इसका किसी को अंदाजा नहीं था। मैंने खिड़की से नजरें हटा लीं और चार साल की बच्ची का मेरा चेहरा अचानक कई सालों को लांघकर बड़ा हो गया।

बंबई से जहाज बदलकर मैं राजकोट आ गई थी। मां राजकोट की अस्पताल आई.सी.यू. के कमरे में थी। मां का चेहरा खून की कमी और पीलिया की वजह से बिल्कुल पीला और फीका था। हाथ की नसों पर इंजेक्शन के कई निशान थे। नाक में प्लास्टिक की ट्यूब, एक तरफ खून की बोतल और दूसरी तरफ ग्लूकोज की बोतल थी। मां की खाट के नीचे एक सफेद कटोरा था जिसमें मां के पेट से निकला खून पड़ा था।

मैंने मां का हाथ धीरे-से छुआ था। बिल्कुल रुई जैसा लगा था।

मुझे मेरी नानी मां का हाथ याद आया था। 'मेरी मां भी अब मेरी नानी मां जैसी बूढ़ी हो गई।' मां की आंखें अभी बंद थी। डॉक्टर के साथ मेरे जीजाजी और देव भैया आए थे। जीजाजी मां के अंतिम संस्कार की विधि की तैयारी की चर्चा धीरे-धीरे कमरे के एक कोने में जाकर कर रहे थे।

मां क्या सचमुच शरीर छोड़ देगी...सोचते हुए मैंने फिर से मां की ओर देखा था। पापा भी एक बार कह रहे थे कि जो शरीर काम न दे, जीवन जीने के लिए साथ न दे वैसा शरीर जब छूट जाए तो उसका अफसोस नहीं करना चाहिए। पीड़ादायक चीज से छुटकारा पाने के बाद कोई रोता है भला?

फिर ऐसे ही प्रतीक्षा करते-करते रात हो गई थी। मैंने चाहा था कि मां बस एक बार आंखें खोल के यह जान ले कि मैं उसके पास पहुंच गई हूं। अस्पताल में मिलने वालों की भीड़ भी कम हो गई थी। कहीं-कहीं किसी की रोने और किसी के कराहने की आवाज आती थीं। फिर देर रात में मां की धीमी-सी आवाज आई थीं और मां ने आंखें खोली थीं। मुझे देखकर उसका फीका चेहरा मुस्कुराया था।

'अरे! आ गई बेटा। आ इधर आ, मेरे पास लेट जा।' मां ने ठीक उसी ढंग से कहा जैसे घर में कहा करती थी।'

'देखो मां, मैं बिल्कुल तुम्हारे पास हूं।' मैं मुश्किल से रोना रोक रही थी।

वह बोली, 'तूने उसका चेहरा देखा?'

'किसका चेहरा?'

'अरे मेरे बेटे का।'

'तुम्हारा बेटा?'

'हां, नर्स उसे ले गई, वह दूसरे कमरे में है। कल ही पैदा हुआ। अभी तो सो रहा होगा। जो उसका चेहरा देख आ और मुझे बता कि कैसा है?'

अब मुझे शक होने लगा था कि मां ने मुझे सचमुच पहचाना है।

'मां तुम्हें पता है, मैं कौन हूं?'

'हां, तुम मेरी विशु हो। मैं तुम्हारा इंतजार कर रही थी।'

'किसलिए मां?'

'बस सिर्फ तुम्हें बताना चाहती हूं। जानती हो, आज सुबह मुझे बेटा हुआ है।'

मैं जानती थी कि तीन बेटियां होने की वजह से मां को एक बेटे

की कमी सारी ज़िंदगी महसूस होती रही। मैंने बहुत कोशिश की थी कि मां को कभी बेटे की कमी न लगे पर जीवन के इस अंतिम चरण में अभी तक उसके अज्ञात मन में बेटे की ही कामना है। उस दिन सुबह जब से एंड्रोस्कॉपी के लिए ऑपरेशन थियेटर में ले गए तो मां ने मन-ही-मन मानस-पुत्र को जन्म दिया।

'जा इस वक्त सब सो रहे हैं। तू चुपके से बच्चों के वार्ड में मेरे बेटे का चेहरा देखकर मुझे बता कि कैसा हैं?'

मैं झूठमूठ ही दरवाजे के बाहर गई, कुछ देर तक लॉबी में टहलकर वापस आ गई।

'मां, बहुत सुंदर बेटा है तुम्हारा।' सुनकर उसके फीके चेहरे पर खुशी की रेखाएं उभर आईं। फिर झट से बोली, 'उसे यहां जल्दी से ले आ, मेरा भी देखने को मन करता है।'

'मां, तुम अभी स्वस्थ नहीं हो और तुम्हारे हाथों में लगी सुइयां अगर तुम्हारे बेटे को चुभ गई तो। तुम थोड़ी स्वस्थ हो जाओ, फिर अपने बेटे से खूब जी भरकर खेलना।'

वह फौरन मान गई और उसने आंख बंद कर लीं। मैं मां के बिस्तर के पास की खिड़की से कुछ देर तक बाहर देखती रही। अप्रैल और मई के महीनों में समग्र गुजरात में बेहद गर्मी होती है, पर मध्य रात्रि का यह वातावरण बहुत शांत और शीतल था। खिड़की से आधा चंद्रमा दिख रहा था। गुलमोहर के पेड़ की शाखाएं केसरी फूलों से लदी थी।

मां का हाथ फिर हिलाकर, फिर आंखें खोल के वह धीरे से बोली, 'विशु, एक बात की चिंता है मुझे।'

'कौन-सी चिंता?'

'कि लोग क्या कहेंगे? इस उम्र में बेटा होने पर लोग मजाक तो नहीं करेंगे?'

'नहीं मां, आजकल जमाना बदल गया है। टी.वी. में दिखाते हैं, बड़ी-बड़ी उम्र की औरतें भी बच्चे पैदा कर सकती हैं। तुमने अखबार में भी पढ़ा होगा? उसने संतोष से गर्दन हिलाई।

'तुम बेटे का नाम क्या रखोगी?'

वह हंसी, 'नाम तो उसके पिता ने पहले से ही रख दिया है, अच्छा नाम है गणेश-गणपति।'

मैंने पूछा, 'गणेश?' शंकर भगवान के गणेश?

'हां, वहीं, वहीं तो मेरा बेटा हैं। तुझे मालूम है गणेश के पिता ने खुद आकर मुझसे ब्याह किया, तू तो यहां थी नहीं, मैं तुझे कैसे बताती।'

'तो अब तुम शंकर भगवान की ब्याहता हो', तो सुन के वह शरमाई।

मेरी अठहत्तर साल की मां अपनी बीमारी की तंद्रावस्था में शंकर भगवान की ब्याहता बन गई।

'शंकर भगवान से कब मिली तुम?'

'उन्होंने ही चुनरी भिजवाई थी, ब्याह के बाद कुछ दिनों में चले गए। उनको तो समग्र सृष्टि की चिंता है पर बेटे की सूरत देखने के लिए तो बाप को आना चाहिए।'

फिर मां ने मुझे और पास खींचा, बोली, ''मैं तो इतनी बदसूरत हूं फिर मेरा बेटा सुंदर कैसा बना? उसके पिता को मैं पसंद कैसे आई?'

मैंने मां के सिर पर हाथ रख दिया। मां सिर्फ छह महीने की थी तब चेचक की बीमारी ने उनके चेहरे को बदसूरत बना दिया। उस जमाने में लड़की का पैदा होना ही मां-बाप के लिए चिंता का कारण होता था, और अगर लड़की किसी हादसे से कुरूप हो गई तो और भी परेशानी। यह कुरूपता की पीड़ा कितनी गहरी होगी कि इतनी बीमारी में भी मां ने अपने कुरूपता के ज्ञान से सतर्क है।

'मां शंकर तो भगवान है ना? तुम्हारा चेहरा कुरूप हो चाहे चेचक के दागों से भरा हो, और तुम्हारा नाम पार्वती नहीं उर्मिला हो, फिर भी भगवान में तुम्हारे मानसिक सौंदर्य को देखने की आत्मिक चेतना और शक्ति है। उन्हें तो कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हारा नाम उर्मिला है। तुम मन से ही पार्वती की तरह उनकी समर्पित हो, और तुम्हारा मानसिक सौंदर्य तुम्हारे बेटे के रूप में जन्मा है, इसीलिए तुम्हारा बेटा सुंदर है।

'बेटा, अब तू सो जा, कल सुबह ही गणेश के पिता को फोन कर देना।'

शंकर तो कालभैरव हैं, काल के प्रतीक हैं, और पार्वती हैं हिमालय की पुत्री। पार्वती की कोख से पैदा हुए थे गणेश जिन्होंने आज मेरी मां की मानसिक कोख से पुनः जन्म लिया था। सदियों से चली आ रही हमारे देवी-देवताओं की कहानियां मैं अब भी बचपन में सुनती थी, उनमें से महाभारत के भीम और शिव-पुराण के गणेशजी मेरी पसंद के चरित्र थे। पापा से पौराणिक कथाएं सुनकर अक्सर मेरा मन करता था कि मैं हजारों सालों की परतें उखाड़कर भारतवर्ष के उस युग में पहुंच जाऊं और कथा के सारे पात्रों को एक बार जाकर प्रत्यक्ष देखूं कि दस सिर साफ करने में उसको कितनी परेशानी होती होगी। सर्दी लग जाने पर छींके खाता हुआ रावण कैसा लगता होगा। मुझे बचपन की बातें सोचकर हंसी आ गई। पार्वती ने हिमालय की पर्वत शृंखलाओं के बीच जब गणेश को जन्म दिया तब तो शायद उसका नाम कार्तिकेय था। पर्वत पुत्री पार्वती को बच्चे बड़े करने में कष्ट तो अवश्य पड़े होंगे।

रात्रि के विशाल फलक पर मैं देर तक शंकर भगवान के साथ मेरी मां का ब्याह देखती रही। चेचक के दागों से भरा मेरी मां का चेहरा मुझे तो कभी कुरूप लगा ही नहीं था, पर आज शंकर भगवान की दुल्हन के रूप में मेरी मां को सोचना मुझे अच्छा लगा।

दूसरे दिन सुबह ही गणेश के पापा को फोन करके बुलाने की रटन मां ने शुरू कर दी। इस समस्या का हल लाने के लिए मैंने डॉक्टर से कहा कि, 'अगर कोई आदमी तैयार हो जाए, तो उसको शंकर भगवान की तरह कपड़े पहनाकर मां से मुलाकात करवा दें, तो मां को संतोष मिल सकें।' डॉक्टर मजमूदार बोले, 'वैसे यह व्यवस्था हो सकती है, पर कुछ मुश्किलें इसमें भी है। आप पहले यह जान लें कि शंकर भगवान मां की दृष्टि में कैसा स्वरूप रखते हैं।' फिर उन्होंने बताया कि, 'एक आदमी था, उसके दिमाग को कहीं से चोट लग गई। कुछ दिनों के बाद वह डॉक्टर के पास गया। कहने लगा, उसके पेट में दर्द है। डॉक्टर ने पूछा कि क्या खाना खाया, तो दर्दी ने जवाब दिया कि वह गलती से घोड़ा निगल गया। डॉक्टर ने बहुत समझाया कि इतना बड़ा घोड़ा कोई निगल नहीं सकता। पर उस आदमी के दिमाग को घोड़ा निगलने की बात सताती रही और वह रोज-रोज अस्पताल में डॉक्टरों को परेशान करता रहा। आखिर थककर डॉक्टरों ने सोचा कि उसको झूठमूठ ही ऑपरेशन थियेटर में ले जाया जाए और उसके पेट में जरा-सा चीरा लगाकर फिर सी लिया जाए। ऑपरेशन थियेटर के बाहर एक घोड़े को बांध दिया जाए और दर्दी को फिर दिखा दें कि देखो उसके पेट में जो घोड़ा था उसको ऑपरेशन करके निकाल दिया गया है। डॉक्टरों ने वैसा ही किया, और उसको ऑपरेशन थियेटर में ले जाकर बाहर एक सुंदर-सा सफेद घोड़ा बांध दिया। दर्दी जब होश में आया तो उसको दिखाया गया कि कितना बड़ा घोड़ा उसके पेट से निकाल दिया गया। दर्दी ने पहले तो घोड़े को देखकर बहुत बड़ी राहत की सांस ली, फिर उसने दूसरी बार फिर से घोड़े को ध्यान से देखा—फिर जोर से चीखा, कि वह तो काला घोड़ा निगल गया था सफेद नहीं।

डॉक्टर की बात ठीक थी। किसी आम आदमी को शंकर के रूप में मां के पास ले जाना ठीक नहीं था, मां को पता चल जाए कि वह शंकर नहीं कोई बहरुपिया है तो उसके दिमाग के लिए और भी खतरा हो सकता है।

'अरे तुम यहां सीढ़ियों पे बैठी हो? पौने छह बज गए। तुम्हें कुछ समय का अंदाजा है?' दीदी मेरे कंधे को पकड़कर मुझे हिला रही थी।

मैं घबराकर खड़ी हो गई, मेरे हाथ में मां के मंगवाए सामान की थैली थी। दीदी की शक्ल भी रोने जैसे हो गई थी, छह बजने में अब सिर्फ पंद्रह मिनट बचे थे, आज मैंने ही मां को विश्वास दिलाया था कि शाम को छह बजे शंकर भगवान जरूर आएंगे। आज अभी घंटे भर की प्रतीक्षा के बाद मेरी बीमार मां का दिल टूट जाएगा। दीदी का हाथ पकड़कर मैं सीढ़ियां चढ़ने लगी, दीदी के हाथों के कंपन से मुझे उसके मन का अंदाजा हो रहा था। वह खुद भी चाहती थी कि किसी तरह से मां के मन को तृप्ति मिले।

हम लोग मां के कमरे में आए, तो देखा कि मां के बीमार चेहरे पर आज पहली बार इतनी खुशी की चमक थी। मेरी बड़ी दीदी आशा घर से गणेश की मूर्ति ले आई थी और मां गणेश की मूर्ति को दोनों हाथ में पकड़ के उससे बातें कर रही थीं, 'बेटा—अच्छी तरह पढ़ाई करना और रोज स्कूल जाना, दूसरे बच्चों के साथ खेलना, और झगड़ा न करना बेटे—तू तो मेरा राजा बेटा है।' कहते हुए मां ने गणेश की मूर्ति को चूमा—और उसे सीने से लगाकर आंखें बंद कर लीं।

मुझे एकदम से सूझा कि ठीक छह बजे मैं मां से और दोनों

दीदियों से कहूंगी कि चलो, धूप, अगरबत्ती और भगवान के प्रसाद की थाली तैयार करके हम सब लोग ध्यान में बैठ जाएंगे और मां से कहेंगे कि भगवान सिर्फ उन लोगों के मन में आकर दर्शन देते हैं जो पूरी एकाग्रता से उनका ध्यान करते हैं। शायद मां इस बात को मान ले और अपनी जिद छोड़ दे।

मां के बिस्तर के पास वाले कमरे में एक सोलह साल का लड़का था जो कई दिनों से बेहोश था। मोटर साइकिल की दुर्घटना से उसके सिर पर गहरी चोट आई थी। उस लड़के के दो बड़े भाई दिन-रात उसी के पास रहते थे। वे दोनों भाई अक्सर मां का हालचाल भी पूछते रहते। ऐसा लगता था कि आई.सी.यू. में जितने भी मरीज थे उनके रिश्तेदारों के भी आपस में एक-दूसरे के प्रति हमदर्दी के नाते संबंध जुड़ गए थे।

ठीक छह बजने में पांच मिनट बाकी थे, तब मेरी बड़ी दीदी के पास सोलह साल के उस लड़के का बड़ा भाई आया और बोला, 'बड़ी दीदी, छोटू को आशीर्वाद देने गांव से गुरुजी पधारे हैं। वे बड़े विद्वान हैं और गांव में आश्रम चलाते हैं। करीब पांच सौ बच्चे उनके आश्रम में रहकर अभ्यास करते हैं। क्या आप मिलेंगी गुरुजी से?'

दीदी ने सहर्ष उसका निमंत्रण स्वीकारा और पड़ोस के कमरे में चली गई।

कुछ देर बाद मां के कमरे का दरवाजा खुला और बड़ी दीदी अंदर आई। उसके पीछे एक ऊंचा जटाधारी पुरुष था। बहुत ही तेजस्वी चेहरा, लंबी-सी सफेद दाढ़ी और विशाल-सी काया पर उन्होंने धोती लपेटी थी और पैरों में लकड़ी की पादुका पहनी हुई थी। मैं समझ गई कि साधु के वेश में वही गुरुजी थे। वे सीधे मां के बिस्तर के पास जाकर खड़े हो गए। मां का चेहरा खिल उठा। उसकी निस्तेज, पीली फीकी आंखों में इतनी प्रसन्नता थी कि मां का वह चेहरा मैं ज़िंदग़ीभर नहीं भूलूंगी। मैंने कहा, 'देखो मां, तुम्हारे पास कौन आया है?' मां ने हाथों से उस साधु को प्रणाम किया, फिर अपने सीने से लगाई हुई गणेश की मूर्ति को गुरुजी के हाथ में देने की कोशिश की। गुरुजी ने गणेश की मूर्ति को पकड़ा और कहा, 'बस तुम इसी तरह श्रद्धा रखो और गायत्री जाप करो।' मां ने कहा, 'मेरी बीमारी को ठीक कर दो।' गुरुजी ने आकाश की ओर उंगली करके कहा कि सब कुछ ऊपरवाले के हाथ में है। मां ने फिर से प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े, और गुरुजी मां से विदा लेकर चले गए।

मैं स्तब्ध होकर खड़ी थी। मुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं गुरुजी से बैठने के लिए कहूं या उनका कुछ आदर-सत्कार करूं। मझली दीदी भी अवाक्-सी वहीं खड़ी थी। मां की धीमी-सी आवाज आई, 'बेटा मिठाई बांट सबको।' मैं फौरन मां के कमरे से निकलकर पड़ोस के कमरे में गई, जहां वह सोलह साल का लड़का बेहोश पड़ा था। वहां एक नर्स खड़ी हुई शायद कोई रिपोर्ट देख रही थी। फिर मैं भागकर नीचे गई तो वहां भी कोई नहीं था।

मैंने रिसेप्शनिस्ट को पूछा, तो उसने बताया कि किसी साधु को वहां से गुजरे हुए कुछ पांच-सात मिनट हुए होंगे।

मैं अस्पताल की इमारत से निकलकर बाहर सड़क पर आ गई, तो बेहोश लड़के का बड़ा भाई, जो दीदी के साथ गुरुजी को लेकर मां के कमरे में आया था, वहीं मिल गया। मैंने उससे पूछा, 'तुम्हारे गुरुजी कहां चले गए?' मैंने धन्यवाद भी नहीं किया, ना ही उनका कोई स्वागत किया।'

वह बोला, 'मैं भी तो कुछ नहीं कर सका। आज तो उनको यहां आना ही नहीं था। वे तो दिल्ली जाने वाली गाड़ी में बैठकर अयोध्या के लिए रवाना हो गए। उनका तो अयोध्या से लौटते समय यहां आने का इरादा था, पता नहीं उन्हें अयोध्या जाते वक्त यहां आने का कैसे मन हुआ? फिर वह देर तक गुरुजी की विद्वत्ता के बारे में कई बातें बताता रहा। हम लोग अस्पताल की पहली मंजिल पर बैठे-बैठे बातें करते रहे। जब बड़ा भाई चला गया तो अस्पताल के प्रवेश-द्वार के पास ही जहां गणेशजी का छोटा-सा मंदिर है, वहां खड़े-खड़े ही मैं देर तक काले संगमरमर से बनी गणेशजी की मूर्ति को देखती रही।

पहली बार मन ने चाहा कि कहीं आराम से बैठकर गणेशजी से कुछ बातें करूं और उनसे कहूं कि देखो, 'तुम दूसरों के लिए तो बने हो भगवान, मगर अब मेरे लिए तो तुम मेरे छोटे भाई हुए। हां, तुम्हारी शक्ल न तो मां से मिलती है, ना ही पापा से। पर तुम्हारी तोंद को कोई जरा ध्यान से देखे तो उसे जरूर पता चल जाएगा कि तुम जरूर मेरे पापा के बेटे हो। पापा तुम्हारी तोंद को देखकर जरूर गर्व से कहते कि देखो, 'मेरा बेटा बिल्कुल मेरे जैसा है।'

इतने में किसी ने मंदिर की घंटी बजाई और मैं जल्दी से सीढ़ियां चढ़कर मां के कमरे में वापस आ गई। देखा, मां बड़े प्रसन्न भाव से शांति की गहरी नींद में सो रही थीं। ✠✠✠

थोड़ी देर और...

डॉ. शैलजा सक्सेना

मार डाला, मेरे पिता को, मेरे एक चाचा और मेरे एक भाई को.... मेरी आँखों के सामने मार डाला! माँ ने मुझे अंदर की तरफ धक्का दिया और ''भाग'' कहा। बाहर की तरफ जाते-जाते मुझे अम्मा का गरारे के पैर में उलझ कर गिरना ही दिखा, गिरते-गिरते भी उनके हाथ का इशारा मुझे भागने को कह रहा था। सुल्ताना और बड़ी आपा घर के बाहर गईं हुई थीं सो पता नहीं उनका क्या हुआ? पता नहीं अम्माँ का क्या हुआ? पता नहीं चाचा का क्या हुआ?

15 अगस्त 1947। दूसरी बड़ी लड़ाई का समय! लेबनॉन के यहूदी लोग छोटे-छोटे समूहों में छिप कर अपनी जमीन पर अपना देश बनाने का सपना लिये शहरों से चुपचाप निकलने की ताक में थे। शहर उनके खिलाफ हो रहा था, देश उन्हें जिंदा या मुर्दा बाहर खदेड़ने की योजनायें बना रहा था। लोग एक दूसरे के चेहरों में विश्वास और अविश्वास के साये नाप रहे थे।

ऐसे में मि. बेन-अब्राहम के घर के अहाते में वह लड़की घुसी। चेहरे से बदहवास और बेहद थकी हुई लड़की, जिसकी पोशाक से गाँव की घास और सड़कों की धूल की मिली-जुली बू आ रही थी। रात का करीब 11 बजा होगा जब दरवाजे पर जोर से खट-खट की आवाज हुई थी। मि. बेन-अब्राहम आजकल एक आँख से सोते ही। जमाना ही ऐसा है कि दोनों आँखों से सोने का मतलब है, मौत और एक अकेले अपने ही बात हो तो चलो कभी आँख लग भी जाये पर उनके निकट-दूर के अनेक रिश्तेदार भी अब अपने जरूरी सामान के साथ उनके घर आ कर रह रहे थे। उनका घर राजधानी से दूर सिडान शहर की दक्षिणी सीमा पर बना हुआ है अत: शहर सामान लाने ले जाने के रास्ते पर है। इस दृष्टि से लोगों की पैनी निगाहों से कुछ हट कर, लेकिन सुविधापूर्ण स्थान पर है अत: आस-पास के गाँवों में रहने वाले उनके रिश्तेदारों को उनके घर आकर रहना ही सुरक्षित लगा था। अब बच्चे और बड़े, कुल मिला कर उनके घर इक्कीस लोग थे जिनमें उनका खुद का 17 साल का इकलौता बेटा शामिल नहीं था। वह ब्रिटिश फौज में शामिल होने के लिये तीन साल पहले जबरदस्ती पकड़ बुलाया गया था। उनका अपने बेटे को रोकने का कोई भी प्रयास कारगर साबित नहीं हुआ। मि. बेन-अब्राहम किसी जमाने में सरकारी नौकर रह चुके थे। इस शहर में आकर अपनी मछली बेचने की दुकान खोलने से पहले लगभग 13 साल उन्होंने सरकारी न्यायालय में नोट लेने वाले की हैसियत से काम किया था। उनके द्वारा कोर्ट के नोट और कार्यवाही सलीके से लिखी होती थी और अच्छी बात यह थी कि सटीक और सत्य होती थी। उनकी काबलियत को सराहते हुये, नौकरी छोड़ने पर उन्हें दफ्तर की गोल्डन सील वाली एक चिट्ठी भी दी गई

सम्पर्क: 2288 Dale Ridge Dr. Oakville, Ontario L6M 3L5 Ph.: 1-905-847-8663, shailjasaksena@gmail.com

थी। मि.बेन-अब्राहम जानते थे कि आज उस चिट्ठी पर भरोसा करके कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता पर घर के शेष सदस्य जानबूझ कर यह मानना चाहते थे कि आखिर उस चिट्ठी का बुरी परिस्थितियों में कोई तो अच्छा उपयोग हो सकेगा। एकाध बार मि. बेन-अब्राहम ने समझाना भी चाहा पर जब उन्होंने देखा कि वो चिट्ठी तिनके का सहारा बन कर घर के लोगों को हिम्मत बँधा रही है तो वे चुप हो गये। वे जानते थे जब सिमहा को सरकार के लोग सेना में भरती होने का आदेश देने आये थे तो उस चिट्ठी और उनके और मिसेज बेन-अब्राहम के आँसुओं ने कोई काम नहीं किया था। सिमहा उनका इकलौता बेटा, दुकान में उनका और घर में माँ का दायाँ हाथ था पर सरकारी निर्णयों के आँखें और कान नहीं होते।

जब रात ग्यारह बजे कुंडा खटका तो वे पास मेज पर रखी पिस्तौल ले कर कमरे से बाहर निकले।

बाहर ठंडी हवा में काँपती, थकी हुई सी एक लड़की खड़ी थी जो देखने से 14-15 साल की लगती थी।

मि. बेन-अब्राहम ने पहले हैरानी से उसे देखा, फिर चारों ओर सतर्क निगाह डाली पर कहीं कोई दिखाई नहीं दिया।

नजरें लड़की पर वापस लाते हुये भी वे कनखियों से बाहर की तरफ देख रहे थे। आजकल लड़कियों और बच्चों का इस्तेमाल कर के दूसरे के घरों में घुसने वालों के किस्से उन्होंने सुन रखे थे।

''कौन हो तुम और क्या चाहिये?''

लड़की ने हकला कर धीमी आवाज में कहा, ''अलुश्का''

मि.बेन-अब्राहम ने आवाज में छिपे डर को सुना पर आधी रात किसी का आना अब भी उन्हें अचंभित किये था और जो आधी रात को एक अजनबी का दरवाजा खटखटा सकती है वह इतनी भी डरपोक नहीं होगी कि जैसी उसकी आवाज थी। इस बार उन्होंने जोर से कहा,

''तुम्हारे साथ कौन आया है? और क्या चाहिये तुम्हें?''

लड़की उनकी ऊँची आवाज से कुछ और सिकुड़ गई, इस बार धीमी पर साफ आवाज में बोली,

''मैं अकेली हूँ और शहर से भाग कर बचते-बचाते इस समय आ पाई हूँ। आपके बेटे सिमहा की दोस्त हूँ'' सिमहा का नाम मि. बेन-अब्राहम के लिये करेंट जैसा काम किया। संभाल कर नजर इधर-उधर डाली। इस बार की नजर उस नाम को किसी के कानों में न पड़ जाने से बचाने को थी जब कि पहले वाली नजरें किसी छिपे खतरे को ढूँढ़ने वाली थीं।

अबकी तहकीकात करते समय उनकी आवाज हल्की थी,

''सच कहती हो, सिमहा की दोस्त हो? कोई सबूत है?''

अलुश्का ने मोटे शाल के भीतर कुछ खड़खड़ाहट की, वह इस तरह के प्रश्न के लिये तैयार थी। फिर एक कागज की पीली सी तुड़ी मुड़ी पर्ची निकाल कर मि. बेन-अब्राहम के आगे बढ़ा दी।

उन्होंने रिवाल्वर जेब में रख कर हाथ की टार्च को कागज खोल, उस पर गड़ा दिया। उस पर्ची पर सिमहा की लिखाई में उसका पूरा नाम और घर का पता लिखा था। मि.बेन-अब्राहम एक मिनट को अचकचा कर रह गये।

पति को ढीला पड़ता देख मिसेज बेन-अब्राहम जो अब तक दरवाजे की आड़ में खड़ी थीं, कुछ आगे आ गईं।

''क्या है यह?'' वो फुसफुसाईं। आजकल औरतें ऐसा ही करती हैं, जब तक पति सचेत रहता है तो उसके कुछ पीछे खड़ी उसके निर्देश पर नजर गड़ाये खडी रहती हैं पर जैसे ही पति कुछ ढीला होता दिखाई दिया तो कमान सँभालने उसके बराबर आ खड़ी होती हैं। उनसे यही अपेक्षा होती है कि वे ऐसा करें।

मि. बेन-अब्राहम ने कुछ पीछे मुड़ कर हाथ की पर्ची उनके हाथ में दे दी। मिसेज बेन-अब्राहम ने उसे देखते ही सिमहा की लिखाई पहचान ली। पीछे से ही कुछ कड़ी आवाज में बोलीं, ''किसने दी तुम्हें?''

लड़की जानती थी कि प्रश्न उसी के लिये है, बोली:

''सिमहा ने ही दी, लगभग ढाई-तीन साल पहले जब वह मिलिट्री ट्रेनिंग के लिये हमारे शहर ''विलायत बेरूत'' से ले जाया जा रहा था। उसने कहा था कि कोई मुसीबत हो तो मेरे घर चली जाना''! आखिरी वाक्य उसने धीमी आवाज में रुक-रुक के कहा।

मिसेज बेन-अब्राहम को लड़की की आवाज सच लगी। अब उन्होंने तुरंत असमंजस में खड़े अपने पति को पीछे से टोहका

लगाया, ''अंदर लेकर आओ इसे, बाहर खड़े रहने से ज्यादा खतरा है'' ''खतरा'' शब्द में छिपे सारे डरों को समझ, बिना देर करे वे उसे अंदर ले आये और कुछ सैकन्डों में ही उस घर का दरवाजा बंद हो गया।

अगस्त की गर्मी भरी रात थी पर लड़की काँप रही थी। मिसेज बेन-अब्राहम ने जब यह देखा तो उसे कुर्सी पर बिठा कंबल लाने चली गईं। उनके पति ने यह कह कर अपने बिस्तर की राह ली कि सुबह बात करेंगे और उनकी बीबी उसे लेटने की जगह दिखा देंगी। जूली यानि मिसेज बेन-अब्राहम, रसोई में जलने वाले अलाव में और छोटी लकड़ियाँ डाल उसे तेज कर रहीं थीं ताकि उस लड़की को कुछ और नहीं तो गरम दूध और काक (ब्रेड) ही दे दें। रसोई में यह अलाव रात में सुलगता छोड़ दिया जाता है ताकि रात किसी को गरम पानी-दूध की जरूरत हो तो चार-छह छोटे लकड़ियाँ डाल कर सुलगा ले। सर्दियों में यह अलाव घर के लोगों से वैसे भी देर रात तक घिरा रहता।

जूली जब तक दूध लेकर आईं, लड़की कुर्सी पर ही ऊँघ गई थी उसे उनके आने का पता न चला। उन के लिये यह यह अच्छा मौका था उसे देखने का! लड़की पतली-दुबली थी और सोते समय भी उसके पीले चेहरे पर भूख, प्यास, डर और आशंकायें फैली थीं। उन्हें उस लड़की में खुफिया होने या खतरे वाले कोई लक्षण नहीं दिखे बल्कि वह ही अब उन सबके बीच खतरें से खेल कर आ गई है। सबका ध्यान आते ही उन के तेज दिमाग ने योजना बनानी शुरू कर दी। वो घर में बैठे इतने लोगों की चिन्ताओं का केन्द्र इसे नहीं बना सकतीं। हर कोई असुरक्षित है और हर असुरक्षित व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से डरता है और यह डर हमें सच नहीं देखने देता, आशंकाओं भरी कल्पनाओं में उलझाता है। वे यह सब जानती ही कि ऐसे ही समय में लोग अँधेरों में भूत देखने लगते हैं। उन्होंने सोचा कि वे बेकार के डरों में न उलझ कर इसे सिमहा की दोस्त के रूप में ही सुबह सब के सामने पेश करेंगी ताकि लोग बेकार के सवाल कर के इसे खुफिया साबित करने पर न तुल जायें पर साथ ही खुद इससे सवाल करेंगी और नजर रखेंगी ताकि उनका परिवार सुरक्षित रह सके।

पर इस समय इसे कहाँ सुलाया जाये? घर के चारों सोने के कमरे लोगों से भरे हैं और ज्यादा खटपट करने से लोगों के उठ जाने का खतरा है। उन्होंने हाथ के दूध के गिलास को पास की मेज पर रखा और कुछ सोचते हुये भीतर से तीन कंबल उठा लाईं। दो कंबलों को उन्होंने दोहरा करके बिस्तर बनाया और एक कंबल किनारे रख लड़की को धीरे से झिंझोड़ा। लड़की चौंक के उठ बैठी। बिस्तर की ओर इशारा करते हुये उन्होंने उसे दूध पीने को दिया जिसे वो लड़की एक घूँट में खत्म कर गई। अपने शाल को उतार कर सिरहाने रख वो कंबल को ओढ़ कर लेट गई। जूली की आँखों में नींद नहीं थी, इस एक किस्से में छिपे कई अनजान किस्सों की संभावनाएँ उनके दिमाग में चहलकदमी कर रही थीं। लड़की लेटते ही फिर ऊँघ गई थी, शायद सो ही गई हो। सुबह के लिये अपनी कहानी तैयार करती जूली को बहुत सी उलझनें हो रही थीं। वो कुछ भी तो नहीं जानतीं, बस इतना कि इसका नाम अलुश्का है जो कि नये प्रचलन वाले यहूदी लड़कियों के नामों जैसा है। उसके पास सिमहा के हाथ की लिखी पर्ची है। सिमहा सब को तो अपने घर का पता लिख कर नहीं देगा सो मतलब यह कि सिमहा और इसके बीच कुछ तो संबंध रहा है। सिमहा दो साल, दस महीने और 16 दिन पहले उनसे दूर ले जाया गया। ट्रेनिंग कैंप और उसके पहले पड़ाव से तो उसके पत्र आते रहे पर पिछले कई महीनों से जब से लड़ाई तेज हुई है उसके पत्र नहीं आ रहे। यह स्वाभाविक ही है, लड़ाई के दिनों में पत्र कहाँ आ पाते हैं। वे लोग अखबार से सब हाल लेते और अंदाजे लगाते कि सिमहा कहाँ होगा। आज उसकी लिखाई की पर्ची ने जूली की आँखें नम कर दीं। लड़का गर्मी-ठंड में, फटते बमों के बीच जाने कहाँ भागता-फिरता होगा और वो यहाँ घर की दीवारों के बीच, आरामदेह बिस्तर पर हैं! वो अकुला के उठ बैठीं। अक्सर जब ऐसे ख्याल उन्हें आते तो वो बेचैन हो कर उठ बैठतीं। मि. बेन-अब्राहम उनकी हालत जानते थे और यह भी कि चिंता से वो बीमार हो जायेगी सो प्यार से थपकते हुये उन्हें लिटा देते पर आज तो उन के पति ही नहीं पास में, उनके पास तो यह लड़की लेटी है जो अपने को सिमहा की दोस्त कहती है, कहती है कि बेरूत से आई है, पर वो तो बहुत दूर है तो यह आई कैसे यहाँ? कब की चली हुई होगी? कहाँ रही होगी बीच के दिनों में? और यहां क्यों आई? यह तो जानती है कि सिमहा यहाँ नहीं है? किस परिवार से है? अरब है कि यहूदी? नाम तो यहूदी है पर कोई माथे पर तो लिखा नहीं है कि कौन अरब है और कौन यहूदी? आदमी तो फिर दाड़ी से पहचाने जाते हैं पर औरतों के पास तो ऐसा कोई निशान होता नहीं है। वैसे भी औरतों की एक हैं जात होती है, औरत!! आदमी का नाम, जाति, काम और धर्म होते ही, औरत का एक ही धर्म है, औरत होना और सारी साँस्कृतिक

अपेक्षाओं को पूरी करना! आदमी लड़ता है और जीती जाती है औरत! आदमी योजनायें बनाता है और उन योजनाओं के पहियों का तेल बनती है औरत, आदमी मरता है और उजड़ती है औरत! औरत जब प्रश्न करती है तो झिड़कियाँ खाती है, सलाह देती है तो बेवकूफ कहलाती है!

जूली यह सब अनुभव से जानती हैं। वो इस लड़की के बारे में सोचने लगीं, कहाँ से, कैसे आई यह? अचानक ही पूछ बैठीं, ''कब चलीं थीं अपने घर से?'' अनजान जगह पर सोती हुई लड़की, सोते हुए भी अपनी छठी इंद्रिय खोल कर सो रही थी, कुनमुनाई और फिर बुदबुदा कर बोली, ''जुम्मे को!!''

उसके यह कहते ही जूली को जैसे बिजली छू गई, लड़की भी सोता नींदी में निकले शब्द की प्रतिक्रिया को पहले से ही समझ काठ की हो गई!

कुछ देर केवल रसोई से काठ के कड़कड़ाने की आवाज और बाहर तेज हवा की आवाज उन दोनों के बीच बहती रही। लड़की कपड़ों की इतनी तहों के नीचे भी जूली की नुकीली निगाहों से छिल रही थी। कुछ मिनट वह यह बर्दास्त करती रही पर जब उसे लगा कि वे उसके सच का इंतजार कर रही ही तो वह उठ कर बैठ गई। वाकई में जूली का कोमल चेहरा कड़ा हो गया था और नीली-हरी आँखें गुस्से से और गहरी हो गईं थीं।

लड़की ने उनकी आँखों की तरफ क्षण भर देखा फिर नजर नीची कर ली। उसे सिमहा की कंचों जैसी नीली और हरी आँखें याद आईं जो बिल्कुल अपनी माँ जैसी थीं। उसे लगा कि इससे पहले कि मिसेज बेन-अब्राहम का इंतजार और धैर्य दोनों चुक जायें और वे उसे इस भरी रात में घर से बाहर फिंकवा दे, उसे सच कहना ही होगा। वो घुटने सिकोड़ कर बैठ गई और गरदन नीचे कर के बोलने लगी, ''लगभग तीन साल पहले मुझे वो मिला था, आपका बेटा.. बेरूत में, बहुत से ट्रक भर कर जा रहे थे लड़ाई की ट्रेनिंग के लिये। तीन दिन रुके वे ट्रक बेरूत में। उन्हें और सिपाही भर्ती करने थे। मेरा बड़ा भाई और तीन चचेरे भाई भी भर्ती किये गये। वे लोग घर-घर जाकर 15-16 साल के लड़कों को भर्ती कर रहे थे। मेरा भाई 15 का हुआ ही था जब वे उसे भर्ती करने आ गये। वो हम तीनों बहनों के बीच का है। मैं तब 13 साल की थी। मैं घर में उसकी सबसे ज्यादा चहेती बहन थी, हर समय उसके पीछे लगी रहती थी। जब वे उसे भर्ती कर के ले कर चले तो मैं बहुत रोयी और जिद्द कर के पिता जी के साथ छावनी तक गई। वहाँ उसी की उम्र के बहुत से लड़के थे। वो तो सब से मिल कर बहुत खुश हो रहा था पर मैं बहुत दुखी थी। पिता जी छावनी के बड़े साहब से बात कर के कागज भरने लगे और मैं अकेली कुछ दूर, एक पत्थर पर उदास हो कर बैठी थी। कुछ देर बाद एक लड़का वहाँ आकर बैठ गया। वो मेरे भाई जितनी उम्र का था, वो आपका बेटा सिमहा था!''

जूली, जो कुछ मुँह मोड़े लड़की के झूठ बोलने की नाराजगी मन में लिये बैठी थीं, सिमहा के नाम से उत्सुक हो आईं। गरदन लड़की की ओर मोड़ उसको देखती हुई कहानी सुनने लगीं, जब उन्होंने कुछ नहीं कहा तो लड़की ने अपनी कहानी फिर शुरू की;

''उसने ही मुझे अपना नाम बताया। उसने मुझ से पूछा कि क्या मैं भी फौज में भर्ती होने के लिए आई हूँ?''

उसने यह बात इतने भोलेपन से पूछी थी कि मैं खिलखिला कर हँस पड़ी। वो मुझसे बड़ा था पर कितना भोला था।

मेरे हँसने से वो शर्मा गया पर अपनी गलती भी समझ गया। मुझे अपने भाई की चिंता थी सो सारी बात बता कर मैंने उससे कहा कि वो मेरे भाई का दोस्त बन जाये ताकि मेरे भाई को घर की याद कम आये। मेरे चाचा के लड़के बड़े थे और उस पर धौंस जमाते थे सो जब सिमहा ने कहा कि वो मेरे भाई का दोस्त बनेगा तो मुझे बहुत अच्छा लगा कि कोई तो मेरे भाई के साथ होगा। फिर उसने मुझ से मेरे बारे में पूछा। इसके बाद पिता जी आ गये। मैं अपने भाई को अभी अलविदा नहीं कहना चाहती थी और अगले दिन मुझे सिमहा से बात कर के यह पक्का करने का मन भी था कि वो मेरे भाई का दोस्त हुआ कि नहीं। खैर, मेरे बहुत जिद्द करने पर पिताजी और मैं उस रात उनके एक दोस्त के घर में रहे जो कि छावनी के एकदम पास में था। अगले दिन हम भाई से फिर मिले। सिमहा से भी मैं मिली। मेरे भाई से उसकी दोस्ती हो गयी थी। सुन कर मुझे राहत मिली। उस दिन सिमहा ने मुझे आप सब के बारे में बताया। उसे आप सब की बहुत याद आ रही थी खास कर आप की। उसने आप के हाथ की बनी रोटी का टुकड़ा भी मुझे खिलाया जो बहुत मीठा और अच्छा था। उसे यह घर, अपना कमरा, आगे के खेत सब बहुत याद आ रहे थे। छावनी में सभी लड़के अपने-अपने घर की याद कर रहे थे सो उनके सामने वह यह सब कुछ नहीं बोलना चाहता

था। फिर फौज में जानेवाले लड़की को कड़ा बनने की ट्रेनिंग दी जा रही थी, कोई ऐसे रो भी तो नहीं सकता था। आखिर वह लड़का था, लड़की नहीं।''

वह साँस लेने रुकी कि देखा कि मिसेज बेन-अब्राहम के आँखों से आँसू बह रहे ही। अपने बिछुड़े बेटे का चेहरा उनके सीने में गड़ा है, आज उस चेहरे का बयान कोई और कर रहा था, उन्हें लगा कि मन हुमक कर गले में फँस जायेगा। वही तो सिखाती रही उसे हमेशा कि ''लड़के हो कर रोते नहीं''! वो पूछता था, ''क्यों?'' फिर आगे बहसता, ''तो फिर लड़की के आँसू क्यों बनते ही? टीयर ट्यूब तो उनके भी होती है न माँ? वो भी रो सकते ही''! घर पढ़ाने के लिये जो मास्टर आते थे, वो हमेशा सिमहा के बुद्धिमान होने की तारीफ करते थे पर जब वह ऐसे बहसता तो वो झल्ला जातीं, कहतीं, ''बस जो कहा है उसे मानो'', उनके पति के सामने जब कभी यह झगड़ा होता तो वो उन्हें टोकते, ''तुम चाहती हो कि वह बुद्धिमान भी हो पर बुद्धुओं की तरह बिना सोचे तुम्हारी बात मान भी ले, ये कैसे संभव है?''

पर उसने उनकी बात मान ली, भर्ती करने वाले ट्रक में बैठते हुये रोया नहीं। चेहरा उदास जरूर हो गया था उसका। वो ख्यालों में से बाहर आईं।

वो लड़की बोल रही थी, ''उस दिन हम लगभग पूरा दिन वहाँ थे। पिताजी भाई को लेकर दर्जी के पास, जूते वाले के पास, बिस्तरबंद वाले के पास छावनी में ही घूमते रहे और मैं उसी पत्थर पर बैठी रही। सिमहा से बहुत सी बातें हुईं..'', कहते हुए वो शर्मा गई और नीची नजर से जमीन को देखने लगी। कुछ क्षण रुक कर बोली; ''उसी दिन उसने वो पर्ची दी थी अपना नाम और पता लिख कर, साथ ही यह कह कर कि अगर मुझे कोई परेशानी हो तो मैं यहाँ आ जाऊँ क्योंकि उसके पिता सरकार में काम कर चुके हैं इसलिये वो सुरक्षित हैं और साथ ही यह भी कि वह एक दिन मुझे यहाँ ले आयेगा। मुझे लिखना/पढ़ना नहीं आता था सो मैंने उसे अपना नाम और अपने मोहल्ले का नाम बता दिया। उसने कहा कि वह मुझे याद करेगा।''

जूली इस सारी प्रेमकहानी के बीच एक बार भी न हूँ-हाँ बोली और न ही हिलीं। लगता था कि वे कहानी सुनते हुये सो गयी हों, कहानी खत्म होने पर बोलीं,

''तुम्हारा नाम क्या है?''

लड़की ने कहा ''अलुश्का''

जूली की नजरें कड़ी हो गईं, जैसे अभी उसके झूठ को पीट कर सच कर देंगी। लड़की के बदन में झुरझुरी दौड़ गई,

''यास्मीन''

कहाँ से आई हो?

''बेरूत''

''तुम यहाँ क्यों आईं?''

''मेरे पास कहीं और जाने के लिये जगह नहीं थी और सिमहा ने मुझे अपने परिवार के दयालु होने के बारे में बताया था इसलिये।''

''पर तुमने अपना घर क्यों छोड़ा? जब कि इतना सब कुछ हो रहा है..''

''इसीलिये घर छोड़ना जरूरी हो गया था''

''साफ बोलो!'' वो पहेलियों में बात करने को तैयार नहीं थी।

वह लड़की आवाज सुनकर कुछ सिकुड़ तो गई पर घबराई नहीं। थकावट और नींद के बीच वो भविष्य की आशंकाओं के बारे में बहुत कुछ सोच नहीं सकीं। एक गहरी साँस ले कर बोली;

''पाँच दिन पहले मेरा घर भी आपके घर जैसा ही था, मेरे दो चाचा के परिवार और हमारा परिवार बड़ी हवेली में रहते थे। पिछले हफ्ते, नहीं केवल पाँच दिन पहले की तो बात है कि जब मैं माँ के साथ खड़ी शीरी बनाना सीख रही थी। मेरी बड़ी बहन अपनी सुसराल से आई हुई थी, वो पेट से है, सो माँ उसके लिये शीरी बना रही थी और माँ ने जबरन मुझे खड़ा कर लिया था अपने साथ। सब से छोटी हूँ न, तो कुछ सिरचढ़ी सी हूँ।''

वह पुरानी यादों में खोते हुए भी स्थिति के प्रति सजग थी। वह एक अनजान घर में थी और एक अनजान औरत के सामने बैठी अपनी कहानी सुना रही थी। आधी रात से ऊपर का न जाने कितना वक्त निकल गया था। बाहर अँधेरा ठंडी काली स्याही सा फैला था। कभी-कभार किसी चील की आवाज उस काली स्याही के ठंडेपन को तोड़ने की कोशिश करती और फिर घना सन्नाटा फैल जाता। सन्नाटे कई बार बहुत ड़रावने होते हैं। उनमें अनेक घटनाओं की बू होती है। इंसान अपने मन के हिसाब से

कोई एक बू उस सन्नाटे से चुन लेता है और आशंकाओं और डर के ताने-बाने बुन कर उसमें घुटने लगता है।

अलुश्का यानि यास्मीन ने जिस डर को चुना था वह उसकी कल्पना में नहीं था, उस डर को वो झेल चुकी थी, भोग चुकी थी, आँख और कान के जरिये वो डर बेहद डरावने सच के रूप में उसके अनुभव और जीवन का दुखद हिस्सा बन चुका था जिस से बच कर वह कभी अपने पुराने सच में नहीं जा पायेगी। जीवन का मधुर हिस्सा झटके से खींच कर तोड़ दिया गया था।

अपने उस सच के टुकड़ों को आँखों में समेट उसने आगे कहना शुरू किया, ''मेरे पिता एक कबीले के सरदार हैं। कुछ दिन पहले एक ...सभा...में उन्होंने खुले तौर पर सुन्नियों का विरोध किया था, इस पर कुछ लोगों ने उन्हें धमकी भी दी थी!''

जूली ने उसे रोका,

''कैसा विरोध?''

जूली ने भी अँधेरे से अपने और अपने परिवार के भविष्य के लिये आशंकायें चुन ली थीं और अब हर आवाज, हर बात में वो चिंता और आशंका सिर उठा कर खड़ी हो जाती थी। वातावरण ही ऐसा था, बहुत से यहूदी बेरूत, ट्रिपली और सिडान छोड़ कर जा चुके थे और जो रह गये थे, उनमें से बहुत से जाने की सोच रहे थे। सुनने में आ रहा था कि युद्ध लगभग समाप्ति पर है, लगता था कि किसी भी दिन युद्ध की समाप्ति का समाचार आ सकता था पर जर्मनी में यहूदियों के साथ हुए नृशंस व्यवहार पर ही बात नहीं खत्म नहीं हो रही थी। दुनिया के बहुत से हिस्सों में यहूदियों के साथ दुर्व्यवहार हो रहा था। वे डर और आशंकाओं से ग्रस्त हो फिलीस्तीन जा रहे थे जहाँ उन्हें इजरायल बनाना था। जिओनिस्ट लोगों ने दुनिया भर के यहूदियों का आह्वान किया था कि वे अपने देश बनाने के लिये इकट्ठे हों ताकि वे सुरक्षित रह सकें। यह वह समय था जब कि पीढ़ियों से साथ रह रहे अरब और ईसाइयों पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता था। इस युद्ध ने बहुत कुछ तोड़ा था, बहुत कुछ हमेशा के लिए नष्ट कर दिया था।

जब यास्मीन ने विरोध की बात की तो जूली के कान खड़े हो गये! हर जगह ही आजकल विरोध है, पर पता रहना चाहिये कि किस बात का विरोध है!

यास्मीन की आवाज और धीमी हो कर एक फुसफुसाहट में बदल गई थी,

''मेरे पिता सहमत नहीं थे कि यहूदी लोगों को भगाने के लिये दहशत का सहारा लिया जाये! वे मार-काट नहीं चाहते थे। पर बाकी के अरब इस बात पर जोर दे रहे थे कि अब जब कि यहूदी इजरायल बनाना चाहते हैं तब ऐसे में हमारा यह फर्ज है कि हम उन्हें यहाँ से पूरी तरह खदेड़ दें और अगर वे अपनी मर्जी से न जायें तो फिर तलवारें तो हैं ही''

सिर नीचे कर के यह सब बताते हुये भी यास्मीन को लगा कि जूली इतने कपड़ें से ढँके होने पर भी काँप गई।

यास्मीन आवाज सामान्य करते हुये बोली,

''मेरे पिता, चाचाओं और भाई और कुछ साथ के थोड़े से लोगों ने इस विचार का विरोध किया और तलवार उठाने, लोगों को परेशान करने के बजाये इंतजार करने को कहा ताकि यहूदी लोग स्वयं ही चले जायें पर लोगों ने उनका विरोध किया। आप तो जानती ही न, मुफ्ती साहेब के कहने से यहाँ क्या-क्या हो रहा है? पहले यह सब था? हम सब ही तो साथ साथ रह रहे थे! पर कभी ये गोरे लोग, कभी ये मुफ्ती, तो कभी कोई और.. कुछ न कुछ होता ही रहता है! जब से यह खबर आयी है कि यहूदियों को अपनी जमीन मिलेगी, बस तब से तो और खलबली मची है'' बोलते-बोलते वह एकाएक रुक गई.. उस की साँस बहुत तेज चल रही थी! साँस तो तेज जूली की चलनी चाहिये थी पर..... एकाएक यास्मीन की तेज साँस सुबकियों में बदल गई! वो घुटनों में मुँह डाल सुबकने लगी!

जूली को समझ नहीं आया कि अचानक क्या हुआ। वो चुप सी बैठी रह गईं कुछ क्षण! हाथ साँत्वना देने को बढ़े नहीं, क्या कहें!! वो अभी सोच ही रही थीं कि यास्मीन ने नाक सुड़क मुँह ऊपर उठाया। उसका गोरा मुँह और आँखें लाल थीं।

''मार डाला उन्होंने!''

''हँ???'' मिसेज बेन अब्राहम केवल यही कह पाईं!

''मार डाला, मेरे पिता को, मेरे एक चाचा और मेरे एक भाई को. ... मेरी आँखों के सामने मार डाला! माँ ने मुझे अंदर की तरफ धक्का दिया और ''भाग'' कहा। बाहर की तरफ जाते-जाते मुझे अम्मा का गरारे के पैर में उलझ कर गिरना ही दिखा, गिरते-गिरते

भी उनके हाथ का इशारा मुझे भागने को कह रहा था। सुल्ताना और बड़ी आपा घर के बाहर गईं हुई थीं सो पता नहीं उनका क्या हुआ? पता नहीं अम्माँ का क्या हुआ? पता नहीं चाचा का क्या हुआ?

...मुझे कुछ नहीं पता कि सबका क्या हुआ? वो नंगी तलवारें लेकर घर में घुसे थे और तख़्त पर बैठे घर के तीन मर्दों को उन्होंने बिना कोई मौका दिये काट डाला था, यह कह कर कि ''यहूदियों का साथ देते हो, उन्हीं के पास जाओ!!'' मैं हवेली के पीछे बने चोर दरवाजे से निकल कर खेतों की तरफ भागी और उस तरफ बने कच्चे-पक्के मकानों के पीछे छुपती-छिपाती भागती रही। मुझे नहीं पता कि में कब तक भागी होऊँगी। कोई गाँव था, वहाँ मैने पूछा कि मैं कहाँ हूँ, तो उसने बताया कि में बारजा शहर की तरफ जा रही थी। रात मैंने उसी गाँव की मस्जिद के पास बने कमरे में बिताई थी। किसी ने मुझ से नहीं पूछा कि में कौन हूँ, सब अनेकों उलझनों में हैं और फिर सब इस बड़ी लड़ाई के दौरान पागल सी दिखने वाली औरतों को देखने के आदी होते चले जा रहे हैं। लोगों ने सोचा होगा कि मैं भी कोई ऐसे ही पागल हूँ जिसका शौहर लड़ाई में मारा गया होगा। मैं चार दिन चल कर यहाँ पहुँची हूँ। रास्ते में संतरे और केले खा कर, कभी सूखी काक (ब्रेड) खा कर मैंने गुजारा किया। पर मुझे यह याद था कि आप लोग सिडान में रहते है, समुद्र किनारे बने किले के पास के मोहल्ले में!''

वो सारी कहानी जैसे एक साँस में सुनाती चली गई थी कि कहीं कोई सिरा छूट न जाये या लंबा न हो जाये। उसने वो सब बातें छुपा ली थीं कि खेतों में बच कर भागते हुये वो कितनी बार गिरी थी, कितनी बार उसकी कोहनियाँ छिलीं और सिडान आकर वो कैसे पतली-पतली गलियों के घुमावदार भूलभुलैया जैसे चक्कर में पड़ कर रोने लग गई थी। हर तरफ से निकलने की कोशिश करके भी वो दर्जियों वाली गली में ही वापस लौट आती थी। किसी से उनका पता भी नहीं पूछ सकती थी। समय ही ऐसा है! यहूदी के घर का पता पूछने का समय नहीं है यह! अरब लोग कितने नाराज है यहूदियों से! हिटलर कितना नाराज था उनसे! लगता है कि सारी दुनिया उनके पीछे पड़ी है, तभी तो वो अपनी जमीन का टुकड़ा ढूँढ़ रहे हैं। वे एक लाख यहूदियों को फिलीस्तीन पहुँचने, इजरायल बनाने के लिये पुकार रहे हैं। फिलीस्तीनी अपनी जमीन के लिये परेशान हैं। सब को अपनी जमीन चाहिये पर जमीन तो वही है, उधर समुद्र और इधर जमीन माँगते लोग! आपस में लड़ कर मर जाने वाले लोग! इसी जमीन के नीचे दफन कर दिये जाने वाले लोग! यास्मीन ने यहूदियों का कब्रगाह देखा था इस शहर में, जो समुद्री हवा और इस भागमभाग में उपेक्षित पड़ा था। छह गज जमीन के नीचे सोया आदमी भी क्या इस जमीन के लिये लड़ा था?

यास्मीन कुछ नहीं जानती! जो वो सुनती रही है, उसी के हिसाब से सोचती है। अम्माँ डाँटती थी कि तू हवाई किले न बनाया कर, पर अगर सब उसके जैसे हवाई किले बना कर उन में रह पाते तो जमीन के लिये यह लड़ाई न होती!

लड़ाई न होती तो उसे अपने पिता, चाचा और भाई को मरते हुये न देखना पड़ता! घर से सब को छोड़ कर भागना न पड़ता!

मिसेज बेन-अब्राहम उसकी कहानी को गुनती चुप बैठी थीं। कुछ देर चुप रह कर बोलीं,

''पर यहीं क्यों आईं?''

यास्मीन ने एक लंबी साँस ली और ना जाने क्या सोचते हुए गर्दन हिलायी, ''कई कारण हैं, मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि मैं कहाँ जाऊँ, जो तलवार लेकर घर में घुसे थे, उनमें हमारे कबीले के लोग भी थे, वो हमारे सारे रिश्तेदारों को जानते थे, मैं जाती भी कहाँ?, फिर दो दिन में लगभग 20 किलोमीटर चलने के बाद मुझे पता चला कि मैं इसी शहर की तरफ बढ़ रही हूँ तो दिमाग में सिमहा के घर के शहर के अलावा और इस शहर में आप के घर के अलावा कहीं और जाने की बात मेरे दिमाग में ही नहीं आई, कुछ भी सोच समझ कर कहाँ हो पाया?'' उसने धीरे से कहा।

''और अगर हम लोग भी बाकी यहूदियों की तरह घर छोड़ कर जा चुके होते तो?''

''तो मैं यहीं रहती, इसी घर के एक कोने में, यह सोचती हुई कि शायद सिमहा लड़ाई से लौट कर यहीं आये।''

जूली एक ढीली लंबी साँस छोड़ कर बोलीं, ''तुम यहाँ पनाह लेने आई हो पर कल इस घर के लोग अपने बाप-दादाओं का यह शहर छोड़ कर जा रहे हैं।''

यास्मीन ने कुछ हैरानी से उन्हें देखा। वैसे तो उसे यह भी उम्मीद नहीं थी कि वे लोग उसे मिलेंगे, कितने ही यहूदी तो जा चुके थे।

''कल सुबह? आप भी? सिमहा तो लौटा नहीं है अभी! लड़ाई बंद होने वाली है, यही सुना है, तो वो कुछ समय में लौट आयेगा फिर..''

वो कुछ ज्यादा ही बोलते जाने से फिर सकुचा गई!

''हाँ, लड़ाई बंद होने वाली है, पर यहाँ की लड़ाई, हमारी लड़ाई कहाँ बंद हुई है? मुफ्ती अल-हुसायनी ने क्या कहा है, पता है न, कि वो यहाँ यहूदियों को नहीं रहने देगा!'' एक लंबी साँस ले कर वो चुप हो गईं। फिर कुछ मिनट ऐसे ही बीते, असमंजस जैसे! फिर जैसे खुद से बोलते हुये बोलीं;

''जाना तो पड़ेगा! पर में सिमहा का इंतजार करे बिना नहीं जा सकती। वो आयेगा तो ढूँढ़ेगा! उसे क्या पता चलेगा कि हम कहाँ हैं? मैं नहीं जा सकती.. मैं अपनी और अपने बेटे की ज़िंदगी एक दूसरे के इंतजार में नहीं बीतने दे सकती! वो हमें मार कर खत्म कर सकते हैं पर यह भी कहाँ जरूरी है कि हम जिंदा उस अपनी कही जाने वाली जमीन पर पहुँच ही जायेंगे? पर कोई रिश्तेदार बात नहीं सुनता, वो सब जाना चाहते हैं!''

''और आप के पति क्या कहते हैं?''

''वो मेरे कारण मजबूर हैं। अपने लड़के की माँ के कारण, वो भी नहीं जा पायेंगे!''

यास्मीन ने लंबी साँस ली! पता नहीं वो साँस एक साथ मिल जाने की राहत की थी या मिसेज बेन-अब्राहम के दिल को समझ पाने की। जूली ने उसकी तरफ देखा, बोलीं, ''सुबह तुम सब को सिमहा की दोस्त की जगह अपने को उसकी मंगेतर बताना! इस तरह तुम हमारे साथ ही रह सकोगी।''

यास्मीन ने चुपचाप ''हाँ'' में गर्दन हिलाई। वो फिर बोलीं, ''और सुनो, तुम्हारा नाम अलुश्का साका है, बेरूत से आई हो, बच कर.. और ..और तुम्हारी सगाई बेरूत में हुई जब सिमहा 3 साल पहले 1942 में तुम्हें वहाँ मिला था, तुम्हारा पहली नजर का प्यार था ....और तुम लोगों ने उसी हफ्ते में सगाई कर ली थी। अच्छा, रुको!!'' कह कर वो तेजी से रसोई की तरफ चली गईं। लौटीं तो उनके हाथ में आदमियों के पहनने वाली एक अँगूठी थी पर अँगूठे का नाप कुछ छोटा था, जैसे वो सबसे छोटे अँगुली में पहनने वाली अँगूठी हो। इस अँगूठी को उन्होंने यास्मीन का हाथ पकड़ अँगूठे में पहना दिया। अँगूठी ठीक आ गई, देख मिसेज बेन-अब्राहम को चैन मिला।

बाहर रात बीतने के आसार से लग रहे थे। आसमान की स्याही कुछ कम हो रही थी। मिसेज बेन-अब्राहम ने पहली बार यास्मीन को भरपूर नजर देखा और कुछ मुस्कुरा दीं। अब वो कुछ निश्चिंत दिखाई दे रही थीं। उनके साथ एक और इंतजार करने वाला शामिल हो गया था। उन्हें इत्मीनान होने लगा था कि जो वो कर रही ही, वह ठीक है! वो रहने की जिद न पकड़तीं तो कल ही सब यहाँ से चल पड़ने को उतारू थे। उनके जिद पकड़ जाने से दिन भर बात होती रही और अंत में उनके न मानने पर शेष सबने अगली सुबह ही शहर छोड़ने का निर्णय ले लिया था। अगर वो चली जातीं तो... पर जाती कैसे? उन्हें सिमहा का इंतजार है फिर अब यह लड़की भी तो है, सिमहा की मंगेतर!

वो उसके चेहरे को छू कर प्यार से बोलीं,

''कुछ देर को लेट जाते हैं! घंटे भर में तो सुबह हो ही जायेगी।''

यास्मीन उनके चेहरे के बदले हुए भाव देख कर मन में कुछ हैरान थी। उसने कुछ नहीं छुपाया था मिसेज बेन-अब्राहम से और अब वह उनके कहे से वो अलुश्का साका थी, उनके बेटे की मंगेतर।

ज़िंदगी को कुछ देर और पकड़े रहने का एक नया बहाना दोनों मिल गया था, इसी से शायद वो दोनों निश्चिंत होकर लेट गईं!

✠✠✠

कौन देश को वासी: वेणु की डायरी

सूर्यबाला

मेरा कहना है कि सुपीरियोरिटी इनके अंदर उतनी नहीं जितनी हमारे अंदर इनफीरियोरिटी है। और इनकी कुंठा को हम अपने गुस्से और आक्रोश में छुपाते फिरते हैं। अपने दिलों में हम भी महसूस करते हैं कि हाँ, ये सुपीरियर हैं.. तो मान क्यों न लें। बेकार क्यों अपनी सभ्यता-संस्कृति की एंटीक-वैल्यू दुहराते फिरें? अपने देश में, क्रिकेट के टेस्ट मैचों में जब पाकिस्तान के जीतने और भारत के हारने पर लड्डू बँटते हैं तो हमें कैसा लगता है?

सम्पर्क: बी-504, रूनवाल सेंटर, गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार, चेम्बूर, मुंबई-400088

पहला दिन—पहली लैंडिग

भूल सकता हूँ भला—ज़िंदगी की किताब के हर पृष्ठ पर दर्ज है वह।

जैसे अंदर दुबककर बैठा कोई पंछी डैने फड़फड़ा कर अकबका उठा हो।

आँखें खोलिए वेणुमाधव शुक्ला। अनाउंसमेंट हो चुका। (आपको समझ में न आया हो, वह दूसरी बात है।) अमेरिका की एकदम की टटकी धरती और आसमान आपके कदमों के नीचे ऊपर डोल रहे हैं। सो, अंदर की भड़भड़ी छुपाते हुए उठा। ओवर हेड केबिन से हनुमान-चालीसा, लड्डू-गोपाल, पैराशूट तेल, आलू के पराठों वाला नाश्तेदान और स्वेटर-मफलर से ठँसा हुआ शोल्डर-बैग उतारा। हाथ से ही जल्दी-जल्दी बाल सँवारे और शरीर पर ऊपर से नीचे तक इस तरह हाथ फिराया, जैसे सब कुछ अपनी जगह दुरूस्त तो है। काश, दिमाग पर भी फिरा पाता तो पता चलता कि वहीं सब कुछ डांवाडोल है और, निकल चले कारवाँ के पीछे-पीछे। उस समय भी, मेरे लिए सबसे ज्यादा हास्यास्पद थी—यहाँ-वहाँ खड़े गोरे एयरपोर्ट के अफसरों को देखकर मेरी बेवजह मुस्कराने की कोशिश। अपनी समझ में ठीक-ठाक चुस्त कदमों से ही इमीग्रेशन काउंटर तक पहुँच गया, मुस्कुराने का सिलसिला भी चालू रखा, जैसे सब कुछ जाना-बूझा है। उसी चुस्ती से फोल्डर खोल पासपोर्ट, इमीग्रेशन फॉर्म वगैरह सब सामने कर दिये—अंदर उछलती धड़कनों की बाहर हवा तक न लगने दी।

इमीग्रेशन अफसर ने पासपोर्ट, फार्म उलटे-पलटे, मुहर मारी और मेरी तरफ देखकर बोला, 'ऑल सेट...' मैं खड़ा रहा—इस अंदाज में कि क्या कहा गया है। क्या और कुछ चाहिए—पार्डन? 'यूअर ऑल सेट...' और तत्क्षण मेरे चेहरे का भाव लक्ष्य कर अफसर ने मुस्कुरा कर समझाया, 'यू कैन गो...'

लाउंज में आने तक पेट में घबराहट के एक-दो नहीं, अनेक बगूले उठने ही वाले थे कि सामने से तेज-तेज दो हिन्दुस्तानी हाथ हिलते दिखाई दिये।

'वेणुमाधव शुक्ला। हाए?'

मैंने जल्दी से अपना हाथ बढ़ाने के नाम पर उनके हाथों में थमा दिया।

'मैं, विशाल घाटे।'

'निलय बख्शी।'—ओह, कितना पहचाना स्पर्श था उन अजनबी हाथों का।

'इंडियन स्टूडेंट एसोसिएशन से।... कोई परेशानी नहीं होगी। रिलैक्स।'

(क्यों ऐसा कहा था उन्होंने, जबकि मैं तो लगातार मुस्कुरा ही रहा था।...)

'पहले क्या करना चाहोगे—घर पर फोन न? लेकिन इस समय वहाँ आधी रात होगी। क्यों परेशान करना सबको। ऐसा करते हैं, पहले कहीं कुछ खा लेते हैं—या फ्रेश होना चाहोगे?'

हर बात पर 'स्वीकार' की एक एकदम नई ईजाद की हुई मुस्कुराहट से थोड़े परेशान और थोड़े समझे हुए उन्होंने आपस में ही निर्णय लिया था। जब तक मैं 'हैं-हैं, अरे' के साथ हाथ आगे बढ़ाता, उन्होंने मेरे दोनों सूटकेस डिक्की में डाल, गाड़ी हाँक दी। कार चली तो अचानक सूझा मुझे, 'मेरे पास आलू के पराँठे हैं...'

'अरे यार,' एक लाजवाब ठहाका, 'नेकी और पूछ—लाओ, निकालो फटाफट।'

मैंने राहत से भरकर अपनी पीठ ठोंकी और शोल्डर बैग से वसु-वृंदा के रखे पराँठों वाला डिब्बा निकालने लगा।

पहला फोन यानी पापा की पे के तीन सौ दस रुपए

इसके पहले माँ से कभी फोन पर बातें की ही नहीं थी।

'-हलो। माँ। मैं वेणु...' कुछ पलों के सूने निचाट में मेरा कहा, 'वेणू' ही ध्वनित-प्रतिध्वनित होता रहा...

'हाँ, मैं पहुँच गया यहाँ... आज दोपहर।... इस समय यहाँ रात है। वहाँ इंडिया मैं सुबह हो रही होगी। मैं इंतजार कर रहा था कि तुम सब उठ जाओ तो फोन करूँ।'

माँ 'वेणु' के बाद नहीं बोल पाई थी। इसलिए अब पापा बात कर रहे थे। उनकी आवाज रुँधी होने के बावजूद आश्वस्त लगी। बता दिया कि 'एयरपोर्ट पर इंडियन एसोसिएशन के सीनियर लड़कों ने रिसीव किया। अभी फिलहाल एक सीनियर लड़के के अपार्टमेंट में हूँ। जल्दी ही अपार्टमेंट ढूँढ़ने में मदद कर देंगे ये लोग।' प्रकृतिस्थ हो लिये तो जल्दी-जल्दी यूनिर्वसिटी, प्रोफेसर, विभाग—सब पूछ गए। हिदायत भी (आदत से लाचार) कि प्रोफेसर से आज के आज ही मिल लो तो अच्छा प्रभाव पड़ेगा। बताया कि 'आज तो अभी रात हो जाएगी—कल बैंक, डिपार्टमेंट आदि की सारी फॉरमैलिटीज पूरी हो जाएँगी।'

फोन अब वसु, वृन्दा के हाथ में था। दोनों बहनों उतावली में रोती-हँसती साथ-साथ चालू थीं, 'दादाऽऽ!! वेणु दादा। कैसे हो तुम? कैसा लगा रहा है वहाँ? अच्छे से रहना दादा। हमें फोन करते रहना—जरूर से। समझे दादा?'

बीप आ गई। फोन कट। साढ़े पाँच डॉलर का बिल यानी पापा की 'पे' के तीन सौ रुपए। आज से दस गुने महँगे थे फोन कॉल।

और मोबाइल कहाँ था तब।

पहला सप्ताहः पहला तोहफा

यह देश, यह शहर एक रोमांच है मेरे लिए। घाटियाँ, जंगल, सड़कें, शहर की इमारतें—सब साथ-साथ। कब शहर घाटियों में समा जाता है और घाटियाँ शहर पर उतरने लगती हैं, समझ में नहीं आता।

कल सीनियर बैच का निलय बख्शी अपने साथ ले गया। पूरे 'डाउन टाउन' (मुख्य शहर) का चक्कर लगवा दिया। लाइब्रेरी, सिटी हॉल, ग्रोसरी-स्टोर—ब्रेड, मक्खन, चीज, ओट मील (दलिया) से लेकर झाड़ू, क्लीनर, लिक्विड-सोप और टॉयलट-ब्रश मेरे हाथ में पकड़ा दिया, 'पहला तोहफा...। चलो, पहले टॉयलेट क्लीन करो इस देश के। पीछे पढ़ने-पढ़ाने की बातें।'

विशाल घाटे ने दूसरे दिन बैंक में अकाउंट खुलवा दिया। पहला और सबसे जरूरी काम। साथ के साथ ट्यूब-स्टेशन (लोकल ट्रेन) से डिपार्टमेंट तक ले जाकर लौटा भी लाए। लोकल स्टेशनों की तीन-तीन मंजिलों पर बने प्लेटफॉर्म, सभी पर हर पाँच-दस

सेकेंड पर आ-आकर रुकतीं और भागती, चमचमाती ट्रेनें। टिकट पंच करने की मशीनें। तेजी से बदलती जाती सूचनाओं वाले मॉनीटर, तेज-तेज ही चलते लोग—लेकिन बेआवाज, जैसे बोलने की मनाही हो। अस्पताल की तरह। यह कोलाहलहीन चुप्पी सहमा-सी जाती है—मुझे। बहुत अलग है यह देश—और हम पीछे भी, लेकिन यह टॉयलेट ब्रश?

पहला महीना यानी फॉल से शुरुआत

सेशन इन्हीं दिनों से शुरू होते हैं।

कॉस्ट आयरन के विशाल गेट वाली विभाग की खूबसूरत और शानदार इमारत से गुजरना मुझमें एक रोमांच पैदा करता है—सारी अजनबीयत और सहमियत के बावजूद। अगल-बगल से गुजरती तेज और नपे-तुले कदमों वाली जींस, हीलों वाली खटमटांती सैंडिलें ऊँची-नीची स्कर्टों के बीच से आधी-पौने इंच खिंची मुस्कुराने के मद्धम-सी 'हाइ'—एक रुटीनी संगीत की तरह लगती है। तो क्या मैं भी अब जवाब देने लगा हूँ? कभी-कभी पहल भी करता हूँ। उस वक्त अपनी मुस्कान की वाजिबी और जेनुइनटी पर गर्व होता है। नहीं, खुशी... नहीं, गर्व... नहीं, गुरूर—पता नहीं, पर अपनी मुस्कान अब मुझे ज्यादा ऑथेंटिंक और भरोसेमंद लगती है। यही बात उस ढीले पुलोवर वाली सैन्ड्रा ने भी तो कहा था—'योर स्माइल हैज समथिंग डिफरेंट...'

तो कायम है मेरा भी अस्तित्व।

और यह 'फॉल' का मौसम तो रंगों का इंद्रजाल-सा रचता है। कैम्पस में चारों तरफ सड़क-फुटपाथों से लेकर जंगल-बियाबानों तक सारे के सारे पेड़ों की पत्तियाँ लाल, गुलाबी, जोगिया, अबीरी, पीले, नारंगी और उनाबी जैसे हजारों हल्के गाढ़े शेड्स में बदल जाती हैं। सड़कों, घाटियों, जंगलों से मैदानों तक—हर तरफ रंगों का एक मायावी जलसा। फिल्मों की शूटिंग में जैसे रंगों के गुबार उड़ते हैं... वो क्या कहते हैं... वसन्तोत्सव। 'लेकिन जानते हो?' ड्राइव करते हुए विशाल ने बताया था—'दरअसल, यह ठंडे देशों में पत्तियां हरी से पीली, नारंगी, लाल, उनाबी होती क्रमशः सूखती चली जाती हैं।'

मैं सोचने लग जाता हूँ: समाप्ति से पहले इतना अभिराम महोत्सव, इतनी इंद्रजाली सौगात। 'अंत' को उत्सव में बदल देना। मुझे वह चिड़िया 'थॉर्न वर्ड' याद आती है जिसके बारे में कहा जाता है कि अपने अंतिम क्षणों में वह किसी कंटीली डाल पर बैठी होती है। कांटा चुभता जाता है, और वह एक गीत-सा गाती जाती है और धीमे-धीमे समाप्त हो जाती है...।

फोन कर दिया आज पंद्रह दिनों पर ही। पिछली बार माँ का कहा सिर्फ 'वेणु' भर, परिंदे-सा फड़फड़ाता रहा था, इसलिए 'हलो, हाँ, हाँ।... तुम्हारे लिए ही फोन किया। अब तुम ठीक हो न?... हाँ, बहुत अलग है यहाँ लोग, जीवन, दुनिया। सड़कें, पार्क, दुकानें। चीजें भी। अब जैसे—सड़कें हैं पर सड़कों पर कोई चलता नहीं। कारों के सिवा। हाँ, रिक्शा ऑटो कुछ नहीं। भारत वाले कहते हैं—यहाँ आकर आदमी दोपाये से चौपाया हो जाता है।

(आह हम न जाने कब होंगे।) सड़कें एकदम चिकनी। कारें उन पर चलती नहीं, फिसलती जाती हैं जैसे। हाँ, बसें दिखीं—स्कूल बसें। पहली बार। उसी में बैठे बच्चे भी। वैसे सब बहुत अच्छा है। ओ.के. माँ...।

बीप आ गई। फोन कट गया। अगर पापा को पता चले कि इतनी देर फोन करने में इतने किलो चीनी, दाल, चावल जितने का बिल, तो?

बेचारगी की हँसी और लाचारी का सेलीब्रेशन—पहला ठिकाना

अपार्टमेंट के लिए कोशिश तो की गई, लेकिन आखिरी दौरे में लैंड लॉर्ड का मन बदल गया। अब जमाओ अपनी गृहस्थी वेणुमाधव शुक्ला इस बेसमेंट में। वैसे बात भी ठीक है। जमीन पर पैर रखकर चलने से भी ज्यादा अच्छा है कि एम.आई.जी. क्वार्टर की तीसरी गली से आए वेणुमाधव शुक्ला पहले अमेरिका के 'बेसमेंट' में 'बेस' मजबूत करे। नींव पक्की पड़ेगी। माँ, पापा, बहनों को बताता हूँ। उन्हें कुछ समझ में आता है, कुछ नहीं। मुझे ही कहाँ अभी कुछ ज्यादा समझ में आता है। अक्सर इस बेसमेंट में चावल उबालते, किचेन साफ करते या रात में सोने के लिए अपना 'स्लीपिंग बैग' खोलते हुए अपने-आप में एक बौड़म फ्लॉप जोकर-सा महसूस करता हूँ। मन करता है, दूसरों से पूछूँ—क्या वे भी मेरे जैसा ही महसूस करते हैं?...

माँ अब बातें करने लगी है, 'तू कैसा है?' मैं इसके लिए और क्या कह सकता हूँ कि 'ठीक हूँ माँ।' फिर पूछती है, 'रह कहाँ रहा है?' मैंने बताया कि 'अभी बेसमेंट में हूँ... मेरे साथ ही

ज्वॉयन करने वाले एक लड़के के साथ... ''बेसमेंट' समझ में नहीं आ रहा उन लोगों को और 'फर्निश्ड तहखाना' कहने में अपनी हेठी। यह भी नहीं कहा कि इसमें सीलन काफी है। और ठंड तो बहुत। बस, यही बताया कि 'फर्निश्ड छोटा कमरा समझो।'

'और खाना?'.. माँ कितनी भी कोशिश कर लें, यहाँ की बेक्डबीन्स, बेगल, कैन का दूध और ओटमील का नाश्ता कभी नहीं सोच पाएँगी। ब्रेड, सब्जी, चावल, आलू को खाना ही नहीं कहेंगी। 'दही तो नहीं मिलता होगा... और तुझे तो चाहिए ही चाहिए।' ... मिलता है न, योगर्ट... अनन्नास, स्ट्राबेरी, औरेंज, बनाना-फ्लेवर-योगर्ट। बहुत से शब्दों का सही अनुवाद भी तो नहीं हो सकता, व्यंजनों के स्वादों का भी। लेकिन अब उन्हें पूछना है और मुझे बताना है कि मैं ठीक हूँ, अच्छा हूँ।

नहीं बताया कि इस दूसरे हैदराबादी लड़के प्रसाद को भी खाना बनाना नहीं आता। सीनियर लड़कों ने पूछा था—'खाना बनाना आता है?' मैं 'आटा' भर ही बोला था कि निलय ने टोका, 'आटा-वाटा भूल जाओ। चावल-बॉयल कर लिया करो, बस।' ... मेरी माँ, बहनों ने भी आने से पहले आटा मलना सिखाने की कोशिश की थी। ...'छोड़ो।' फिर प्रसाद की तरफ मुड़े, 'सब्जी, सांभर कुछ बना लेते हो?'

प्रसाद ने जिस तरह सिर हिलाया, उसका मतलब खुद प्रसाद भी नहीं समझ पा रहा था। वह 'हाँ' कहते हुए भी 'ना' ज्यादा लग रहा था। विशाल और निलय ने एक दूसरे को इस तरह देखा, जैसे कहाँ फँसे। फिर अपनी कमर कसी, 'डोंट वरी... दो दिनों में आ जाएगा। शुरू में प्रॉब्लम आती है थोड़ी—हमें कैसे आया?' और उन्होंने एक दूसरे की पीठ ठोंकी।

खाना न ठीक-ठाक बना तो यहाँ एक की हजार चीजें हैं। खाकर गुजारा करने लायक—बेगल, ब्रेड, माफिन, डोनट—कितने तरह की ब्रांड की तो सीरियल और दूध की समझो।

समझे? इसलिए सुबह नाश्ते में गर्म परांठे और आम के अचार की फाँकों के बदले फ्रिज से निकली ठंडी 'बन' और मगों भर दूध या कॉफी पीकर डिपार्टमेंट निकल जाता हूँ। लंच के समय कैफेटेरिया में हर व्यंजन के साथ डॉलरों में लिखी कीमतों को फटाफट रुपयों में तब्दील करता और डिनर में हुए असफल एक्सपेरिमेंट (कच्चे, जले, पनीले, गीले, चावल, दाल, सब्जियाँ) के बाद सपने में, सामने परसी थाली और गर्म रोटियाँ देखता हूँ। तब कुछ नहीं सुहाता—न यह देश, न उद्देश्य (यहाँ आने का पापा द्वारा हजार बार याद दिलाया गया), न भविष्य (जो आज मेरा वर्तमान है), न डॉलरों का आकर्षण—बस, यही मन होता है कि आँखें मूंद, एक लंबी छलाँग लगाऊँ और अपने घर।

आज तीन हफ्ते हो गए रोटियाँ खाए। एक दिन निलय वर्मा के कजिन के घर खाई थी। खाते हुए मन किया—दो-चार रोटियाँ पॉकेट में छुपाकर लेता चलूँ।

धीरे-धीरे बनाना और खाना, दोनों सीख गए थे। जैसे पनीली और बेस्वाद सब्जी बनाना और साथ लाए अचार मिलाकर खाना। एक दिन तय किया, 'आज चावल गीला नहीं होने देंगे। उपाय? पानी कम डालेंगे, वही किया। चावल जल गया। 'बाउऽऽऽऽ। ब्राउन राइस...। अमेरिकन उच्चारण की नकल कर हम दोनों 'दे ताली' के साथ ठठाकर हँसे। बेचारगी की हँसी और लाचारी का सेलीब्रेशन। विदेश प्रवास का पहला लेसन कम्प्लीट।

यहाँ आने का उत्साह तेजी से निस्तेज होता चला जा रहा है। उसकी जगह एक यांत्रिक-चुस्ती। और अपने आत्मविश्वास की तो हर सुबह, दिहाड़ी की मजदूरी की तरह चिरौरी-विनती कर, दिन भर के लिए साथ ले लिया करता हूँ। अगली सुबह फिर वही क्रम...। दिन भर की थकान और उकताहत के बाद रात में प्रसाद के साथ बर्तन धुलवा, किचेन साफ कर फर्श पर स्लीपिंग बैग डालकर सोने जाना। यूँ तो हर सुबह चाभी वाले खिलौने की तरह अपने अंदर चाभी भर दौड़ पड़ता हूँ, पर कल रात अचानक स्लीपिंग बैग में बच्चों की तरह रो पड़ा।

बाकी सब खैरियत है

तो, माँ पूछती है, 'कैसा है वेणु?' मैं कहता हूँ, 'ठीक हूँ माँ।' पापा पूछते हैं, 'थीसिस का काम कैसा चल रहा है?... ट्यटरिंग (आर्थिक मदद) कब से मिलने की उम्मीद है? उससे कितने डॉलरों की मदद मिल जाएगी? ...प्रोफेसर कैसे हैं...? उनसे मिलते रहा करो... समय का पूरा सदुपयोग करो। ...हमेशा याद रखो, तुम वहाँ किस उद्देश्य से गए हो। तुम्हारा भविष्य इन्हीं दिनों पर निर्भर है। अभी मेहनत कर लोगे तो ज़िंदगी बन जाएगी। हमारी सारी उम्मीदें तुम्हीं पर टिकी है बेटे, वरना सच पूछो तो हमारी हैसियत कहाँ थी तुम्हें अमेरिका भेजकर एम.एस. कराने की।'

पापा जब हैसियत की बात करते तो मुझे शंका हो आती: कहीं इसीलिए तो यहाँ की चकाचौंध भरी दुकानों, मॉल और स्टोरों के झलमलाते काउंटरों के पास से गुजरते हुए मैं घबराता हूँ? लेकिन अंदाजा भी इसलिए चाहता हूँ, क्योंकि वसु और वृंदा ने कहा था, 'दादा। जब तुम्हें ट्यूटरिंग मिल जाए तो हमें एक अच्छा-सा परफ्यूम भेजना एक शीशी में। हम दोनों शेयर कर लेंगे।'

इसलिए मैं तुम लोगों को अच्छी बातें बताता और तुम लोग उतने ही सच को हकीकत समझते। बर्तन धोने, किचेन की सफाई करने और कचरा फेंकने के बाद फर्श पर गद्दा बिछाकर सोने और रोने वाले वेणु की कल्पना तुम नहीं कर सकती थीं और न माँ।...

इसी से नहीं कहा। तुम सबकी शान थी मैं। तुम्हारी (और अपनी भी) उस शान में बट्टा लगता? तुम लोगों के उस विश्वास की भी तो रक्षा करनी थी जिसके अनुसार अमेरिका पहुँचने का मतलब ही समृद्धि और सफलता की पिटारी का हाथ लग जाना है। लोगों को क्या पता, इंडिया में इंजीनियरिंग के परिणाम निकलने के बाद अचानक अपने को कहीं ज्यादा परिपक्व और जिम्मेदार महसूस करने वाला मैं, यहाँ रात में फर्श पर सोते हुए, चेहरे तक लिहाफ ढाँप कर रोता हूँ।

शायद यह मेरा ही सच रहा हो। बाकी सब तो मस्त और खुश भी दिखाई देते हैं। शायद वे रात में मुँह ढाँपकर मेरी तरह न रोते हो, क्या मालूम? मैंने ही क्या किसी को कभी बताया?

किस्सा साढ़े चार यार: उर्फ आती क्या खंडाला?

अपार्टमेंट मिला तो 'यूरेका...यूरेका' कहकर दौड़ लगाने का मन हो आया—साथ में चार यार भी यानी भरा-पूरा परिवार। बचपन में दादी को थपोड़ी पीटकर गाते सुना था: 'मेरा बना रहे परिवार प्रभु, मुझे चाकर राखो जी।'

एक तो वही अपने बेसमेंट वाले सीले फ्लोर और ब्राउन राइस वाले दिनों का साथी—हैदराबादी प्रसाद। दूसरा लुधियाना का प्रशांत—एलियन 'प्रशांत प्राजी'... (ऐसा कहकर उसने खुद ही इंट्रोड्यूज किया था।) तीसरा अपने बेसमेंट और इस ग्राउंड फ्लोर से काफी ऊंची हैसियत वाला, ऊंटी के किसी टी-गार्डेन के मालिक सर निरंजन मानसिंह का बेटा—सौमित्र मानसिंह और चौथा वह नाचीज वेणुमाधव शुक्ला, जिसके लिए प्रशांत ने सुनते ही तपाक से कहा था, 'अरे वाह, आप तो टू-इन-वन निकले प्राजी—'वेणु' और 'माधव'। दो पूरे नामों के ओनर है। है कि नहीं? इस तरैं से तो हम चार की जगह पाँच हुए यानी अपनी ज्वाइंट फैमिली हो गई भटिंडे वाली... हैं जी?'

हमने साथ-साथ खाना खाया और सब कुछ वैसा का वैसा छोड़—थके, धुत सो गए।

मिसेस फ्रॉस्ट—वीर, तुम बढ़े चलो

सुबह तो डिपॉर्टमेंट जाने की हड़बड़ी थी, लेकिन शाम लौटने पर किचेन में खुले जूठे बर्तनों का ढेर देखकर सबका माथा एक साथ ठनका। हवा बंद। छोटा अपार्टमेंट मसालों और उबले चावल की गंध से गमक रहा था।

अपार्टमेंट की चाभी देने से पहले लैंड-लेडी मिसेस फ्रॉस्ट ने शायद इसीलिए संकेतों के माध्यम से जतला दिया था कि उन्हें पूरा विश्वास है कि बैचलर्स होने के बावजूद हम लोग अपने पड़ोसियों के लिए किसी तरह की आपत्तिजनक स्थिति नहीं पैदा होने देंगे। 'यू नो, व्यवस्थित परिवारी लोगों और बैचलर्स की लिविंग में थोड़ा फर्क तो होता है, है न?' कहकर मिसेस फ्रॉस्ट अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कुराई थीं। फिर पहले भारतीय रहने वाले लड़कों की हैबिट्स के बारे में बड़ी नरमाई से बता गई कि यूँ तो वे बड़े अच्छे लड़के थे, वेरी लविंग, बट...

उसके कहे इस 'बट' के तमाम सारे ध्वन्यार्थ 'वटवृक्ष' की लंबी जटाओं की तरह हमारे दिल-दिमाग पर हावी रहते। रात का डिनर खाकर निढाल होने से पहले ही प्लेटें, बर्तन उठाने, धोने, किचेन की सफाई, गारबेज-बैग हटाने की हड़बड़ी शुरू हो जाती। एक दूसरे की दबी-घुटी खुचर और हड़कने-भड़कने के सिलसिले भी...।

तब फिर 'घर' बहुत याद आता। कैसे भी, कहीं भी खा-पीकर माँ-बहनों के सहारे बेफिक्री से छोड़ दी गई तश्तरियाँ, प्याले, उठकर चल देने वाली बेफिक्र अलमस्ती—अब कभी का देखा एक स्वप्न भर थी।

मिसेस फ्रॉस्ट के ओझल होते ही प्रशांत तैश खा गया था, 'यानी हमारा अपार्टमेंट न हुआ, पड़ोसियों का आउट हाउस हो गया? जैसे हम अपने आराम और सुविधा के लिए नहीं बल्कि पड़ोसियों का जीवन अधिकाधिक सुविधापूर्ण बनाने के लिए रखे जा रहे हैं? किराया हमसे ले रही हैं मोहतरमा, और फिक्रमंदी गोरे

पड़ोसियों की, वाह...।'

'क्योंकि हम इंडियन हैं न।' प्रसाद पहले से ही भन्नाया बैठा था।

समझदारी सिर्फ सौमित्र में थी, खीझकर बोला, 'अपनी भी देखो। बात बिना बात, हमारे 'इगो' हर्ट होते रहते हैं। अपने देश में कुंआरों, कुंआरियों, विधुरों, मुसलमानों, वेजों, नॉनवेजों (मकान मालिक की पसंद की हिसाब से) को लेकर दसियों नुक्स नहीं निकाले जाते क्या? कितनी पूछा-पेखी होती है और वह भी एकदम लट्ठमार लहजे में... लेकिन वहाँ आप उसका बुरा नहीं मानते—उल्टे आरजू-मिन्नत कर समझा लिया करते हो।'

'वही तो... लेकिन उसकी गुंजाइश यहाँ कहाँ होती है। तुमने देखा, वह अकेली बुदबुदाती भाषण झाड़ती रही... हमारी कुछ सुनी ही नहीं। कायदे से उसे हमें भी तो यह कहने का मौका देना था कि हम अपने प्रॉब्लम्स लेकर उनके पास आ सकते हैं...'

'इतना तो मानोगे कि इनके पास बात करने के एटीकेट्स तो हैं, हमारी तरह नहीं कि आव देखा न ताव, सामने वाले को...'

'तुम इनके बेहद सर्द, इम्पर्सनल रवैये को एटीकेट्स का नाम दे रहे हो...? और हमारे अपने एटीकेट्स, शिष्टाचारों और तहजीब से कम्पेयर कर रहे हो? अरे, सारी दुनिया जानती है कि...'

'जो सारी दुनिया जानती है, उसे हम-तुम पूरी तरह गंवा चुके हैं अब, समझे? अब तो बस बात-बात में मुट्ठियाँ तानकर अपनी पावन परंपराओं की हेकड़ी जताना आता है हमें। अतीत को हम इस तरह सहेजते हैं जैसे यहाँ के लोग अपने कुत्तों की पैडिग्री... वर्ना सोचो तो, वर्तमान क्या है हमारा...?'

'अमेरिका...।' इस बार यह मैं था वेणुमाधव शुक्ला। सब ठठाकर हँस पड़े।

'ओय, तुस्सी ग्रेट हो प्राजी। की गल्ल ठोकी ऐ।' प्रशांत मुझे गले लगाते हुए बोला, 'लेकिन प्राजी, ऐसे कोई सुरखाब के पर नहीं लगे हैं इस देश में।'

'फिर भी अगर हम इस देश में अपने मतलब से आए हैं तो हमारा पहला फर्ज इस देश के एटीकेट्स के अनुसार चलना है। हम मानें या नहीं, यहाँ का अनुशासन हमारे लिए बिलकुल नया है। मुश्किल तब होती है जब हमारा नौसिखियापन उजागर हो जाता है, तो कुछ न कर पाने पर हम जातीय अभिमान के नाम पर तैश खाने लगते हैं। हमारा इगो आहत हो जाता है। हम आवाज ऊंची कर उन्हें अपने से नीचा साबित करने लगते हैं।'

'सच बात तो ये है प्राजी कि सिवा ऊपरी तड़क-भड़क के हम उनसे किसी मायने में उन्नीस नहीं। और अपने आत्मसम्मान का हम किसी शर्त पर...'

'वह हमारा आत्मसम्मान नहीं, आत्मदम्भ होता है प्रशांत।'

'आत्मदंभ इनमें नहीं होता क्या? अपने-आपको लेकर ये कितना सुपीरियर महसूस करते हैं, हमसे छुपा है क्या? कड़ी से कड़ी बात को सर्द जुमलों के रैपर में थमाते हुए निकल जाना इनका एटीकेट है।'

प्रसाद हुमका था, 'बिलकुल ठीक कह रहा है प्रशांत। वो क्या कहते हैं, बर्फ के चाकू वाला वार होता है इनका। कौन-सी पिक्चर में था?... हाँ, कमल हासन वाली 'पुष्पक'।

'मेरा कहना है कि सुपीरियोरिटी इनके अंदर उतनी नहीं जितनी हमारे अंदर इनफीरियोरिटी हैं। और इनकी कुंठा को हम अपने गुस्से और आक्रोश में छुपाते फिरते हैं। अपने दिलों में हम भी महसूस करते हैं कि हाँ, ये सुपीरियर है... तो मान क्यों न लें। बेकार क्यों अपनी सभ्यता-संस्कृति की एंटीक-वैल्यू दुहराते फिरें? अपने देश में, क्रिकेट के टेस्ट मैचों में जब पाकिस्तान के जीतने और भारत के हारने पर लड्डू बँटते हैं तो हमें कैसा लगता है?'

'सौ फीसदी गद्दारी, इसलिए कि लड्डू बाँटने वाले हिंदुस्तान के नागरिक होते हैं—उनकी वफादारी तो इंडिया के नाम ही दर्ज होनी चाहिए। पाकिस्तानी लड्डू बाँटने से हमारा क्या जाता है। लेकिन हम इस देश का पट्टा लिखाकर थोड़े आए हैं।'

'तैश की तौबा कर। अभी तो हमारे 'स्टुडेंट-वीसा' का स्टेटस ही 'शिशुवत' है... पट्टे वाली मंजिल दूर है बंधु।'

'बिल्कुल इतनी जल्दी हमें भारत वापसी की फ्लाइट नहीं पकड़नी। बेहतर है, हम अपने इस अपार्टमेंट में लौट आएँ।'

सौमित्र की बात पर हम तीनों स्प्रिंग की तरह ही उछले और फटाफट सफाई अभियान में जुट गए।

जरा ऊपर-नीचे की कोर-कसर के बावजूद ये सभी अपने मध्यवर्गीय परिवारों के नौनिहाल थे। काम किसी के माँ-बाप ने नहीं लिया था अपने लाडलों से। उन्हें कैरियर्स एंड कोर्सेस की प्रतियाँ ही मुहैया कराते रहे थे। सारे घरेलू काम माँ-बहनों की राजी-खुशी से ही होते आए थे। इसलिए हम अनाड़ी कभी उन्हें कोसते थे, कभी अमेरिका को, कभी एक-दूसरे को।

बीच-बीच में कभी-कभी परेड ग्राउंड के उद्‌बोधन गीत अनायास सूझ जाया करते:

'वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो,
वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो।'

'ओय प्रसादऽ! चावल बनाने का ये मतलब थोड़े है कि भगोना दूसरे दिन चावल बनने लायक रहे ही नहीं। तूने भगोने को डिस्पोजेबुल समझ लिया क्या? अब से जो चावल बनाएगा, वही भगोना भी साफ करेगा?' प्रशांत भगोना घिसते हुए बड़बड़ाया।

'ठीक है, फिर तो तू ही बनाना।' प्रसाद ने कुढ़कर कहा, 'एक तो बनाकर खिलाओ, ऊपर से अहसानमंद होने के बदले...'

अचानक सौमित्र जोर से हँसा, 'मेरे घर के महराज (कुक) और बर्तन माँजनेवाली विमला में ठीक इसी तरह की लड़ाइयाँ हर दिन होती थीं कि बर्तन बहुत ज्यादा भी होते हैं और बहुत जले भी...'

'बात कम, काम ज्यादा। प्रशांत, मुझे ब्रश देना जरा, सिंक भी साफ कर दूँ...'

'और ये डस्टबिन भी... खटो भइये, खटो। हम तो थर्ड वर्ड से आए थर्ड-रेट सिटिजन हो गए यहाँ आकर। क्या मस्ती थी अपने घर में, अपने देश में। इन नकचढ़ों के देश में आकर तो नाक में दम...'

'फिर...फिर वही बात। तेरी ईगो को बिन बात करंट लगा करता है। एक बात बताओ, वे हमसे अलग हैं तो इसमें उनका क्या दोष? अपने घरों में वे भी ये सारे काम करते हैं, और अपने को थर्ड-रेट समझकर नहीं, अपना काम समझकर। हमने कामों को भी उच्चवर्गीय-निम्नवर्गीय श्रेणियों में बाँट रखा हैं रेसिज़्म यानी पार्थक्य। भेदभाव हम और वे अलग-अलग हैं, इससे नहीं बल्कि हममें और उनमें एक नीचा है, एक ऊँचा है, इससे आता है। हमारे अवचेतन का स्थायी भाव है यह। दूर क्यों जाना, कालों को देखकर हमारे अंदर एक उच्चताबोध नहीं उपजता क्या? सारी विश्वबंधुता और समानता वाली बातें हमारी बौद्धिक कवायदों की कृत्रिम परिणतियाँ मात्र हैं—अंदर से तो हम वही सख्त गुट्ठल हैं।'

'यानी घूम-फिरकर तुम हमारी ही बात पर आ गए न। जिसे कहते हैं—ईटिंग योर ऑन वर्ड या मियाँ की जूती मियाँ के ही सिर। सीधी-सी बात है, कालों को देखकर जैसा हमें लगता है, वैसा ही हमें देखकर उन्हें भी महसूस होता होगा...।'

'नहीं, सिद्धांतों में हम चाहे जितने उच्च विचार वाले हों, व्यवहार में ये हमसे कहीं ज्यादा मैच्योर हैं। यह विस्मित करने वाली बात है, लेकिन सच है। शायद इसलिए कि इनके पास वर्णाश्रमों का उतना पुराना इतिहास ही नहीं रहा... हर व्यवस्था की अच्छी-बुरी परिणतियाँ होती हैं। एक तरह से 'डिग्निटी ऑफ लेबर' तो सही मायने में इनकी जीवन-शैली में ही है...'

'सच्च बात। अपनी मिसेस फ्रॉस्ट बाहर काम करनेवाले वर्कर से ऐसे बात कर रही थी जैसे उनके एकदम बराबरी का हो। हम-तुम अपने देश में मजदूरों से उस तरह बात करते हैं?'

'तो मजदूर भी तो वैसे ही सलीकेदार होने चाहिए। हमारे तो जाहिल जपट्ट गँवार—ढंग से बात करने की कोशिश करो तो सिर पे चढ़ बैठेंगे।'

'तो वह व्यवस्था भी तो हमारी ही बनाई हुई है। अच्छा, यही मान लो। कम-से-कम हममें और अमेरिकन छात्रों में तो भेदभाव कर ही सकते थे। अभी तक तो उतना विजिबल पक्षपात नहीं ही दिखा मुझे।'

'दिखाने की गुंजाइश भी क्या? ठहरता कहाँ है उनका स्टैंडर्ड हमारे सामने? हायर एजुकेशन तक आते-आते इनकी सारी शिक्षा प्रणाली का फ्यूज उड़ जाता है। यह रगड़ाई इनके वश की कहाँ। खाए-पिए-अघाए लोग। पढ़ाई के लिए जैसी एड़ी-चोटी का पसीना हिंदुस्तानी बच्चों का बहाया जाता है न...'

'तो उसकी वाजिब कीमत भी यहाँ इस देश में लगाई जाती है। मानना होगा, प्रोफेसर की नीयत में खोट नहीं—प्रतिभा की कद्र होती है यहाँ; जाति, वर्ण और सभ्यताओं की नहीं।'

'सच्च बात है।' प्रशांत पतीला घिसते-घिसते बोला था, 'चाहे

अमर्त्य सेन हो, चाहे कल्पना चावला—बेशक जब वो नाम कमा लेते हैं तो हम उन पर 'इंडियन' का टैग लगाने दौड़ पड़ते हैं—बेशर्मी की हद ही हुई न।'

'वाह प्राजी। अपोजिशन में जा मिले? एकदम पाला बदल लिया, क्यों?'

प्रसाद ने कुढ़कर जोड़ा ही था कि मैंने आँखें तरेरी, 'वापस रेसिज़्म?' वह आधे पर रुक गया। 'मेरा ख्याल है, हम तालियाँ बजा दें प्रशांत के संधि-प्रस्ताव पर।'

'संधि-प्रस्ताव नहीं, मध्यस्थ के रोल पर...'

मध्यस्थता पर अचानक मुझे सातवीं क्लास में पढ़ी 'हिमालय' शीर्षक कविता की वे पंक्तियाँ याद हो आई जो हम अन्त्याक्षरी के दौरान 'ई' से गिरने पर बोला करते थे। मैं सस्वर बोल गया:

'इस पार हमारा भारत है
उस पार चीन जापान देश
मध्यस्थ खड़ा है दोनों के
एशिया खंड का यह नगेश।'

'वेणु प्राजी। तुस्सी हमेश नॉस्टेल्जिया के मारे हुए ही हो और उस फेर में तुका-बेतुका कुछ भी चालू कर देते हो। कहाँ चीन, जापान देश, कहाँ यह अमेरिका में पतीला घिसने की बेगारी।' कहते-कहते अचानक प्रशांत अपनी बहन का नाम लेकर चीख पड़ा, 'ओय शन्नो की बच्ची। वहाँ भटिंडे में खड़ी-खड़ी मुँह चिढ़ा रही है वीर जी को... यह नहीं कि पतीला मेरे हाथ से लेकर घिस्स दे...'

प्रसाद उसके हाथ से कुकर लेता हुआ हँस दिया, 'मेरी माँ से भी पूछ ले, बीन्स में टमाटर पड़ते हैं या नहीं...'

'ये अच्छी रही। मैं क्यों पूछूँ भला सबकी माँ-बहनों से? तू खुद पुच्छ न।... बोल, क्या कह रहा था...?'

प्रसाद चुप। हमने अंदाजा, गैस पर कुकर चढ़ाता प्रसाद आस्तीन से आँखें पोंछ रहा था।

अचानक प्रशांत खतरा भाँप, बीचोंबीच कूद पड़ा, 'ओय रुक्क। आवाज ही लगानी है तो खंडाले वाली को लगाओ प्राजी, माँ-बहन को कब तक टेरोगे...?'

हम एक साथ दम लगाकर हँसते हुए गाने लगे, 'ओय, आती क्या खंडाला...'

तुम्हारा उद्देश्य डॉलर कमाई: तुम्हारा त्योहार राखी बँधवाई

सीनियर छात्रों ने हम समझदारों को इशारा कर दिया था—एटीकेटों से जुड़ी सावधानियाँ ही एक नहीं, कितनी। जैसे—पॉकेट में हाथ डालकर नहीं चलते। रास्ते चलतों से आई-कान्टैक्स नहीं करते—हाल-चाल के नाम पर। 'व्यक्तिगत' जानकारियाँ भूले से भी नहीं लेने की कोशिश करते।... यूँ ये भी अच्छे, हेल्पफुल लोग हैं, सिर्फ 'अलग' हैं।

अभी ठंड ज्यादा नहीं थी। गुनगुनी हवाओं और घनी हरी पहाड़ियों के बीच से गुजरती सड़क के किनारे, तुर्श हरी घास के बीच बने फुटपाथों से गुजरना इतना भला लगता कि डिपार्टमेंट कब आ जाता, पता ही न चलता।

पता चलेगा बच्चू, जब बर्फ की हाड़कँपाती छुरियाँ चलेंगी। हड्डियाँ तक कड़कड़ाकर गलती महसूस होंगी। कोई नहीं चल सकता तब पैदल। भले ही लेदर-गलव्स, जैकेट और 'मंकी कैप' से लैस रहो, तो भी...। (जो शायद सौमित्र को छोड़कर हम तीनों में से किसी के पास नहीं थी।)

किसी के पास होती भी नहीं। बस, यहीं आकर मौसम के हिसाब से खरीदते हैं। शुरू में तो पहले वालों की एक्सट्रा पड़ी जोड़ियों से माँग-मूँगकर काम चलाया जाता है। बहुतेरे सीनियर, जरूरत पड़ने से पहले ही, अपने 'एक्सट्रा वुलेन्स' लाकर नयों को थमा जाया करते हैं। नया नौसिखुआ पहले तो हिचकता है, अजूबी निगाहों से देखता है, लेकिन बहुत जल्दी उन्हें अपनी जरूरतमंदी समझमें आ जाती है।

लेकिन सिर्फ कुछ महीनों में हममें इतना बदलाव कि अब हम जुट्ट-मिलाकर चार-छह माह पहले वाली स्थिति पर हँसी-टठ्ठा कर लेते हैं—जुलूस के नारों की तरह:

'तुम्हारा कर्म—एम.एस. पढ़ाई; तुम्हारी कोशिश—जमकर रगड़ाई।

तुम्हारा उद्देश्य—डॉलर कमाई; तुम्हारी दुनिया—माता-पिता, बहन-भाई।

तुम्हारा त्योहार—राखी बँधवाई; नो शादी, नो सगाई...।' ✠✠✠

अरी ओ कनिका

मूलः सुदर्शन प्रियदर्शनी
प्रस्तुतिः विकेश निझावन

"सोचती हूँ वासुदेव को मैं क्यों पाले हूँ? वह तो एक बायलोजिकल रिश्ता था वासुदेव के शब्दों में... जब उस रिश्ते की गर्मी खत्म हो गई वह खत्म हो गया। सूर्य के छिपने के बाद क्या उसकी गर्मी शेष रह पाती है? तब यह मेरे अभि, विश्रुत और कनिका, क्या मुझे जीवन में पूर्ण करने के लिए कम हैं? कहीं इनके प्यार से भी वंचित रहती तो?"

चाहती हूँ कनिका को समझा सकूँ यह सब... कि ओ मेरी कनिका तुम कभी यह समझने की भूल मत कर बैठना कि तुम्हारा पति केवल तुम्हारा होगा। जिस दिन ऐसा करोगी उसी दिन टूट जाओगी, खत्म हो जाओगी। हाँ, स्वयं को कभी उससे अलग भी न समझना। जिस दिन समझोगी, उस दिन भी तुम ही टूटोगी। वज्र ने स्वयं कब टूटना सीखा है? वह तो गिरता है तभी जब-जब उसे तोड़ना हो किसी को। लेकिन यह भी नहीं चाहती, कनिका अपने आने वाले जीवन के प्रति इतनी भयंकर भावनाएँ मन में रखें। इसीलिए उसे कभी कुछ नहीं कहती। शायद कभी कह नहीं पाऊँगी...। अब उठती हूँ और कनिका को एक कप कॉफी से तरोताजा करती हूँ। शायद उसके मन को राहत मिले। देखूँ क्या कर रही है कमरे में...।

कमरे में आ कर देखती हूँ कनिका औंधी पड़ी है और आँसू बहा रही है। आँसू बहाते-बहाते शायद उसे झपकी आ गई है। उसकी आँखें बंद हैं। वह एक चित्र पर औंधी पड़ी है। अरे यह किसका चित्र है इसके पास? शायद अपने पापा का... अपने विद्रोह का प्रायश्चित कर रही है। पापा से क्षमा चाह रही है। मेरी बच्ची कनिका। कहीं जाग न जाये। चित्र को उल्टा रखा है। मैं नहीं चाहती वह अपने पापा को कभी इतना बुरा-भला कहे। वह जहाँ भी हो बस सुखी हो... अपने नये परिवार के साथ। अपने गोटू और गिनी के साथ... 'यह उनके नये बच्चों के नाम हैं।' लेकिन यह चित्र... चलो अच्छा है कनिका अपने संबंधों को लेकर जीती रहे। आखिर कल को आकर कन्यादान तो वही करेंगे। विधिवत् तो उन्हीं की बेटी है, और धीरे से चित्र को खींच लिया है मैंने।

लेकिन... ओह... यह चित्र किसका है? यह तो किसी और का है... सुंदर, सुदर्शन, प्रियदर्शी एक युवक का। लगता है कहीं देखा है... इस युवक को.. जोर देती हूँ लेकिन मस्तिष्क की शिराएँ जैसे फटने को हैं... अरे हाँ याद आया। यह चित्र तो अभि के मित्र उदय का है। वही उदय, पिछले साल जिसके साथ हम सब पिकनिक पर गए थे। अभि, विश्रुत, उदय, कनिका और मैं। मुझे भी जबरदस्ती ले गए थे, घसीट कर। तब... तभी कनिका और उदय को दो-चार बार अलग बातें करते देखा था। लेकिन यह नहीं सोचा था कि इतना संक्षिप्त परिचय, इतने बड़े संबंध

सम्पर्कः सुदर्शन प्रियदर्शनीः 246, Startford Drive, Broadview Hts. OHIO-44147, U.S.A
विकेश निझावनः 557-बी, सिविल लाइंस, आई.टी.आई., बस स्टॉप के सामने, अंबाला शहर-134003 (हरियाणा), मो.-09896100557

के लिये काफी हो जायेगा। ओह, मेरी कनिका तभी तुम आज टूटी हो... मैं समझती थी कि जितनी कनिका कठोर, जिद्दी और उद्दंड है उतनी अंदर से भी कठोर होगी। लेकिन अंदर से इसने कितनी बड़ी कोमलता पाल रखी है। हे प्रभो! मेरी कनिका की इस कोमलता को कभी न तोड़ना... यह कोमलता... कोमलता ही बनी रहे।

मेरा जी चाह रहा है कनिका को निज अंक में भर कर खूब प्यार करूँ और कहूँ कि कनिका, पुरुष चाहे जैसा भी हो उसके बिना नारी पूर्ण नहीं है... सार्थक नहीं है। तुम नारी हो कनिका। केवल मेरी बेटी नहीं। आज मुझे लग रहा है कि सचमुच मैं पैदा हो गई हूँ, मैंने पुनः जन्म ले लिया है।

सोचती हूँ उदय कभी आया क्यों नहीं इधर... उदय को तो रोज चक्कर काटने चाहिए।

क्या कनिका उससे रोज मिलती है? क्या कनिका कॉलेज में पढ़ाई में मन न लगाकर उदय के साथ घूमती है? क्या बाहर के लोग जानते हैं कि वासुदेव की लड़की कनिका उदय से प्यार करती है? और उदय कितना चाहता है मेरी कनिका को... मैं जानना चाहती हूँ यह सब। मैं सार्थक हो जाऊँगी यह जानकर, कनिका को उदय के हाथों सौंपकर। अभि और विश्रुत बेशक बड़े हैं लेकिन मैं पहले कनिका को ही ब्याहूंगी। मेरी कनिका दुल्हन बनेगी और वह... वह... उसके पापा उसका कन्यादान करने आएँगे। लेकिन आज की कनिका का यह विद्रोही और पापा के प्रति घृणात्मक रूप देखकर डर लग रहा है। क्या कनिका अपने पिता को अब पिता के रूप में नहीं स्वीकारेगी?

कैसी विसंगतियों से भरा मेरा यह जीवन है... अभि जितना गंभीर, विश्रुत उतना ही प्रगल्प, कनिका उतनी ही उदंड और जिद्दी... लेकिन अंदर से...।

कनिका सो गई है। मैं इसके प्यारे-प्यारे सपनों को तोड़ूँगी नहीं। ओह... वासुदेव आज फिर तुम्हारी याद आ रही है। हर बार चाहा कि तुम्हारी तरह ही यह नासूर की तरह रिसने वाली यादें भी चली जाएँ लेकिन मन पर किसका अंकुश लगा है? किसने मन के सागर को बांधा है? युधिष्ठिर ने मन को हवा से लेकिन पिता को आकाश से भी ऊँचा बताया है... सो पिता वासुदेव क्या अपनी पुत्री को इस तरह तिल-तिल जलते देखेंगे? क्या तुम्हें याद नहीं आती... एक बार तारों भरी रात को सुहावनी वेला में तुमने कनिका को मांगा था... और यह भी कहा था मेरे बच्चे जो चाहेंगे करेंगे... मैं कभी उनके मार्ग की बाधा न बनूँगा। नैतिक, अनैतिक कुछ भी... ओ वासुदेव... तुम्हारे बच्चों ने तो अनैतिक कुछ न किया लेकिन... तुम... तुम ने वह सब कुछ कर दिखाया। आओ आज तुम्हारी कनिका ने वर ढूँढ़ लिया है जिसे तुम तीसरा बेटा कहते थे। आओ और कनिका को अपने हाथों विदा करो और मेरे अभि, मेरे विश्रुत की बारातें सजाओ और दो प्यारी सी दुल्हनें लाओ...।

सोचती हूँ वासुदेव को मैं क्यों पाले हूँ? वह तो एक बायलोजिकल रिश्ता था वासुदेव के शब्दों में... जब उस रिश्ते की गर्मी खत्म हो गई वह खत्म हो गया। सूर्य के छिपने के बाद क्या उसकी गर्मी शेष रह पाती है? तब यह मेरे अभि, विश्रुत और कनिका, क्या मुझे जीवन में पूर्ण करने के लिए कम हैं? कहीं इनके प्यार से भी वंचित रहती तो?

कितना बड़ा वरदान तो है मेरे पास। इन का प्यार एक महान थाती और अमानत के रूप में मेरे पास है। इन्हीं से मेरा प्यार, मेरा वासुदेव, मेरा पति, मेरा सुहाग है। कहते हैं बेटे के होते माँ विधवा नहीं होती। मेरे तो दो-दो बेटे हैं। मैं परित्यक्ता कैसे हो गई? कनिका ने अगर जिद्द से मुझे वासुदेव की जगह मिसेज धवन कहा तो यह उसका बचपना है।

आज आने दो अभि और विश्रुत को... कहूँगी, कनिका के हाथ पीले कर दो। फिर देखूँ कैसे नहीं आते मेरी देहरी, कैसे नहीं आते? मैं भी नहीं जाऊँगी। बाकी की ज़िंदगी मेरी भी इस सुख में कट जायेगी। ओह प्रियतम, तुम मुझे अपना अंग न समझो लेकिन मैं तुम्हारे सारे अत्याचार भी कैसे सह पाती हूँ। और चाहती हूँ कि काश! कभी-कभी तुम्हें देख पाऊँ चाहे तुम किसी के बनकर जीओ लेकिन...। मैं केवल देख पाऊँ तुम्हें...। लेकिन...कहाँ... यह सब कहने की बात है। कैसे जी सकती थी इस तरह... तुमने तो कहा था... बहुत पहले, लगभग 15 साल हो गए इस बात को।

एक दिन तुम आए... मैं शायद रसोईघर में थी... तुमने आवाज दी.. वीना... मैं तुम्हारी आवाज की तल्खी को पहचान गई थी कि आज कुछ अन्यथा हुआ है इसलिए तुम्हारे मुँह से वीनू नहीं वीना निकला है। और फिर स्वर की बेरुखी...। थोड़ी ही देर में देखती हूँ कि रसोई की चौखट पर खड़े हैं... अस्वाभाविक रोब उनके चेहरे पर है...।

क्या बात है...? मैंने चेहरे को जानबूझ कर अनदेखा करके

कहा... खाना लगा रही हूँ... अभी आती हूँ... क्या बहुत भूख लगी है? मेरा यह वाक्य शायद एक बौछार की तरह उनके गुस्से पर पड़ा... और वह थोड़े कोमल हो गए... वीना मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ लेकिन लगता है तुम कुछ कहने भी न दोगी...।

रहने भी दो-मैं जानती हूँ तुम्हारी बातें, हर समय बेमतलब की बातें करते रहते हो। मैं कनिका की लव मैरिज करूँगा। मैं अभि की बहू के साथ घूमा करूँगा। मैं विश्रुत के बच्चों को इतना प्यार करूँगा कि वह मुझसे अतिरिक्त तुम तक आया ही न करेंगे। और तुम मुझसे चिढ़ा करोगी। तुम्हीं बताओ यह रोज की चख-चख तुम्हारी सुना करूँ...।

चलो खाना खा लो उसके बाद होश रहेगा तो कहते रहना, जो कहना हो...। उस दिन भी बात अनकही रह गई थी... लेकिन उस दिन के बाद वासुदेव बड़े अस्त-व्यस्त रहने लगे। एक बेरुखी अनचाहे रूप में उनके व्यवहार में झलकने लगी। बच्चों के प्रति एक उपेक्षा का भाव उनके हृदय में स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगा। पर मेरी मूढ़मति यह न समझ पायी कि वासुदेव उस दिन कुछ कहना चाहते थे...। कई बार सोचा कह के देखूँ कि क्या कहना चाहते हैं। लेकिन मन नहीं माना। फिर तो स्त्री-पुरुष के संबंधों में ढील होने लगी, उनके मन की ललक समाप्त हो गई।

आज सोचती हूँ तो लगता है कि वासुदेव उन नये रिश्ते को कई सालों से दबे-छुपे निभाते चले आ रहे थे। घर के वातावरण को कटुता से बचाते हुए, लेकिन अब उनके दोहरेपन का नाटक शायद चुक गया था। वह अंदर से जैसे दोहरापन निभाते-निभाते टूट गए थे और कुछ कहना चाहते थे। जैसे वह अपनी पत्नी को स्नेहमयी सेवा भाव वाली प्रकृति के समक्ष रखने में स्वयं को असमर्थ पाते थे...। यह नहीं कि वह डरते थे... या हारने का भय उनके मन में था, नहीं... बल्कि वह पत्नी से भी उसी तरह अभिभूत थे और उससे अलग होना भी सोच नहीं सकते थे। दूसरी ओर प्रेयसी का आकर्षण भी इतना गहन था कि उस मोह को भंग भी नहीं कर पाते थे। और इसी मानसिक द्वंद्व की पटरी पर हमारी ज़िंदगी नए ढंग से रेंगने लगी थी।

वह अपनी पूरी तनख्वाह अब मेरे हाथ पर रख देते थे और जैसे भावुक होकर कह देते थे.. वीना, बच्चों को कभी कोई कमी न आने देना...। और फिर मैं ही जबरदस्ती 50-60 रुपये उनकी जेब में चाय-पानी के डाल देती थी। क्योंकि मैं जानती थी कि अब मेरा पति इतना समर्थ हो गया है कि वह अपनी आधी तनख्वाह से भी हम सब का भरण-पोषण कर सकता है। अत: मैं इस बात को भी एक महान वरदान स्वीकारती थी कि मेरे पति में कोई ऐब नहीं... अपने पास एक पैसा भी नहीं रखता... और उस सुख की अनुभूति कर मैं अब भी रोमांचित हो उठती हूँ।

लेकिन आज नहीं कनिका, अभि और विश्रुत की खुशियों के दिन आये हैं तो उनके पापा ही एक बहुत बड़ा व्यवधान बन गए हैं। जहाँ कभी कनिका के रिश्ते की बात हुई, लोगों ने यह कहा-भई लड़की तो अच्छी है लेकिन लोग कहते हैं वासुदेव ने पत्नी छोड़ दी है। भई किसी बात के लिये ही छोड़ी होगी। हो सकता है वैसी ही कुछ बात कनिका में हो...। यह सब सुन-सुन कर सोच-सोच कर मेरा ब्रेन हैम्रेज नहीं हुआ, यही अचंभा है एक। पर, ज़िंदगी और मौत की डोर है उस ईश्वर के हाथ। यहीं उसने प्राणीमात्र को निहत्था कर रखा है, अन्यथा व्यक्ति तो स्वेच्छा से क्या-क्या बना और बिगाड़ डालता।

कनिका अभी सोई है-अभि और विश्रुत अभी तक आए नहीं...।

अभि मेरा बड़ा बेटा है, माँ का सदैव लाडला रहा है। अभि को लेकर कई बार हम में झगड़ा हुआ है। उन्होंने हमेशा कहा है तुम अभि को सिर चढ़ा रही हो। देखना कभी तेरे को ही नाकों चने चबवाएगा... और आज वही अभि इतनी धीर-गंभीर प्रवृत्ति का हो गया है कि उसे देखकर बात करते भी डर लगता है, कि न जाने क्या कह दे। न जाने क्या सोच बैठे। लेकिन माँ को लेकर इतना यह बिसूरता क्यों है...?

माँ की तो अब उम्र बीत गई। वह अब अपनी ज़िंदगी को देखे...। वह है तो माँ का जहान है। पर अभि तो रात जब अपने कमरे में कुर्सी पर बैठ, छत की तरफ देखते-देखते दर्जनों सिगरेट फूँक देता है तो लगता है मैं उसे देख कर जरूर एक दिन मर जाऊँगी। मेरा बेटा मेरे लिये क्यों तिल-तिल जल रहा है? वह कहता कम है, करता ज्यादा है। उसके मन में पिता के लिए इतना क्षोभ है, घृणा है जिसका कोई ओर छोर नहीं। लेकिन वासुदेव के नाम को कोई अपमानित करता है तो उसकी गर्दन भी अभि ही पकड़ता है।

पता नहीं कैसा है यह लड़का? क्या करेगा यह भी नहीं कह सकती? लॉ कर चुका है। बड़े ऊँचे अरमान थे बचपन में इसके, पर अब तो लगता है लॉ केवल लॉ के लिये किया है। वह सोचता तो दार्शनिकों और लेखकों की तरह है। उसे दार्शनिक होना चाहिए था। अरे अभि का ही तो दोस्त है उदय, याद आया।

क्या अभि जानता है कि कनिका उदय को चाहती है? अगर हाँ, तो मुझसे बात तक नहीं की। आज तक वह कोई बात मुझसे नहीं छुपाता है, लेकिन अब कुछ दिनों से बड़ा गुम-सुम रहने लगा है। न जाने कौन सी चिंता इसने पाल रखी है। क्या यह भी कनिका की तरह ही किसी को चाहता है? क्या ऐसी ही कोई उलझन इसके दिमाग में भी है? इसको कुरेदना आसान भी तो नहीं है। फिर भी आज पूछे बिना न रहूँगी। हाँ, कनिका की इस नई हरकत के बारे में भी तो उसे कहना होगा।

लगता है अभि आ गया है। सीढ़ियों पर पैरों की मादक खट-खट उसी की तो होती है। पहले ही पुकार लेती हूँ, अन्यथा कमरे में एक बार घुस गया तो घंटों न निकलेगा।

अभि... अभि... उसे आवाज देती हूँ। अभि... अभि बेटे... और मैंने उसके सिर पर हाथ रख दिया है। यह क्या? अभि ने सिर नहीं उठाया, बात क्या है। मैंने अभि का चेहरा उठाया, चेहरा आँसुओं से लथपथ था। अभि! मैं एक तरह से चिल्ला पड़ती हूँ। बेटे, क्या हुआ?

माँ...! और वह मेरे आँचल में सुबक पड़ता है।

अभि, तू कुछ दिनों से गुमसुम रहता है। क्या कारण है मेरे लाल?

कुछ नहीं माँ। कुछ भी नहीं...।

यह कैसे हो सकता है। माँ से छिपाता है बेटे...।

नहीं माँ... तुझसे क्या छिपाऊँगा... परंतु मुझे लगता है मैं इतने मानसिक तनाव में जी न सकूँगा... माँ जानती हो, पापा की आज वही किताब आई है जिसमें उन्होंने इस संबंध को टूटते हुए दिखाया है। उसे ही मैं पढ़ कर आ रहा हूँ...। पिता जी ने एक जगह तुम पर लाँछन लगाया है माँ... और वह पढ़ने से पहले... मैं मर क्यों नहीं गया? अगर वह तुम्हें कुछ दे नहीं सकते तो इस तरह के लाँछन या यातना ही देने का उन्हें क्या अधिकार है...? उस किताब की ही एक कापी आई है कनिका को। क्या यही वह अपने बच्चों को भेंट कर सकते हैं...? माँ हमारे पिता हमारे लिये आज मर गए...। आज तक मैं उन में उनका इतना मान करता था। अपने मन के किसी गलियारे में मैंने एक मूर्ति स्थापित कर रखी थी अपने पिता की, जो बहुत सुंदर, सौम्य व सुशील थी।

सोचा था जो गलती पिता ने की है वह प्रायः हमारा सामंतवादी समाज करता आया है। पहले वह नारियों को लाकर हरम में डाल देता था, आज उसे या तो अपनी प्रेयसी को त्यागना या नकारना पड़ता है या पत्नी को। इसी भावना के वशीभूत होकर पापा ने हम सबको नकार दिया है। लेकिन इस तरह की यातना देने का अधिकार उन्हें किसने दिया? हम तुम्हारे दो-दो बेटे जिंदा हैं माँ... अगर ऐसी-वैसी बात फिर कभी हुई, तो जानती हो माँ हम क्या तक कर सकते हैं...? नहीं, माँ नहीं कहूँगा... नहीं कह सकता... और अभि बुरी तरह काँप उठा, हाँफने लगा... मैंने उसे उठा कर खाट पर लिटा दिया। पंखा किया-पानी पिलाया और तब वह तनिक सचेत हुआ...।

माँ मुझे अकेला छोड़ दो। अभि ने मेरा हाथ हटाते हुए कहा।

उसका कथन एक आज्ञा थी, मैं चुपचाप बाहर आ गई।

क्या करेगा अभि समझ नहीं आता। बचपन में इतना उदंड था, लेकिन मन से भोला-भंडारी। अपनी चीजें, खिलौने उठा-उठा कर दूसरों को दे दिया करता था। भिखारी आया तो पूछे बिना आटा-चावल दे दिया करता। चिड़ियों को चुगाया करता लेकिन दूसरी ओर अगर चींटी काट जाती या कीट-पतंग तंग करता तो उसे मार कर ही दम लेता। कहता-माँ, जो हमें तंग करे उसको मारना धर्म है। और धीरे-धीरे यह बात उसके मन में गहरी पैठ गई और उसकी धारणा बन गई। वैसे धीर और गंभीर, पर अन्याय के साथ समझौता नहीं। पिता के इस अनाचार को वह कैसे पी रहा है? कैसे वह अपना आत्महनन कर रहा है?

यह मैं ही जानती हूँ-मेरा अभि ऐसा नहीं था कि रात-रात भर बैठ कर सिगरेट फूंके, बाहर घूमे एक आवारा की तरह। अब भी ऐसा नहीं परंतु परिस्थिति ही ऐसी हो गई है। वह पिता से प्रतिशोध लेना चाहता है। न जाने कैसा प्रतिशोध... क्या उनकी हत्या करना चाहता है? अभि-अभि मुझे उसने जो कुछ कहा वह बड़ा अस्त-व्यस्त हो कर। मैं उसके मानसिक द्वंद्व को समझती हूँ लेकिन मुझे यकीन है कि वह ऐसा नहीं करेगा। ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि मूल-रूप में वह बड़ा ही सहृदय है...।

मैं सोचती हूँ जब वह अपने नये ब्याह के बच्चों को प्यार करते होंगे तो क्या उन्हें अपने अभि, विशु और कनि याद न आते होंगे? ओह...। वासुदेव मैंने तुम्हें इतना निर्दयी न समझा था। एक क्षण भी तो कैसे रहते होंगे तुम। लेकिन, तुम्हें क्या? तुम तो रह सकते हो... जो केवल शरीर को महत्व देता है, जो भौतिकवादी है, वह सब कुछ कर सकता है। उसे आत्मिक या हार्दिक संवेदना से क्या लेना-देना है?

अभि, मेरे बच्चे, मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि बदला... खूँखार बदला लेने से आत्मा नहीं बदल सकती। बदला लेना हो तो मानवीय बदला लो... ? क्या इसी तरह अभि को तिल-तिल जल जाने को कह दूँ? कनि और विश्रुत को भी तो कितना चाहता है, कितना प्यार करता है।

कहता है, माँ! इन्होंने बाप का प्यार नहीं देखा। यह क्या जानें बाप के प्यार की सीमा क्या होती है। बाप को आकाश से भी ऊँचा क्यों बताया जाता है...। पर, तुम चिंता न करो माँ। मैं वह सुख, वह प्यार इनका दूँगा कि यह कभी सोच भी न पाएँगे कि बड़े भाई की तुलना में किसी और का भी प्यार हो सकता है?

वासुदेव तुमने कभी यह सोचा कि तुम्हारे इस कृत्य से तुम्हारे बच्चे अनाथ हो जाएँगे? यही नहीं तुम्हारे नए बच्चे भी तो... हो सकता है... ? जब वह तुम्हें पापा कह कर पुकारते होंगे तब क्या इन बच्चों की मासूमियत भरी आवाज तुम्हारे कानों में न गूँजती होगी? तुम कैसे पुरुष हो? तुम्हारे पुरुषत्व को धिक्कार है। इतने वर्ष मेरे साथ तुम दोहरी ज़िंदग़ी जीए क्या अब न जी सकते थे? दुनिया के लाखों करोड़ों पुरुष दोहरी ज़िंदग़ियाँ जीते हैं। तुम भी जी लेते। तुम्हारे बच्चे ऐसे अनाथ तो न समझते स्वयं को।

✠✠✠

कनाडा से

लघुकथा

सर्कस के क्लाउन की डायरी

विजय विक्रांत

जैमिनी ब्रदर्स सर्कस में क्लाउन की नौकरी करते हुये मुझे बीस साल से ऊपर हो गये थे। अपनी उछलकूद और बेतुकी हर्कतों से मेरा काम लोगों को हंसाना था। बीस साल के इस लम्बे अरसे में मैंने बहुत कुछ सीखा था। मेरी उछलकूद को देखकर सर्कस में आये लोगों के और विशेषकर बच्चों के चेहरे पर हंसी और मुस्कान देखकर मुझे बहुत सकून (संतोष) मिलता था। अपने आत्मविश्वास के बलबूते पर सबको हंसाना तो अब मेरे बायें हाथ का खेल हो गया था। इस काम में मैं अब अपने आपको एक एक्सपर्ट समझने लगा था।

सन 2016 में हमारा कैंप टौरोन्टो के सी.ऐन. ई.ग्राउण्ड में लगा हुआ था और इसी वर्ष जैमिनी ब्रदर्स सर्कस ने अपनी पच्चीसवीं जयंती को बहुत जोर-शोर से मनाने का फैसला किया। क्योंकि इन दिनों स्कूल की छुट्टियां थीं इसलिये सर्कस ने अपने ग्यारह से दो और तीन से छः वाले दो शो केवल बच्चों के लिये रक्खे थे। इन दोनों शोओं में बच्चों को और उनके साथ बड़ों को भी टिकट की कीमत में पचास प्रतिशत की छूट थी। रेडियो और टैलीवीजन के माध्यम से लोगों को जानकारी दी जा रही थी। फिर क्या था। पूरा परिवार का परिवार शो देखने के लिये आ रहा था। शनिवार और रविवार को तो खासतौर पर हमारा तम्बू पूरी तरह से भरा हुआ होता था। इसी बीच जिस दिन मेरी डयूटी होती थी, मैं भी अपना हंसाने का काम पूरी ईमानदारी से करता था। मेरी हरकतों को देख-देखकर बड़ों के साथ-साथ खुशी से बच्चे भी बहुत चिल्लाते और खूब आनन्द लेते। जितना वो खिलखिलाते उतना ही मुझे जोश आता और मैं नये से नये पैंतरे दिखाता था।

ऐसे ही एक बार रविवार के दो बजे वाले शो में मेरी ड्यूटी थी और मैं अपना काम कर रहा था। मुझे देखकर बड़े और बच्चे खूब हंस-हंसकर आनन्द ले रहे थे। अचानक मेरा ध्यान एक बच्चे पर पड़ा जो मेरी तमाम कोशिशों के बावजूद भी गुमसुम बैठा था और हंस नहीं रहा था। उस बच्चे को चुपचाप बैठा देखकर मुझे बहुत अजीब लगा। अपने अनुभव के आधार पर मैंने जो-जो भी सीखा था वो सब किया लेकिन वो बालक टस-से-मस नहीं हुआ और ऐसे ही चुपचाप बैठा रहा। मेरे लिये तो यह एक बहुत बड़ी चुनौती बन गई। मैं भी इतनी जल्दी हार मानने वाला नहीं था। हालांकि इस बीच मैं जो भी कर रहा था उसे देखकर बाकी सब बड़े और बालक तो हंस रहे थे लेकिन मेरा ध्यान केवल उस बच्चे की ओर था। मेरे सब कुछ करने के बाद भी जब मैं उस बालक के मुख पर हंसी न ला सका तो मुझे अपने और अपनी कला पर बहुत लज्जा आने लगी और मेरी आंखों से आंसू गिरने लगे। मुझे ऐसे रोता देखकर वो बालक बहुत जोर से हंसा और अपनी मां की तरफ देखकर बोला; मम्मी-मम्मी देखो वो क्लाउन रो रहा है। ✠✠✠

सम्पर्क: vijaya.vikrant@rogers.com

दीपक मशाल की दो लघुकथाएं

मुआवजा

हफ्ते भर की मूसलाधार बारिश और नजदीकी बाँध को कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा काट दिए जाने ने समूचे जिले को प्रलय का नमूना दिखा दिया था। पानी उतरा तो सरकार ने प्रतिनिधियों और अधिकारियों को नुकसान का अनुमान लगाने के काम में लगा दिया। पीड़ितों के पुनर्वास में मदद के लिए राज्य सरकार ने बाढ़ पीड़ितों की सूची माँगी।

रातों रात सूची भी तैयार हो गई, अंतिम रूप देने के लिए लेखपालों को कुछ असली पीड़ितों के नाम दर्ज करने के लिए लगाया गया। 'अक्कड़-बक्कड़ बंबे बोल' के हिसाब से नाम दर्ज करके जब लेखपाल राहत शिविर से जाने लगा तो पीछे से नेकसिंह बंजारे ने गुहार लगाई—

—सा'ब हमऊँ को नाँओ लिख लेओ। का नाम है?

—नेकसिंह। सबई चलो गओ सा'ब, दो बकरियाँ चली गईं, एक कुत्ता मर गओ। पहनवे-ओढ़वे के सब उन्ना-लत्ता बह गए। खटिया, चूल्हो-चौका बासन... गुजारे खों कछू नई बचो।''

''कुत्तन, को मुआवजे मिलत कऊँ? घर कच्चो हतो के पक्को?

—घर न हतो मालिक, ऐसेई गाड़ी पे बरसाती तान के काम चलात।

फिर तुम्हें न मिल पाहे, जे मदद स्थाई निवासियन के लाने हैं।

नेकसिंह रिरियाने लगा—दया करो सा'ब बिलकुलाई बर्बाद हो गए, खाबे तक के लाले पड़े। अब तो कामऊ नईयाँ करबे खों।

—अरे कर लीजिए लेखपाल सा'ब गरीब आदमी है। साथ में चल रहे सिपाही ने सिफारिश लगाई।

—आप कहते हैं तो कर लेता हूँ दीवान जी, वर्ना...

नेकसिंह ने दोनों हाथ जोड़े और चला गया।

''जब चोरी-चकारी या राहजनी जैसे मामले नहीं सुलझ पाते तो प्रेशर कम करने के लिए गिरफ्तारी दिखाने में बड़े काम आते हैं ये बंजारे।'' सिपाही ने हँसते हुए सिफारिश का राज खोल दिया।

बेचैनी

दोनों परिवारों में दोस्ती बहुत पुरानी या गहरी तो नहीं थी। महीने में कम-से-कम एक बार दोनों एक-दूसरे को खाने के बहाने, मिलने के लिए अपने घर आमंत्रित कर ही लेते थे, इस बार दूसरे वाले ने किया था। सुरक्षा के उद्देश्य से दोनों की ही बिल्डिंग में इस तरह का सिस्टम था कि जब तक मेजबान खुद बाहर निकलकर नीचे मुख्य द्वार तक लेने न आए तब तक कोई मेहमान भीतर नहीं आ सकता था। पहले दोस्त ने परिवार सहित बिल्डिंग के नीचे पहुंचकर फोन किया कि वे पहुंच गए हैं गेट पर।

मेजबान मित्र उन्हें लिवाने को जा रहा था कि पत्नी ने टोका-आपको क्या जल्दी पड़ी रहती है भागकर तुरंत जाने की। याद नहीं, जब भी उनके घर आते हैं, दो मिनट का कहकर दस मिनट में दरवाजे पर आते हैं। आज थोड़ी देर उन्हें भी इंतजार करने दीजिए।

चप्पलें उतार वह सोफे में धंस गया, लेकिन फिर एक मिनट भी न गुजरा होगा कि उठकर चहलकदमी करने लगा। बेचैनी बढ़ती जा रही थी, किसी तरह पत्नी से बोला-मैं सोच रहा था कि वह जान-बूझकर थोड़े देर करते होंगे और फिर करते भी हों तो हम उनके जैसे क्यों... बात खत्म भी न हुई थी कि पत्नी बोल पड़ी-जी, वही मुझे भी लगा, फिर उनका छोटा बच्चा भी तो बाहर सर्दी में खड़ा होगा, आप जल्दी जाइए।

और दोनों मुस्कुरा दिए। ✠✠✠

सम्पर्क: mashal-com@gmail.com

अनुराग शर्मा की दो लघुकथाएँ

सस्ते फल

'बाबा, सब बच्चे सेब और अखरोट खाते हैं। आप मेरे लिये भी लाओ न कभी।'

'बेटा, सेब और अखरोट तो बहुत महंगे होते हैं। हम लोग नहीं खरीद सकते।'

'सस्ता क्या होता है बाबा?'

'सस्ता, जैसे, ककड़ी और मूंगफली...'

'तो ककड़ी और मूंगफली ही ले आओ न किसी दिन।'

'थोड़े दिन बाद लाऊँगा बेटा!... आजकल वे भी महंगे हैं।'

हल

प्लास्टिक और पॉलीथीन के खिलाफ आंदोलन इतना तेज हुआ कि प्रशासन को यह समस्या हल करने के लिए आपातकालीन सभा बुलानी पड़ी। दो-चार पदाधिकारी प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई और बल प्रयोग के पक्ष में थे लेकिन अन्य सभी समस्या को गंभीर मानते हुए एक वास्तविक हल चाहते थे।

'पूर्ण प्रतिबंध' गहन विमर्श के बाद सभा के अध्यक्ष ने कहा। अधिकांश सदस्यों ने सहमति में तालियाँ बजाईं।

'पॉलीथीन के बिना सामान दुकान से घर तक कैसे आयेगा?' एक असंतुष्ट ने पूछा।

'बेंत की कंडी, कागज के लिफाफे और कपड़े के थैलों में' किसी ने सुझाया।

'खाना पकाने के लिए घी-तेल भी तो चाहिये, वह?'

'घर से शीशे की बोतल लेकर जाइये।'

'एक घर से कोई कितनी बोतलें लेकर जा पायेगा? एक पानी की, एक सरसों के तेल की, एक नारियल के तेल की, एक सिरके की, एक...' एक सदस्या ने आपत्ति की।

'तो तेल-सिरके को भी बैन करना पड़ेगा। दूध लेकर आइये और उसी से घर पर घी बनाइये।' उत्तर तैयार था।

'...दूध? लेकिन सरकारी डेयरी का दूध भी तो पॉलीथीन के पाउच में ही आता है।'

'तो हम दूध को भी बैन कर देंगे।'

'लेकिन, उससे तो बच्चों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा...'

'स्वास्थ्य के लिये दूध छोड़कर अंडे खाइये न। वे तो दफ्ती के डिब्बों में भी मिलते हैं।'

रात बढ़ती गई, बात बढ़ती गई, प्रतिबंधित सामग्री की सूची भी बढ़ती गई।

अगले दिन अखबार में खबर छपी कि राज्य में तुरंत प्रभाव से बाजार में दूध, और घर में रसोई प्रतिबंधित कर दिये गये हैं। समाचार से यह तथ्य गायब था कि प्रशासनिक परिषद के एक प्रमुख सदस्य राज्य ढाबा-स्वामी संघ के पदाधिकारी थे और दूसरे अंडा उत्पादक समिति के। ✠✠✠

सम्पर्क:

कृष्णा वर्मा की चार लघुकथाएं

अनोखा सुख

फोन की घंटी घनघनाई!!!! गोद में खिला रहे नन्ही बच्ची को पत्नी की ओर बढ़ाते हुए तिवारी जी ने रिसीवर थामा- हल्की सी प्रसन्नता भरी आवाज में-अरे प्रभाकर-हैलो-नमस्ते-नमस्ते, कैसे हो। मैं ठीक हूँ अपना बताओ, सब कुशल मंगल है न?

हाँ-हाँ, सब अच्छा है, फिर आज की गोष्ठी में क्यों नहीं आए?

-अरे क्या बताऊँ यार बस आते-आते रह गया, असल में आज अजीत बहू और बच्ची को लेकर अचानक आ गया, फिर क्या करता। तुझे तो सब याद ही होगा, कैसे शादी के दो महीने बाद ही पत्नी के कहे में आकर अलग घर बसा लिया था जनाब ने। हमारा एक बार भी नहीं सोचा था इस इकलौती संतान ने। याद है न, तेरी भाभी का क्या हाल हो गया था, दो साल तक चारपाई पकड़े रही थी।

-फिर, आज कैसे तुम्हारे लिए इतना प्यार उमड़ आया उसे, लगता है कुछ खास ही काम आन पड़ा होगा--वरना-आजकल की औलाद!

-ठीक ही कहा तूने प्रभाकर, कल से बहू की छुट्टियाँ जो खत्म हो रही हैं और आज लाटसाहब को माँ-बाप याद आ गए। अब बच्ची को रखने की मुश्किल जो आ रही है, कहता है बालवाड़ी में नहीं रखना चाहता। संस्कारों की बात करता है अब। उस दिन तो कुछ न बोला था, जब पत्नी ने इसके माँ-बाप को जाहिल बताया था। सारे संस्कार चूल्हे में झोंककर चल दिया था उसकी खुशी के लिए। कहना तो बहुत कुछ चाहता था मैं, पर कुछ कह नहीं पाया। बरसों बाद तेरी भाभी के चेहरे पर खुशी देख कर सब कुछ अंदर ही पी गया। ममता जो आड़े आ गई थी।

-ठीक कह रहे हो तिवारी, आज सब के सब स्वार्थी हो गए हैं, फिर चाहे अपना खून ही क्यों न हो।

-बात तो सही कह रहे हो प्रभाकर, पर मैं फिर भी सोच रहा हूँ -शुक्र है आज की दुनिया में स्वार्थ तो बचा हुआ है, आज यदि स्वार्थ जीवित न होता तो बरसों बाद बेटे का मुख देखने के साथ-साथ अपनी पोती को देखने का सुख कैसे प्राप्त कर पाता!

छुटकारा

डेंगू की चपेट में आई मंगला अपनी बीमारी से आखिरी सांस तक लड़ती रही। पर होनी कब टलती है। वही हुआ जिस बात की चिंता मंगला की आँखों में अंतिम पल तक बनी रही। कैसे जिएगी उसकी सात बरस की प्यारी सी गुलबिया उसके बिना। नकारा विश्वा तो पहले से ही घुटनों- घुटनों कर्ज में डूबा हुआ था। और आज तो उसकी दुनिया ही अँधेरी हो गई। मंगला थी तो दो जून की रोटी नसीब हो रही थी। फूल सी गुलबिया उसे अचानक पहाड़ सी दीखने लगी। बस यही सोच कर वह बेहाल हुआ जाता था कि कुछ ही बरसों में ताड़ सी बढ़ जाएगी। कैसे सम्भालूँगा सब अकेले। इस बोझ से कैसे मुक्ति पाए, इस सोच में दिन-रात वह बेचैन रहता। एक सुबह हिम्मत जुटा कर उसने कस्सी उठाई, और गुलबिया को साथ लेकर निकल पड़ा जंगल की ओर कि आज इस झंझट से छुटकारा पाकर ही लौटूँगा। चलते-चलते भूखे-प्यासे बाप-बेटी दोनों बहुत थक गए। थकान के मारे विश्वा रास्ते में एक पेड़ के नीचे ढेर हो गया। थकी-टूटी नन्हीं गुलबिया पिता की थकान न देख सकी। और अपने नन्हें-नन्हें हाथों से उसके पाँव दबाने लगी। थोड़ी देर सुस्ता कर दोनों फिर चल दिए जंगल की ओर। कुछ दूर पहुँच कर घने पेड़ों की आड़ में विश्वा कस्सी से गड्डा खोदने लगा। पिता को हाँफते और पसीने से भीगता देख भोली गुलबिया से रहा ना गया, बोली--लाओ बापू मैं तुम्हारी मदद कर दूँ। तुम बैठ कर थोड़ा आराम कर लो, मैं खोद देती हूँ। और अपने छोटे-छोटे

सम्पर्क: 62, Hillhurst Drive Richmond Hill ON LHB 2uB Canada Ph. +1-4377745989

हाथों से पिता के माथे पर छलकता पसीना पोंछने लगी। यह देख कर विश्वा का मन द्रवित हो उठा। उसने कुदाल वहीं फेंक तड़प कर गुलबिया को सीने से सटा लिया और सोचने लगा किस बात की सजा देने जा रहा हूँ अपनी फूल सी कोमल बेकसूर बच्ची को। किससे छुटकारा पाना चाहता हूँ मैं? इस शीतल छाँव से।

शून्य का बोझ

प्रकाश की पत्नी का असमय देहांत हो गया। पत्नी से अगाध प्रेम करने वाले प्रकाश ने कभी दूसरी शादी करने का सोचा तक नहीं। नन्हे आशीष को माँ और बाप दोनों का प्यार देकर पाला-पोसा।

प्रकाश की छोटी-सी प्राइवेट नौकरी थी, मगर बेटे के लिए सपने बड़े-बड़े सजाए थे। अपनी अथाह लगन और मेहनत से उसे खूब पढ़ाया लिखाया।

पढ़-लिख कर बेटे को बड़े शहर की बड़ी कंपनी में नौकरी मिल गई। जाते हुए बेटा बोला, पापा जल्दी ही मैं आपको अपने पास ले जाऊँगा। यह सुन कर प्रकाश ने सुख की सांस ली और बाकी बची ज़िंदग़ी आराम से बेटे के साथ काटने के सुखद सपने लेने लगा।

उधर बेटा नई नौकरी और बड़े शहर के सुख आनन्द में ऐसा मस्त हुआ कि पिता को ले जाना जैसे भूल ही गया। इधर प्रकाश इंतजार में दिनों-दिन सूखता गया।

एक दिन आशीष के मित्र राघव ने उसे अपने पिता की रिटायरमेंट की कुछ तस्वीरें दिखाई तो आशीष को याद आया कि उसके पिता तो पिछले कई महीनों से रिटायर हो गए होंगे। परेशान सा हुआ सोचने लगा मुझे तो उन्हें लेने जाना था। इतनी बड़ी भूल कैसे हो गई मुझसे। पापा तो जाने क्या-क्या सोच बैठे होंगे। अगले ही दिन वह पिता को अपने साथ लिवाने के लिए घर रवाना हो गया।

पिता की खस्ता हालत देख कर हैरान होता हुआ बोला, क्या हुआ पापा! आप इतने कमजोर कैसे हो गए। आपने अपना जरा भी ख्याल नहीं रखा। देखो तो कंधे कितने झुक गए हैं और आपसे तो ठीक से चला भी नहीं जा रहा।

लेकिन एक बात बताओ आजकल तो आप रिटायर भी हो गए हैं फिर ऐसा कौन सा काम करते रहे कि सेहत इतनी गिर गई।

बेटे की बात सुन कर धीरे से प्रकाश कुर्सी से उठा और अपनी पतलून की दोनों खाली जेबों को बाहर निकाल कर उसे दिखाते हुए शिथिल आवाज में बोला, ''तुम्हारा इंतजार बेटा''।

हैप्पी मदर्स डे

फोन की घंटी बजी, देखा तो रमाजी का फोन था, ''नमस्कार रमाजी, कहिए कैसी हैं?''

''मैं ठीक हूँ तुम सुनाओ निशा, सब कुशल-मंगल?''

''जी बिल्कुल।''

''काफी समय हो गया मिले हुए, बात करने को मन हो रहा था इसीलिए फोन कर दिया। कहीं तुम खास काम में व्यस्त तो नहीं थीं?

''नहीं-नहीं ऐसा कुछ विशेष नहीं कर रही थी। आपने फोन किया बहुत अच्छा लग रहा है, पहले तो कभी-कभी आप मिल लेती थीं लेकिन आजकल तो बिलकुल ही घर पर रहने लगीं।

''बस जब से अनु ने नौकरी के लिए जाना शुरू किया है मैं गुड़िया के साथ इतना व्यस्त हो गई हूँ कि फुर्सत ही नहीं मिलती; क्यों नहीं तुम ही आ जातीं। आज साथ बैठ कर चाय भी पिएँगे और बातचीत भी हो जाएगी।''

''चलिए, ठीक है दोपहर के खाने के बाद आती हूँ।''

करीब चार बजे निशा ने घंटी बजाई, दरवाजा खोलते ही रमाजी के मुखमंडल पर खुशी झलक गई, ''आओ-आओ निशा बहुत अच्छा लग रहा है मिलकर।''

निशा और रमाजी बैठकर बातचीत करती रहीं, बीच में उठकर रमाजी चाय-नाश्ता ले आईं। चाय पीते-पीते बताती रहीं कि गुड़िया के साथ कैसे समय निकल जाता है, दिन का पता ही नहीं चलता।

''आज गुड़िया घर पर नहीं है क्या?''

''घर पर ही है, बस अभी थोड़ी देर पहले ही सोई है। आजकल उसके दाँत आ रहे हैं तो चिड़चिड़ी सी हो गई है।

निशा ने पूछ ही लिया, ''आज आप भी कुछ उखड़ी-उखड़ी सी लग रही हैं सब ठीक तो है? तबियत तो ठीक है ना?''

''हाँ सब ठीक है थोड़ा थक गई हूँ, उम्र भी तो हो रही है। इतना काम अब कहाँ हो पाता है। ऊपर से गुड़िया को दिन भर सम्भालना। आज तो अनु ने हद ही कर दी घर का काम यूँही फैला छोड़ इतनी जल्दी चली गई कि मेरे उठने का इंतजार भी

नहीं किया। ऐसा तो पहले कभी हुआ नहीं। इतना भी नहीं कि एक फोन ही कर दे। बस यही सोच मन खिन्न सा हो गया था। सोचा तुम से ही बातचीत कर के मन हलका कर लूँ। अनु को क्या चिंता, मैं हूँ ना सब काम देखने के लिए।''

बातों का सिलसिला अभी जारी ही था कि दरवाजे की घंटी बजी और उधर से गुड़िया के रोने की आवाज आई।

''काफी देर से सो रही थी शायद उठ गई है, रमाजी आप गुड़िया को देखो, दरवाजा मैं खोल देती हूँ।''

निशा ने दरवाजा खोला सामने अनु खड़ी थी।

''नमस्ते आंटी आप कब आई?''

''बस थोड़ी देर पहले ही।''

इतने में रमाजी गुड़िया को लेकर आ गई। और बोलीं - ''अरे अनु-- आज इतनी जल्दी घर?''

''मम्मी जी, आज से मैंने सोमवार के व्रत शुरू किए हैं। सुबह जल्दी निकल गई थी कि मंदिर दर्शन करके समय से दफ्तर पहुँच जाऊँ। आपकी नींद खराब ना हो सो आपको सुबह उठाना उचित नहीं समझा। इसलिए नवीन से कह गई थी कि आप को बता दें।''

हाथ में पकड़ा लिफाफा सासू माँ के आगे बढ़ाती हुई बोली, ''हैप्पी मदर्स डे मम्मी जी'' ! आज शाम आपको खाने के लिए बाहर ले जा सकूँ इसलिए ही जल्दी आई हूँ ।

''मन ही मन स्वयं को धिक्कारते हुए रमाजी ने उपहार स्वीकार कर बहू को गले से लगा लिया।

✠✠✠

न्यूजर्सी, अमेरिका में भार्गव आवासीय संगोष्ठी

न्यूजर्सी में अनूप रजनी के घर गोष्ठी

स्वामी विवेकानंद की प्रथम गूंज अमेरिका से

नंद कुमार झा

विवेकानंद जन्मोत्सव युवा-दिवस के रूप में संपूर्ण विश्व में 12 जनवरी को मनाया जाता है, आज की युवा पीढ़ी उनसे आकृष्ट भी है, परंतु वैचारिक स्तर पर असंबद्धता साफ-साफ दिखाई देती है। स्वामी जी एक सुदर्शन युवक थे और मात्र 39 वर्ष की अल्पायु में ही उनका महाप्रयाण हो गया, तो क्या उनकी युवाकृति से ही वर्तमान में युवकगण आकर्षित होते हैं। यह मनोवैज्ञानिक प्रश्न मन में उभरने लगता है।

विवेक का अर्थ 'आत्म-बोध या 'अंतस चेतना' है, जो हमें स्वयं में समाहित ब्रह्मांड का वास्तविक अनुभव कराती है।

'विवेक' ज्ञान की अतिसूक्ष्म चेतना है, जो मनुष्य को परमांनद की अनंत सत्ता से मिलाता है।

मनुष्य के समग्र जीवन यात्रा का सार केवल उसकी अनुभूतियाँ हैं, जो विविध कालखंडों में कभी आदि गुरु शंकराचार्य तो भी स्वामी विवेकानंद का निर्माण करती हैं।

अगर मनुष्य के अंदर से यह विवेक या अनुभव करने की क्षमता हटा ली जायें तो विश्व भर के सारे 'शब्द-कोष' अर्थहीन हो जायेंगे।

शास्त्रों ने जिस 'शब्द' को 'ब्रह्म' की संज्ञा दी है, वे शब्द अनुभूतियों के कारण प्रकट हुए।

अनेकानेक मनस्वी, तपस्वी, विद्वान भारतवर्ष की भूमि पर उपजे एवं विद्या के साक्षात्कार का वर्णन किया, जिनमें आदिगुरु शंकराचार्य, विवेकानंद से लेकर रामानुजम जैसे आधुनिक गणितज्ञ तक हैं।

इतिहासकारों ने लिपि, भाषा एवं ज्ञान-विज्ञान को अनेकानेक रूपों में चित्र-विचित्र तर्कों के आलोक में रखा है, परंतु भारत-भू के इन सजग, सबल विभूतियों की अनुभूतियों के बल पर 'मानव सनातन दर्शन' आज भी अडिग है, अजेय है।

यह सर्वथा सत्य है, हमारे देश में मनस्वी, विद्वानों की कभी भी कोई कमी नहीं रही, और आज तक यह परंपरा अपनी अक्षुण्ण ाता के साथ कायम है।

परंतु स्वामी विवेकानंद जी ने इस निर्माण के लिए जितनी उपेक्षा, घृणा तथा कष्ट झेले, उतना सहन करना शायद किसी अन्य के लिये कभी संभव न हो सकेगा।

सम्पर्क: ई-3/578, सोनिया विहार, दिल्ली-110090, मो. -9971206938, ई-मेल: kavivansh05@gmail.com

स्वामी जी ने 'मानव सनातन धर्म' के प्रचारार्थ मात्र दस वर्ष दिये, और आज स्वामी जी मानव धर्म वैश्विकता के प्रतीक रूप में प्रतिस्थापित हैं।

तब भी कुछ विद्वानों का यह अभिमत रहा है कि विवेकानंद सिर्फ एक 'धर्म-प्रचारक' थे और कुछ भी नहीं। यह बात सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि स्वामी जी को कोई ऐसी बनी-बनाई संस्था व व्यवस्था नहीं मिली थी। जिसमें उन्हें प्रवक्ता या उपदेशक का कोई पद मिलता। वास्तविकता तो यह थी, कि उन्होंने एक ऐसे महासमुद्र में सेतु-निर्माण का बीड़ा उठाया था, जो एक मनुष्य के लिस असंभव प्राय ही था।

महागुरु शंकराचार्य के जिस 'सनातन-धर्म' की पुनर्प्रतिष्ठा राजा-महाराजाओं के काल-खंड में स्वदेश में की थी; स्वामी विवेकानंद ने अंग्रेजों के वैश्विक साम्राज्यवादी व्यवस्था के ठीक नाक के नीचे से अखिल विश्व में 'मानव-सनातन धर्म' की ध्वजा ही नहीं फहराई अपितु एक ऐसी संस्था का निर्माण कर डाला जो सदियों कालजयी मुद्रा में 'मानव सनातन धर्म' का निर्वहन व निर्देशन करती रहेगी।

सन्मित्रो व्यतीत-अतीत की खिड़कियों से आओ, जरा हम झांक कर देखें उन नैसर्गिक क्षणों को जिन क्षणों की पवित्रता ने 'स्वामी जी' को स्वामी विवेकानंद बना दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जबकि सारा विश्व सम्पूर्ण गति से भौतिकतावादी, साम्राज्यवादी व्यवस्था में व्यवस्थित होता जा रहा था, उस समय अमरीका जैसे देश में 'विश्व धर्म सभा' का आयोजन होना अपने आप में एक अद्वितीय घटना थी।

सबकुछ जैसे परा-शक्ति की अपराजिता सत्ता के सौजन्य से हो रहा था, स्वामी जी भी ऐसा ही कुछ अनुभव कर रहे थे।

भारत से विदा होते समय स्वामी जी ने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानंद जी से 'मुंबई-पोर्ट' पर कहा था—'इस धर्मसभा का आयोजन मानव धर्म की विश्व स्थापना के निमित्त हुआ है, ऐसा मेरा मन कह रहा है, कुछ दिनों में तुम्हें इसका पता चल जायेगा।

समय ने उनकी अंतस प्रेरणा को सत्य सिद्ध किया। धर्म-सभा में उपस्थित सभी संप्रदाय के विद्वतजन बड़ी तैयारी के साथ गहन अध्ययनपरक अपने लिखित व्याख्यान पढ़ रहे थे, परंतु स्वामी जी के पास ऐसा कोई भी आलेख नहीं था।

अपराह्न तक भी स्वामी जी को व्याख्यान के लिये तैयार न होते देखकर सभापति महोदय सोच में पड़ गए कि यह युवा संन्यासी कुछ बोल भी सकेगा या नहीं?

अंत में चार प्रतिनिधियों के लिखित वक्तव्य के बाद सभापति के आग्रह करने के बाद वो बोलने को खड़े हुए।

चारों ओर उत्सुकता भरी शांति छा गई, स्वामी जी ने मां शारदा को अंतर्मन में नमन कर अंग्रेजी भाषा में संभाषण शुरू किया।

पहला वाक्य उनके होठों से निकलते ही काफी देर तक तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूंजता रहा। यह करतल ध्वनि कानों को दो मिनट तब बधिर बना देने वाली थी।

करीब सात हजार व्यक्ति किसी अनजान रहस्यमय शक्ति से बंध गए जिसे वो उस क्षण सही मायनों में समझने में भी सक्षम नहीं हो पा रहे थे, उठकर खड़े हो गए। व्याख्यान समाप्ति के उपरांत लोग बेंचों को लांघते-फांदते उनके समीप आने को आतुर हो गए।

स्वामी जी ने इस महान अभिनंदन के प्रत्युत्तर में पुनः बोलना प्रारंभ किया।

''आपने जिस सौहार्द व स्नेह के साथ हमारा स्वागत किया है, उसके लिए मैं संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परंपरा की ओर से आपको धन्यवाद देता हूं, धर्मों की जननी मानव सनातन धर्म की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिंदुओं की ओर से धन्यवाद देता हूँ।''

''मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गौरव का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है।

रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिलनानापथ जुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकल कर समुद्र में मिल जाती हैं। उसी प्रकार हे प्रभु! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझ में ही मिल जाते हैं।

ये यथा मां प्रपद्यान्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्त ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ।

लोग भिन्न-भिन्न रास्तों के माध्यम से चलते हुए अंत में मुझ तक ही पहुँचते हैं।''

शिकागो की यह धर्मसभा जो अखिल विश्व के लिए आशा का किरण बन कर आई थी, विश्व को स्वर्णिम प्रभात की रागिनी सुना रही थी।

अपने भाषण के अंत में स्वामी जी ने कहा—

''सांप्रदायिकता, हठधर्मिता और उसकी वीभत्स धर्मांधता इस सुंदर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारंबार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं का विध्वंस करती और सभी देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि वे वीभत्स दानवी शक्तियाँ न होती तो मानव समाज आज की अवस्था में कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय लद चुका है, और मैं हृदय से आशा करता हूँ कि आज प्रातः इस सभा के सम्मान में घंटा-ध्वनि हुई है वह समस्त धर्मांधता का, तलवार या लेखनी द्वारा होने वाली सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुता का मृत्युनाद सिद्ध हो।''

स्वामी जी 'ऋग्वेद' के एकेश्वरवाद को मानते थे—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।
(ऋग्वेद 1-164-46)

अर्थात् जिसे हम इंद्र, मित्र, वरुण इत्यादि कहते हैं, वह परम सत्ता केवल एक ही है, ऋषि लोग उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं।

स्वामी जी कहते हैं, जीवन के जितने अमर-तत्त्व हैं, वो सब मिलकर 'बीजरूप' में माँ हैं।

अतः इस पावन भूमि पर यदि शक्ति, सत्य व समर्पण को सत्य अर्थों में ग्रहण करना है, तो माता 'सीता' से ग्रहण कर सकते हैं।

विवेकानंद जन्मोत्सव युवा-दिवस के रूप में संपूर्ण विश्व में 12 जनवरी को मनाया जाता है, आज की युवा पीढ़ी उनसे आकृष्ट भी है, परंतु वैचारिक स्तर पर असंबद्धता साफ-साफ दिखाई देती है। स्वामी जी एक सुदर्शन युवक थे और मात्र 39 वर्ष की अल्पायु में ही उनका महाप्रयाण हो गया तो क्या उनकी युवाकृति से ही वर्तमान में युवकगण आकर्षित होते हैं। यह मनोवैज्ञानिक प्रश्न मन में उभरने लगता है।

स्वामी जी के लिखित पत्र, सम्भाषणों, घटित घटनाक्रमों के अतिरिक्त उनकी सबसे निकटता का आभाष कराती है उनकी भावुकता मिश्रित ब्रह्म चिंतन युक्त उनकी काव्यधारा, उन्हीं की कविता का एक अंश देखिये—

देवदूत, मनुज, दनुज भी हूँ नहीं मैं,
देह या मस्तिष्क, नारी या पुरुष भी,
ग्रन्थ केवल मूक, विस्मित,
देखते हैं, प्रकृति मेरी, किंतु मैं 'वह'
बहुत पहले, बहुत पहले,
जबकि रवि, शशि और उडुगन भी नहीं थे,
इस धरा का भी न था अस्तित्व कोई।

उनका योग मनुष्य को प्रबुद्ध बनाने के लिए था, उनका संन्यास मनुष्य को आत्मस्वार्थ से हटाकर परमार्थ की ओर ले जाने के लिए था, वे मुख्यतः समाजसेवी थे, परंतु समाज सेवा के लिए आत्म सुधार पर बल देते थे न कि पाखंडी जनसुधार आंदोलनों पर।

उनका जीवन दर्शन राग और विराग की समानांतर रेखाओं के मध्य बह रहा था।

जिस व्यक्ति को समाज से समाज के प्राणियों से अनुराग नहीं है, वह भला संसार की सेवा क्यूं और कैसे कर सकेगा।

स्वामी जी अपने ऊपर वैराग्य का कोई अंकुश नहीं लगाते थे, वे सहज वैराग्य के प्रतीक थे। उच्च चरित्र, सादा जीवन व समाज सेवा उनके जीवन दर्शन का मूल भाव रहा।

समय की आवश्यकताओं को भांपकर दूरदर्शी परमहंस राम-कृष्ण ने श्री 'नरेंद्र' में स्वामी जी की खोज की थी, स्वामी जी ने परमहंस के आज्ञानुसार वेद और वेदांगों समेत समस्त प्राचीन या प्राच्य-ज्ञान-विज्ञान को धारण किया एवं वेदों की वैज्ञानिकता को विश्व पटल पर पुनर्स्थापित कर दिखलाया।

✠✠✠

अभिनेत्री सुचित्रा सेन

पंकज शुक्ला

दिलीप कुमार ने एक बार कहा था कि-'जब मेरा परिचय पारो के किरदार से हुआ तो बस सुचित्रा सेन को बिना पलक झपकाए देखता रहा। लगा कि वीनस या सुंदरता की देवी साक्षात परदे पर मौजूद हो। पनघट पर वह सीन, मेरी आंखों में अमर हो गया, जब पहली बार पारो मेरी आंखों के सामने आती है। किसी एक महिला में पहली बार अद्‌भुत सौंदर्य और बुद्धि दोनों को एक साथ महसूस किया।

भारतीय सिनेमा में अभिनेत्री सुचित्रा सेन ने अपनी गरिमामय उपस्थिति से लाखों दर्शकों के दिलो में जगह बनाई। बांग्ला फिल्मों की तो वह 'दिलकश महानायिका' रहीं।

तीन पीढ़ियों के दर्शकों पर अपने अभिनय की छाप छोड़ने वाली सुचित्रा भारत और बांग्लादेश दोनों ही देशों में बांग्लाभाषी लोगों के बीच लोकप्रिय थीं।

तीन दशकों तक उन्होंने अपने अभिनय और सौंदर्य से रजट पट पर राज किया। वह बांग्ला फिल्मों की सबसे लोकप्रिय और समर्थ अभिनेत्री थी। अभिनेता उत्तम कुमार के साथ उनकी जोड़ी सारे बंगाल में लोकप्रिय हुई।

बंगाली सिनेमा में कानन देवी के बाद कोई अन्य नायिका सुचित्रा सेन की तरह प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर पाई। जब फिल्मों का श्वेत श्याम दौर था तब उनके जबर्दस्त अभिनय ने उन्हें 'दर्शकों के दिल की रानी' बना दिया था। उनकी लोकप्रियता का यह आलम था कि दुर्गा पूजा के दौरान देवी लक्ष्मी और देवी सरस्वती की प्रतिमाओं के चेहरे सुचित्रा के चेहरे की तरह बनाए जाते थे।

6 अप्रैल 1931 को पदमा नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित बंगाल के पाबना में सुचित्रा का जन्म हुआ था। स्कूल मास्टर करूण गय और इंदिरा देवी के तीन पुत्रों और पांच पुत्रियों में सुचित्रा पांचवीं संतान थी। उसका असली नाम रमा था।

जब वह 16 बरस की थी तब कलकत्ता के एक अमीर परिवार के लड़के दिबानाथ सेन से उनकी शादी कर दी गई।

सुचित्रा अभिनय क्षेत्र में आने से पहले गायिका बनना चाहती थी। उन्होंने 1951 में गायन के लिए ऑडिशन भी दिया था। लेकिन निर्देशक सुकुमार दास गुप्ता ने सुचित्रा को अपनी फिल्म में रोल ऑफर किया।

वर्ष 1947 में शादी के 5 वर्ष बाद उन्होंने फिल्म क्षेत्र में कदम रखा। उन दिनों एक विवाहिता के लिए इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। घर में उन्हें रमा या कृष्णा कहा जाता था

सम्पर्क: 39, अहीरपुरा, फ्लैट जे-9, अहीर मोहल्ला, जहांगीराबाद, भोपाल, पिनकोड-462008, मो.-08827363956

फिल्मों में उन्हें एक नया नाम मिला सुचित्रा। 1952 में बनी फिल्म 'शेष को थाई' उनकी पहली बांग्ला फिल्म थी।

बांग्ला की चर्चित फिल्में-सुचित्रा की प्रमुख बांग्ला फिल्में हैं:

साड़े चुआत्तर (1953), औरा थार्क औघरे (1954), अग्नि परीक्षा (1954), शाप मोचन (1953), सागरिका (1956), हारानो सुर (1957), सप्त सादी (1961), सात पाके बांधा (1963), इंद्राणी (1958), उत्त फाल्गुनी (1963), गृह दाह (1967), फरियाद (1970), देवी चौधरानी (1974), दत्ता (1976)।

सुचित्रा ने अपने कैरियर की शुरुआत 1952 में बांग्ला फिल्म 'शेष कोठई' से की थी। लेकिन यह फिल्म रिलीज ही नहीं हो पाई और सुचित्रा बहुत आहत हुई। इसके बाद तो उन्होंने 52 बांग्ला फिल्मों में यादगार भूमिकायें निभाईं।

उनकी पहली रिलीज फिल्म थी 1953 में समर रॉय के साथ 'सात नंबर कैदी' लेकिन यह खास नहीं बन पाई। 1959 में आई असित सेन की फिल्म 'दीप जबले भई' को उनकी उत्कृष्ट अदाकारी के लिए याद किया जाता है।

'सात पाके बाघा' में उन्होंने माँ और बेटी की दोहरी भूमिकायें निभाई थीं। इस फिल्म में सुचित्रा की भूमिका चुनौतीपूर्ण थी। पति से अलग होकर खुद की पहचान बनाने वाली महिला की इसी फिल्म के लिये उन्हें मॉस्को फिल्म समारोह में 'सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री' का पुरस्कार प्रदान किया गया था।

1978 में 'भ्रण्य पाथ' उनकी अंतिम फिल्म थी।

सात हिंदी फिल्में

हिंदी फिल्मों के दर्शकों ने सात हिंदी फिल्मों के माध्यम से सुचित्रा की अभिनय प्रतिभा से साक्षात्कार किया। यह फिल्में हैं-देवदास, मुसाफिर, चंपाकली, बंबई का बाबू, सरहद, ममता और आंधी।

इनमें से पहली हिंदी फिल्म थी विमल रॉय की कालजयी कृति 'देवदास'। विमल दा, पारो की भूमिका में मीना कुमारी को लेना चाहते थे। लेकिन उनकी व्यस्तता के चलते मधुबाला का नाम सामने आया। लेकिन दिलीप कुमार के साथ उनके संबंधों में खटास आ चुकी थी क्योंकि 'नया दौर' को लेकर उनके बीच

कोर्ट कचहरी तक हो चुकी थी।

परिणामस्वरूप 'देवदास' में फिर सुचित्रा का चयन किया गया। वह चूंकि बंगाली थीं और उनकी हिंदी अच्छी नहीं थी अत: असित सेन ने उन्हें हिंदी सिखाने का काम किया। देव आनंद के साथ सुचित्रा की दो फिल्में रहीं-बंबई का बाबू और सरहद (1960)। लेकिन देव आनंद ने भी सुचित्रा के अभिनय की तारीफ फिल्म 'आंधी' के लिये की।

हिंदी फिल्म 'ममता' और उसके बंगाली मूल 'सात पाके बाघा' में उन्होंने मां और बेटी की दोहरी भूमिकायें निभाई थीं। मां के पात्र को उसका पति ही, अन्य पुरुषों को बेचता था और उसे तवायफ बनना पड़ा। लेकिन उसने अपनी बेटी को अपने दूषित वातावरण से दूर रखा और उच्च शिक्षा दी।

बांग्ला फिल्मों में सुचित्रा सेन की अभिनेता उत्तम कुमार के साथ उनकी जोड़ी बहुत लोकप्रिय रही। उन्होंने उत्तम कुमार के साथ 32 फिल्मों में अभिनय किया। इस जोड़ी को बॉक्स ऑफिस पर भी बेमिसाल माना जाता था। सुचित्रा को सफलता भी मिली थी 1953 में उत्तम कुमार के साथ फिल्म 'साढ़े चौहत्तर' से।

उनकी और उत्तम कुमार के प्रेम की बातें हमेशा उछाली गयीं लेकिन दोनों ने कभी न इसे स्वीकार किया।

गुलजार की 'आंधी' फिल्म बहुचर्चित और विचारोत्तेजक थी।

जे. ओमप्रकाश ने सुचित्रा सेन और संजीव कुमार को लेकर एक फिल्म बनाने का प्रस्ताव गुलजार के सामने रखा था, जिसकी पटकथा सचिन भौमिक ने लिखी थी। लेकिन गुलजार को यह कहानी पसंद नहीं आई और उन्होंने स्वयं एक कहानी लिखना शुरू किया। जिसमें एक महिला राजनेता और एक होटल मालिक के रिश्तों का ताना-बना बुना गया था।

'आंधी' में सुचित्रा सेन ने एक ऐसी राजनेता आरती देवी की भूमिका निभाई थी, जो अपने कैरियर के लिए अपने पति से भी दूर चली जाती है। इस किरदार को जहां इंदिरा गांधी से प्रेरित बताया गया वहीं सुचित्रा के जीवंत अभिनय की सराहना हुई। सुचित्रा के अभिनय की सजीवता को देखकर यह भी कहा गया कि चूंकि वास्तविक ज़िंदग़ी में भी ऐसे दौर से गुजर चुकी हैं इसलिए वह इस किरदार को इस कदर डूब कर जी पाईं।

1975 में 'आंधी' फिल्म आपातकाल का शिकार हो गई। उसकी नायिका आरती (सुचित्रा) के किरदार को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के जीवन से जोड़ा गया। फिल्म पर प्रतिबंध लगा और आपातकाल हटने के बाद जब आंधी रिलीज हुई तो दर्शकों की भरपूर सराहना प्राप्त हुई।

जिस एक और हिंदी फिल्म के लिये हिंदी वाले सुचित्रा को पहचानते हैं वह गुलजार की 'आंधी' ही है। माना जाता है कि सुचित्रा सेन की बॉडी लैंग्वेज, अभिनय क्षमता और मैनेरिज्म का सही उपयोग गुलजार ने 'आंधी' में ही किया था।

सुचित्रा सेन, भारत की ऐसी पहली अभिनेत्री रहीं जिन्हें फिल्म 'सात पाके बांधा' में अभिनय के लिये मास्को फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिला।

1972 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से नवाजा। पश्चिम बंगाल सरकार ने वर्ष 2012 में बंगाल का सर्वोच्च सम्मान 'बंग विभूषण' प्रदान किया।

वर्ष 2005 में उन्हें भारतीय सिनेमा के सर्वोच्च सम्मान 'दादा साहेब फाल्के पुरस्कार' देने की बात चली। लेकिन अपने एकांत में डूबी सुचित्रा ने इसे नहीं स्वीकारा। उन्होंने अपने घर से बाहर आने से मना कर दिया, जिसके चलते उनका नाम टाल दिया गया।

उन्हें अपनी पहली ही हिंदी फिल्म देवदास के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का फिल्म फेयर पुरस्कार मिला था।

बेहतरीन अभिनय के साथ सुचित्रा सेन का अलौकिक सौंदर्य भी आकर्षित करता था। उनका सौंदर्य उनकी निजी धरोहर रहा है।

दिलीप कुमार ने एक बार कहा था कि-'जब मेरा परिचय पारो के किरदार से हुआ तो बस सुचित्रा सेन को बिना पलक झपकाए देखता रहा। लगा कि वीनस या सुंदरता की देवी साक्षात परदे पर मौजूद हो। पनघट पर वह सीन, मेरी आंखों में अमर हो गया, जब पहली बार पारो मेरी आंखों के सामने आती है। किसी एक महिला में पहली बार अद्‌भुत सौंदर्य और बुद्धि दोनों को एक साथ महसूस किया।

विमल राय जिस समय देवदास की शूटिंग कर रहे थे तब दिलीप कुमार ने कहा था कि-'सुचित्रा सेन अत्यंत समर्पित और अनुशासित कलाकार हैं और देवदास के प्रेमदृश्यों में अनुभूति की तीव्रता केवल आंखों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, वे दोनों कभी एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते।

ब्रितानी फिल्म समालोचक डेरेक मेल्केम ने कहा था कि 'सुचित्रा के अभिनय में ही ऐसा जादू है कि उन्हें कैमरे के सामने अभिनय करने की आवश्यकता ही नहीं है। उनमें एक अपरिभाषेय ठहराव है।'

महान फिल्कार सत्यजीत रे और राजकपूर के साथ काम करना, हर कलाकर्मी का सपना हुआ करता था। किन्तु, सुचित्रा ही ऐसी इकलौती अभिनेत्री रहीं जिन्होंने इन दोनों की फिल्मों का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था।

राजकपूर उन्हें अपने अपने बैनर तले बनने वाली एक फिल्म के लिए साइन करना चाहते थे। लेकिन सुचित्रा ने इसे नहीं स्वीकारा, क्योंकि उस समय वह दूसरी फिल्मों की शूटिंग में व्यस्त थे।

सत्यजीत राय 'देवी चौधरानी' नामक फिल्म सुचित्रा सेन को लेकर बनाना चाहते थे। लेकिन तारीख की समस्या के कारण उन्होंने यह प्रस्ताव नहीं स्वीकारा। फिर समय मिलने पर सुचित्रा ने इसी कहानी पर दिनेश गुप्ता द्वारा निर्देशित फिल्म 'देवी चौधरानी' में सन् 1974 में अभिनय किया था। यह कहानी शरतचंद्र की थी। सुचित्रा का साथ न मिलने के कारण सत्यजीत रे ने उसके बाद कभी इस फिल्म का निर्माण ही नहीं किया। हिंदी में उन्होंने केवल सात फिल्में स्वीकारी और उससे अधिक फिल्मों को अस्वीकार कर दिया। निर्माता रमेश बहल मुंबई में

सुचित्रा की पुत्री मुनमुन सेन के साथ कोलकाता गये थे लेकिन सुचित्रा ने पटकथा सुनना तो दूर मिलना भी स्वीकार नहीं किया।

1978 में प्रदर्शित फिल्म 'प्रणय पाश' के बाद सुचित्रा ने फिल्मों से संन्यास की घोषणा करके सबको चौंका दिया, क्योंकि वह अपने कैरियर पर शीर्ष पर थी।

फिल्मों से संन्यास के बाद उन्होंने धीरे-धीरे घर से बाहर निकलना छोड़ दिया और खुद को एक मकान के भीतर तक सीमित कर लिया और फिर करीब चार दशक तक अपने आपको कोलकाता के बेलीगंज सरकुलर रोड़ के चार अपार्टमेंट्स में से एक में नजरबंद कर रखा। उन्हें अपना एकांत, अपनी निजता इतनी प्रिय थी कि उन्होंने दादा साहब फाल्के सम्मान तक नहीं स्वीकारा, क्योंकि इसके लिए उन्हें घर से बाहर निकलकर दिल्ली जाना पड़ता। वह दुनिया के सामने आने के लिए तैयार नहीं हुई और उन्होंने इस सम्मान को ही ठुकरा दिया।

करीब 35 सालों के एकांतवास में उन्हें कोलकाता में केवल दो बार सार्वजनिक रूप से देखा गया। पहली बार 24 जुलाई 1980 को जब परदे पर उनके नायक, उनके जोड़ीदार उत्तम कुमार का निधन हो गया। सुचित्रा अपनी कार से उतर कर सीधे उत्तम कुमार के शव के नजदीक पहुंच मौन खड़ी हो गई। फूलों की एक माला शव पर समर्पित कर चुपचाप कार में बैठ वापिस आ गई। दूसरी बार वह नजर आयी थी 1982 में कोलकाता में चल रहे फिल्म समारोह के दरम्यान। तब दर्शकों ने सन ग्लास पहने सुचित्रा की झलक भर देखी थी।

मशहूर हालीवुड अभिनेत्री ग्रेटा गार्बो से अक्सर सुचित्रा सेन की तुलना की जाती थी। क्योंकि ग्रेटा की तरह वह भी बहुत खूबसूरत और प्रतिभाशाली थी और एकांतवास पसंद करती थी।

सुचित्रा सेन के अंतिम दिनों के लुक को लेकर रहस्य बना रहेगा। दुनिया के सामने, मौत के बाद भी उनका चेहरा सामने नहीं आया क्योंकि उनके शव को ले जाने वाला वाहन सफेद फूलों से ढंका था और काले रंग का शीशा लगा था, इस कारण उनके प्रशंसक उनकी 'अंतिम झलक' तक नहीं पा सके। परिवार के सदस्यों ने कहा कि सुचित्रा जी की अंतिम इच्छा का ख्याल रखते हुए ऐसा किया गया।

सुचित्रा सेन ने करीब 3 दशक की अभिनय यात्रा में विविधतापूर्ण क्षमता से भारतीय सिनेमा और विशेषकर बांग्ला फिल्मों में यादगार योगदान दिया। बांग्ला सिनेमा की तो वह ऐसी हस्ती रही हैं जिनके जिक्र के बिना सिनेमा इतिहास कभी लिखा ही नहीं जा सकेगा।

पचास-साठ के दशक में जब परदे पर तमाम नायिकायें हीरो के पीछे आगे-पीछे घूमती हुई गाने के लिए जानी जाती थीं, उस दौर में सुचित्रा सेन ने औरत को सशक्त रूप में परदे पर पेश कर उसकी अस्मिता को नई पहचान दी थी, साथ ही अपनी गरिमा भी बनाये रखी।

फिल्म 'दीप ज्वले जाई' के अंत में नर्स बनी सुचित्रा कहती हैं-'मैं एक्टिंग नहीं कर रही थी। मैं एक्टिंग कर ही नहीं सकती।' बात सच भी थी। फिल्मों में भी वह किरदारों को निभाती नहीं थी, बल्कि जीती थी, डूब कर।

बंगाल में बॉक्स ऑफिस की दृष्टि से भी वह सफल अभिनेत्री थी। बॉक्स ऑफिस पर उनकी तूती बोलती थी। जिस फिल्म में वह हो तो इस बात की गारंटी होती थी कि फिल्म की लागत, मुनाफे के साथ वापिस आ जायेगी। यानि दर्शकों के दिल के साथ बॉक्स ऑफिस तक की वह रानी थी।

सुचित्रा की अपरिभाषेय रूप-छवि और फिर रहस्यमय एकांतवास को याद करते हुए रसिकों को किसी 'भूमिगत नदी' की याद आई, ऐसी भूमिगत धारायें जिसकी थाह पाना तो दूर उसकी टोह लगा पाना भी सरल नहीं होता।

उन्होंने परदे पर एक 'अभिमानिनी नायक' के रूपक को साकार किया। फिल्म 'आंधी' में वह अभिमानिनी नायिका के रूपक को ओर आगे ले गई।

सुचित्रा ने एक बार कहा था-मैं एक अभिनेत्री हूं, आप मुझे परदे के सिवा और कहीं नहीं पा सकते।' और उन्होंने इसे चरितार्थ करके दिखाया चार दशक तक, अंतिम समय तक।

हिंदी फिल्मों में गाये उनके कुछ लोकप्रिय गीत याद आते हैं-चंपाकली का—'छुप गया कोई दूर से पुकार के, बंबई का बाबू का—'चल री सजनी अब क्या सोचे' और फिल्म 'आंधी' के यादगार गीत—'तेरे बिना ज़िंदग़ी से शिकवा तो नहीं', 'तुम आ गए हो तो नूर आ गया है। नहीं तो चरागों से लौ जा रही थी।'

लगता है 'ममता' में गाये गीत सुचित्रा अब फिर गा रही हैं—'रहें न रहें हम महका करेंगे----------

✠✠✠

महाकवि गुलाब खंडेलवाल की दो कविताएं

पंछी उड़-उड़ जायेंगे

पंछी उड़-उड़ जायेंगे
पर ये कुछ ऐसे हैं चिर-दिन जो इस वन में मँडरायेंगे

हों भी मलिन काग कुछ इनमें
कुछ उलूक देखें मत दिन में
पर हैं राजहंस भी जिनमें
सहृदय मेरी छवि पायेंगे

जो मेरे सुर दुहरायेगी
कभी कोकिला भी आयेगी
जब-जब श्याम छटा छायेगी
मोर-पपीहा भी गायेंगे

मैंने अमृत-बीज जो बोये
यद्यपि आज धरा में सोये
छवि से मोहेंगे जग को ये
जब प्रसून बन लहरायेंगे

पंछी उड़-उड़ जायेंगे
पर ये कुछ ऐसे हैं चिर-दिन जो इस वन में मँडरायेंगे

दृष्टि किसी उन्नायक की (सॉनेट)

दृष्टि किसी उन्नायक की पड़ती मेरे कृतित्व पर भी
तो क्या मैं भी यों अनदेखा रहता जग की आँखों से
मुग्ध हुए आँगन में तो सुनकर मेरे गीत सभी
पर क्या नप जाता न गगन भी मेरी नन्हीं पाँखों से

कालिदास के कुल में हूँ पर मिला न क्षिप्रा-तीर मुझे
हूँ गंधर्व किन्तु अभिशापित, कारा में ही बंद रहा
काल करे भी मुक्त कभी यदि लौह-यवनिका चीर मुझे
क्या हो लाभ! उड्डयन-क्षण तो पंखरहित निस्पंद रहा।

पर ये भाव क्षणिक थे, मैंने सदा राजसुख ही भोगा
सुनता हुआ दूर से आती जयध्वनियाँ अपने यश की
था मन में विश्वास, अजाना सदा न मेरा स्वर होगा
निश्चय मोहेगी जग को, मैंने की जो वर्षा रस की

मिला मुझे तुझसे जो, झूठे थे सब सुख उसके आगे
क्या, यदि आत्महीनता के भी भाव कभी मन में जागे

(साभार: गुलाब ग्रंथावली)

✠✠✠

महाकवि हरिशंकर 'आदेश' की दो कविताएं

भारत माँ ही माता

अमेरिका, ट्रिनिडाड, कनाडा मौसी या कि विमाता,
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

बहे धमनियों में लोहित बन, जिसका दाना-पानी,
अस्थि और मज्जा में व्यापक, जिसकी रेणु सुहानी।
जिसका तेज बसा आनन पर, जिसकी ज्योति नयन में,
जिसकी वायु बसी प्राणों के, प्रत्येक मृदु-स्पंदन में।

लगता है, जिससे है मेरा, जन्म-जन्म का नाता,
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

जिसके आंचल में थी मैंने, अपनी आँखें खोली,
जिससे पाये थे स्वर-व्यंजन, बोल तोतली बोली।
जिसके आँगन में डाला था, माँ ने मेरा पलना,
जिसकी रज में सीखा मैंने, घुटनों के बल चलना।

जिसकी दिव्य देहरी पर, खोला जीवन का खाता,
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

जहाँ मिली थी माँ की ममता, प्यार पिता का पाया,
जहाँ भाइयों-बहिनों ने मुझ, पर निज नेह लुटाया।
जहाँ मिली थी मुझे प्रणय की, विधिवत् निर्मल-गंगा,
जहाँ खिला मेरे जीवन का, इंद्रधनुष सतरंगा।

जिसे प्रणाम करते हैं नित्य, नमन अभिनंदन प्रातः।
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

साभार: प्रवासी की पाती भारतमाता के नाम

जहाँ मिली हिंदी की थाती, संस्कृत की मर्यादा,
जहाँ मिला रोमांस मुझे, उर्दू का सीधा-सादा।
जहाँ मिली गीता-रामायण, वेदों की ऋत वाणी,
जहाँ मिली मुझको षड्दर्शन की निधि चिर कल्याणी।

जिस पर गगन-विचुम्बित हिमगिरि, अविरल प्यार लुटाता,
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

सत्य मिला है, शील मिला है, शिष्टाचार मिला है,
आर्य-सभ्यता-संस्कृति का सुंदर उपहार मिला है।
जहाँ धर्म का मर्म समझकर जीवन सफल बनाया,
धर्माधरित कर्मकांड कर पल-पल ही सुख पाया।

सदाचार का जहाँ जुड़ा जीवन से अटूट नाता,
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

जहाँ रहें, उस दिन की सेवा, करना धर्म हमारा,
जहाँ जियें, उस देश की रक्षा, करना कर्म हमारा।
देशभक्ति की, राष्ट्रभक्ति की, रखना सदा भावना,
बने नागरिक जहाँ करें, उसके प्रति मंगल-कामना।

जीवन-दाता से बढ़कर होता है आश्रयदाता,
सदा रहेगी भारत माँ ही, परंतु मेरी माता।

शहर से गाँव तक

हुआ संकुचित भाई चारा, उजड़ चले हैं गाँव।
गाँवों तक भी जा पहुँचे हैं आज पतन के पाँव।।

भाई भाई के पीछे से छुरा घोंपता है
बेटा वृद्ध बाप के दिल में दर्द रोपता है
संबंधों के अर्थ बदल गये, बदला मूल स्वभाव।।

बदल रहा है रक्त रंग का, बदले नैतिक मूल्य
भ्रष्टाचारी बन बैठे हैं आज देवता-तुल्य
डसती है गाँवों को शहरों की जहरीली छाँव।।

पनघट पर जमघट गुंडों का, हुआ रास का ह्रास
'राधा' का घूँघट नीलाम कराती उसकी सास
जीवन में आमूल हो रहा खतरनाक बदलाव।।

करे दूर दर्शन जीवन से आज दूर-दर्शन
कठिनाई से होते हैं सच्चाई के दर्शन
उखड़ रहे हैं पाँव सत्य के, जमे झूठ के पाँव।।

अमराइयाँ हो रहीं सूनी, आज बँटी चौपाल
चैती, कजरी, होरी, आल्हा, रामायण बेहाल
वोटों के जंगल बन गये हैं, आज गाँव के गाँव।।

सुविधाओं की चक्की में पिसता है भ्रांत किसान
दुविधाओं की भट्टी में जलता है हर इंसान
आज गरीबी का जलता है चारों ओर अलाव।।

यौवन दिशा-हीन है, शैशव में है नहीं उमंग
नारी का जीवन है जैसे भटकी कटी पतंग
घर-घर में ही आज पनपने लगा कुटिल अलगाव।।

✠✠✠

कनाडा से

काव्यनिधि

सुखमय जीवन

आशा बर्मन

यह जीवन है क्षणभंगुर,
लोग सदा से कहते हैं,
फिर न क्यों हम कष्ट भुलाकर
सहज रूप से जीते हैं?

जब भी जाए तुम पर दृष्टि
मुख गंभीर और भ्रू कुंचित
ऐसा लगता कितने युग का
कष्ट तुम्हारे उर संचित।।

क्या कारण है आज बताओ
रहते क्यों सदा मनमार,
क्या सारे जग की समस्याओं के
निदान का तुम पर भार?

देखो चारों ओर तुम्हारे
सहजप्राप्य हैं सुख के पल,
हाथ बढ़ाकर उनको गह लो,
मन जाएगा तुरत बदल।

अपने मन के हो तुम स्वामी
किंचित कर लो परिवर्तन,
तब समझोगे तुम स्वत: ही
कितना सुखमय यह जीवन।

इसी बात पर तुम मुस्काओ,
चिंताएं हैं व्यर्थ, दूर भगाओ
हास्ययोग को ही याद कर
मुस्काओ और हंसो-हँसाओ।

✠✠✠

सम्पर्क: ashaburman@hotmail.com

धनंजय कुमार की चार कविताएं

राहें

ये राहें कहां जा रही हैं
अपनी ही धुन में
ये राही को मंजिल पे
पहुंचा रही हैं
या सपनों की दुनिया में
भटके मुसाफिर को
बहला रही हैं।

शायद यही सोचती हैं
मंजिल अगर आ गई सामने
मुसाफिर जुदा इनसे हो जायेंगे
वजूद उनका भी यूं ही खो जायेगा।

अधूरापन

आ गया है समय
तुम्हें जानने का कुछ दूर से
सतही लगती है पहचान
एक-एक टुकड़े को
अलग-अलग देखने की।
पाकर, जानकर तुम्हारे पूरेपन को
मिट सकेगा मेरा भी अधूरापन

सम्पर्क: 7806, Wendy Ridge Lane, Annandale Virginia 2203
U.S.A. E-maill: dkyoga@hotmail.com

आखिरी पेड़

गांव में घर के पिछवाड़े
एक आम का बगीचा
मेरे बचपन का साक्षी
कट गये कुछ पेड़, कुछ सड़ गये
उनकी जड़ों की जमीन पाटकर
कुछ दुकान खड़ी हो गईं।
वहीं-आम का एक आखिरी पेड़
धीरे-धीरे सूख चला था
लेकिन कुछ शाखें पनपती रहीं
मेरे मन की उर्वर धरती पर
अब भी हर साल जून के महीने में
जाने कहां से फूट आती है
एक नन्ही सी हरी-पीली अमिया।

सोचता हूं

सोचता हूं अर्थ क्या था
बुद्ध के मध्यम मार्ग का
कि आग जलती रहे,
जलकर कुछ राख भी न हो।
सोचता हूं संदेश क्या था
अद्वैत वेदांत का-
अनंत विस्तार संभव है
जहां कोई दूसरा न हो।
सोचता हूं क्यों होती है मानवता।
दिशाहीन, कालग्रस्त-
धरती जैसी डाल पर बैठा इंसान
उसे फल समझकर खाता रहा।

✠✠✠

मौन

नरेंद्र टंडन

मुद्दआ गर हो भी सही,
पर अंदाजे-बयाँ हो गलत
बात बनते ही न बिगड़े,
चुप रहो, बस चुप रहो ...

बात में गोम आनी भी हों
लोग समझें, या न समझें
तजकिरा होगा जरूर
और धज्जियां उड़ जाएंगी
चुप रहो, बस चुप रहो ...

जब न मूसा की चली,
ईसा को सूली मिली,
अजी, तुम कहाँ के हो वली
चुप रहो, बस चुप रहो ...

बोल कर देखा बहुत
अब कौन सुनता है यहाँ!
बे-खबर सारा जहाँ,
चुप रहो, बस चुप रहो ...

हो रही है रहजनी दिन दहाड़े
लाश एक पड़ी है, मिरे पिछवाड़े
और आँख पे पट्टी बंधी है,
कुछ कहो, न कुछ सुनो
चुप रहो, बस चुप रहो ...

है खबर ''कल आग लगनी है वहाँ''
बात सच्ची हो या झूठी
मरने वाले तो मरेंगे
तुम सुनो, न कुछ कहो
चुप रहो बस चुप रहो ...

बोलना हो गर जुरूरी
तोल कर कुछ बोल दो
गर कोई मांगे मदद,
तो अपनी झोली खोल दो
पर चुप रहो,
कुछ सुनो, न कुछ कहो
चुप रहो, बस चुप रहो ...

✠✠✠

सम्पर्क: 7102, Stratos Lane, Gaithersburg Maryland-20879

रेखा मैत्र की तीन कविताएं

प्रार्थना

अमरीकी जमीन पर जब
कविता-कहानी और नज्म
की बूंदा-बांदी होती है
तब यहां के बर्फीले मौसम से
प्रार्थना किया करती हूं
कि इन्हें जमने मत देना
ये बारिश होती रहे
ये फूल खिलते रहें
ताकि अगली नस्लों की
फसलों पर भी बहार आये
अगली ऋतु सूखी न जाये।

तजुर्बा

जीवन की खिड़की पर बैठा मन
सोचता रहा देर तक
कि स्टेशन जो निकल गया
उसको अब जाने दें
पांव अगर थम गये
तो सफर आगे कैसे बढ़े?
फिर भी न जाने क्यों
बार-बार अतीत की
जुगाली करता है मन
अतीत के तजुर्बे से
भविष्य की गठरी-सी बांधता है।

देशांतर

इन रंग-बिरंगी चिड़ियों की भी
क्या जुबान लड़खड़ाती होगी
इनकी देह भी क्या थककर
चूर हो जाती होगी
जब वे पूर्वी तट से
पश्चिमी तट तक की
लंबी उड़ान भरती होंगी।
नई जगह के नए
मौसमों की देखकर
क्या ये भी चहकना
भूल जाती होंगी,
सोचा तो लगा
कि इनसे मेरा कोई रिश्ता
जरूर रहा होगा
तभी तो ये भटक रही हैं
मेरी तरह कहाँ से यहाँ
यहाँ से वहाँ।

✠✠✠

सम्पर्क: rekha.maitra@gmail.com

बस प्रेम ही

सुनीता जैन

यह एक लंबी कविता थी
प्रेम की असंभवता के विरुद्ध

क्योंकि वे दोनों
अभी भी हैं प्रेम में
घर के भीतर
घर के बाहर, अलग-अलग संदर्भों में
यहाँ तक कि तोता-मैना में भी—

वे जानते हैं
समय हो सकता है 'आधुनिक' या 'आजकल'
प्रेम का समय, समय है पर,
समय के चौखटों से बाहर

वैसे भी
वे छिन्न नहीं हो सकते कभी
उनके छिन्न होते ही
छिन्न हो जाती साँसें उनकी
फिर कुछ भी बचाया नहीं जा सकता—
न जीवन, न एक कदम धरती

वे दोनों हैं अब
अपने-अपने क्रीड़ा-स्थल में
अपने-अपने विश्वास में
हर साँस में—

कभी पारो
कभी देवदास, चंद्रमुखी
कभी सुधी
कभी चंदर,
कभी हीर
राँझा कभी,
कभी जूलियट
रोमियो कभी,
कभी शीरी
फरहाद कभी,
कभी सलीम
अनारकली कभी,
कभी राधे
बिहारी कभी,

नामों का क्या
नाम हो सकते हैं—
होते हैं—और भी,
जैसे मीरा
और मुरारी,
मिर्जा गालिब
और डोमिनी,
कालिदास का यक्ष
और यक्षिणी,
मनु और
शतरूपा—
तुलसीदास
रत्नावली,

किन्तु हर नाम का अनुवाद
हर भाषा, काल और
प्रांत में
होता है
बस प्रेम ही। ✠✠✠

साभार: प्रेम में स्त्री (रेमाधन पब्लिकेशन्स प्रा. लि.)

अशोक सिंह की दो गज़लें

1.

सब मिलते हैं बातें करते हैं यार नहीं कोई मिलता है
दिल को जो गुलशन कर दे गुलजार नहीं कोई मिलता है।

एक वक्त का दिल मिलना, एक वक्त का याराना
साल महीने गुजरे यूँ घर-बार नहीं कोई मिलता है।

जुबां मिली है सोच मिली है और प्यार का भी दम है
दिल की हम बोली बोलें संसार नहीं कोई मिलता है

अलग-अलग मोती से मानस, सब प्यारे सब खुशदिल हैं
डाल पिराये आगा इक गुलकार नहीं कोई मिलता है

अपनी धुन में मगन, कभी इनसे या उनसे बावस्ता
घेरा मन का पार करें दिलदार नहीं कोई मिलता है

दीवारें हैं ऊँची पुख्ता या खाई गहरी दरम्यान
जोड़े खिड़की या पुल से दस्तकार नहीं कोई मिलता है।

सब के मन में हैं शंकाएं नफरत और खुदगर्जी की
करें अदावत दूर सभी किरदार नहीं कोई मिलता है।

सम्पर्क: ashoksingh@gmail.com

2.

यूं हिकारत की नजर उसका यूं नाहक देखना,
दिल में उसकी चाहतें रहती हैं कब तक देखना।

ज़िंदगी में ऐसा भी होगा मुसीबत आएंगी,
जिनसे थी उम्मीद उस जानिब न बेशक देखना।

मुश्किलें आईं तो बढ़ कर के करेंगे सामना,
हम नहीं होंगे खड़े बन मूक दर्शक देखना।

रक्स का अंदाज अपना हो निराला तो भी क्या,
ज़िंदगी की धुन में हर एक लेंगे कत्थक देखना।

सारे ही हो कर मगन सुनते रहेंगे दास्तां
जिक्र उसकी छवि का इतना है ही मोहक देखना।

झील की गहराई में भी जा के प्यासा रहेगा,
बूंद पहली मेह की तुम, और मैं चातक देखना।

दिल का सौदा करने का अंदाज गर ये आपका,
माफ करिये, जा के कोई और ग्राहक देखना।

जब भी आशा औ निराशा द्वंद्व में दिखती हो हार,
मन के संबल को बनाकर प्रोत्साहक देखना।

वक्त ने शायद किया हो सख़्त दिल उसका मिजाज,
मन में उसके झांक कर वो नन्हा बालक देखना।

✠✠✠

अतीतजीवी से

गुलशन मधुर

जो जा चुका है, जा चुका है
पर मताग्रह की एक बेबसी है
जिससे तुम्हारे अनजाने में
तुम बेतरह बंधे हो
जिसके गिर्द तुमने बुन रखा है
एक बीता हुआ स्वर्णिम कल
और जिस पर तुम
खड़ी करना चाहते हो
अनागत की
स्वयं को भव्य जान पड़ती एक इमारत
एक जादू है
जो तुम्हारे सर चढ़कर बोलता है
बहुत कठिन है टूटना
अवश मंत्रमुग्धता का
यह वशीकरण सम्मोह
जहां लौटने को तुम मान चुके हो
सभी रोगों का रामबाण उपचार
शताब्दियों पहले के
मनचाहे दृश्यों का वह स्वप्न
तुम्हारा दुराग्रह, तुम्हारा हठ है

तुम मुझे, इसे, उसे, सभी को
उस दु:स्वप्न में झोंक देना चाहते हो
अपनी प्रकल्पना की उस दुनिया में
जिसे गढ़ते-गढ़ते
कितनी अनगढ़ हो गई है
तुम्हारी सोच
तुम, जो झेल नहीं पा रहे हो
एक कल्पित बीते पल का बिछोह
जिसके हम तुम अधिकारी हैं
न संभव है, न अपेक्षणीय
उस काल बिंदु पर लौटना
जो अब व्यतीत का खंड है
कितना भी गौरवशाली रहा हो वह
या फिर नहीं
आगे जो भी होगा, उससे अलग होगा
कुछ और होगा
तो छोड़ भी चुको
फिर-फिर वहीं लौटने की ज़िद
वह जो आदिम आवास है तुम्हारी सोच का।
वह आरामदेह किन्तु निरालोक खोह

बहुत खेल चुके हो तुम
यह संत्रासकारी घातक खेल
बहुत हो चुकी
सच को झूठ का लिबास पहनाकर
उसकी हत्या की साजिशें
कथा कहानियों को
सच मानने-मनवाने की
तुम्हारी मनमानी
इतिहास के साथ
तुम्हारी उच्छृंखल, अश्लील रतिक्रीड़ा
छोड़ भी दो अपना बालहठ
निकल भी आओ
इस मोहक आवर्त के चंगुल से
अपने लिए, सभी के लिए
क्योंकि अकेले नहीं पलटेगी
मिथकों के लुभावने भंवर में फंसी
तुम्हारे बासे, बोझिल सपनों की नाव
हम सबको ले डूबेगा
तुम्हारा यह अतर्क, आसक्त अतीत मोह

✠✠✠

सम्पर्क: 21848, Goodwood Terrace Ashburu, Virginia USA
20147, Tel: +703-729-1135

शशि पाधा की दो कविताएं

परदेसी मन

पता ठिकाना पूछता
जड़ें पुरानी ढूंढ़ता
घूम रहा परदेसी मन

काकी चाची मामा मौसा
एक गली का इक परिवार
बीच सजा वो चाट खोमचा
आस-पास बसता संसार

रोज हवा को सूंघता
खुश्बू वो ही ढूंढ़ता
तड़प रहा परदेसी मन।

जुड़ी सटी सब छत मुंडेरे
आधी रातें कथा कहानी
खाट दरी बस चादर तकिया
मिट्टी की सुराही-पानी

यादों में ही झूमता
छत वही फिर ढूंढ़ता
पछताया परदेसी मन।

दोपहरी की धूप गुनगुनी
आंगन तकिया लंबी तान
पके रसोई चाय पकोड़ी
सर्दी से तब बचते प्राण

उनींदा सा ऊंघता
हरी चटाई ढूंढ़ता
पगला सा परदेसी मन।

संग मनाए मेले ठेले
चौगानों में तीज त्यौहार
आपस में बांटे थे कितने
चूड़ी रिब्बन के उपहार

बिन झूले के झूलता
ठांव वही फिर ढूंढ़ता
बेचारा एकाकी मन।

✠✠✠

दीवानों की बस्ती

हंसी ठिठोली, चुहल चुटकुले
दीवानों की बस्ती में
दिन तो बीते उत्सव मेले
रातें मौजे परस्ती में।

उलझनें की ना खड़ी दीवारें
ना कोई खाई रिश्तों में
मोल भाव ना मुस्कानों का
ले लो जितना किश्तों में

खुले हाथ बिकती हैं खुशियां
भर लो झोली सस्ती में।

चैन की बंसी, गीत गुनगुने
माथे पर ना शिकन कहीं
अभिमानों के महल कहीं न
साहु-सेठ का विघ्न नहीं

सुख-दु:ख दोनों खेला करते
धूप-छांव की मस्ती में।

मन तो रहता खुली तिजोरी
ताला चाबी रोग नहीं
रूखी सूखी बने रसोई
हांडी छप्पन भोग नहीं

चार धाम खुद आन बसे हैं
सब की घर गृहस्थी में।

✠✠✠

सम्पर्क: 1493, Northern Neck Drive, Vienna, Virginia-22182, U.S.A

सत्य का गणित

अशोक व्यास

वो फिर एक बार यूँ ही लिखने बैठ गया

सुबह-सुबह

कप में पानी था

पानी पी पीकर सुबह की शुरुआत करने की आदत बहुत बरसों से थी

ना जाने कैसे, देह की व्यवस्था अपने आप कुछ संकेत दे देती है

बाद में पता चलता है, यह एक मान्य विधि है, अमुक निर्गमन के लिए भी

इससे सहायता मिलती है, इस पर शोध किया गया है

मनुष्य को अपने बारे में जो भीतर से पता चलता है, चाहे देह के स्तर पर,

मन के स्तर पर या आत्मिक स्तर पर, जब वह निष्कर्ष अन्य प्रामाणिक शोध या ध्यान पार्क

निष्कर्षों से मेल खाता है तो हमें अच्छा लगता है

पर बात सिर्फ अच्छा लगने की नहीं है

बात ये है कि सत्य तक चाहे जिस काल में, चाहे जिस सांस्कृतिक परिवेश या भू खंड

में रह रहा व्यक्ति पहुँचे, उनका जो निष्कर्ष है, वह एक ही सत्य होगा क्योंकि सत्य

दो नहीं है

सत्य दो नहीं है

सत्य तीन भी नहीं है

सत्य एक है

पर इस एकत्व में सत्य का अनंत होना भी सम्मिलित है

यानी एक तरफ हम कह रहे हैं

सत्य एक है, जो कि दो से भी छोटी ईकाई है

दूसरी तरफ हम कह रहे हैं सत्य अनंत है

विरोधाभास सा लगता है

है ना

इस विरोधाभास में ही जीवन की विविधता है

इस विरोधाभास में से भारतीय मनीषा ने एक संतुलित समझ विकसित

कर ली और हमने कहा 'अनेकता में एकता है हिंद की विशेषता'

दरअसल ये हिंद की विशेषता नहीं, ये सत्य की विशेषता है और इस कथन

के साथ यह उद्घोष सुनाई देता है, जिसे उपनिषद से भारत ने अपनाया 'सत्यमेव जयते'

अत: सत्य की हमेशा विजय होती है'

सत्य एक ही होता है।

✠✠✠

सम्पर्क: 81-52, 242 Street, Bellore NY-11426, USA

डॉ. अनिता कपूर की चार कविताएँ

खिड़की.....

मेरे घर की यह खिड़की.....
मुझे बहुत प्यारी लगती है.....
इस खिड़की की एक विशेषता
इसमें एक अदृश्य दूरबीन जड़ी है
जो संवेदनाओं से बनी है
यह करवा देती है भौगोलिक सैर
नैहर से संदेश लाये नाई सी लगती है

मेरे घर की यह खिड़की.....
मुझे मेरे मायका जैसी लगती है

आज भी गीली है इसकी लकड़ी.....
मैंने कल ही निर्भया को रोते देखा
इसी दूरबीन ने दो बच्चियों को
दरख्त से झूलते देखा
और भी बहुत कुछ होते देखा
अपने मन को शर्मसार भी होते देखा.....

यहाँ सुबह का अखबार तो नहीं मिलता
मेरे अलादीन का चिराग
बिन कहे ही मेरी पीड़ा समझता है
और मेरी दूरबीन के लेंस को हमेशा
चमका कर रखता है.....

सुनते थे तालिबानी मेरे घर से दूर हैं
पर आज मेरे घर की इस खिड़की ने
उन्हें अपने देश के राज्यों में घुसते देखा है
दूरबीन ने बलात्कारियों को भी
शहर-शहर में सूंघते देखा है
कल दूरबीन थोड़ी सी हंसी थी
शायद बोलने भी लगी थी
या न्याय करने वाले के कान खुलने लगे हैं
क्या सच में, हवा में प्रदूषण कण कम हुए हैं.....

दूरबीन के काँच को पहली बार
सुबह उजली सी लगी है.....

मेरे घर की खिड़की प्रवासी तो है
पर बंदनवार, तोरण, झालर देसी है
इसीलिए तो हमेशा
गीली ही रहती है इसकी लकड़ी
देश से आए बादलों का पर्दा जो है

तुम्हें छू लेती हूँ

तुम्हें छू लेती हूँ
खाली कागज पर शब्दों से
पेंटिंग में भर के रंग
ठहरे पानी में फेंक के कंकड़
बरसती बूंदों को तन पर छुआ कर
पेड़ से टपके पत्ते की शरारत से
तुम मेरे पास नहीं

फिर भी तुम्हें छू लेती हूँ
अहसासों के कुंड में नहा कर
छूने के लिए पास होना जरूरी तो नहीं

सम्पर्क: 975W Tennyson Roude Apt. #203, Hayward CA, 94544 USA Ph. 510-894-9570 E-mail: anitakapoor.us@gmail.com

औरत को सब कुछ

एक साथ क्यों नहीं मिलता
किश्तों में ही मिलता है
जैसे, घर है तो छत नहीं
छत है तो द्वार नहीं
द्वार मिले तो सांकल नदारद
दिन को जीती है तो
रातें गायब
आसमां को जैसे ही देखे
तो जमीन गायब
माँ- बाप की इकलौती हो तो
सबका प्यार पाये
भाई आए तो प्यार फिर
किश्तों में बचा-खुचा पाये
पति मिल जाए तो
मायका दूर हो जाए
दोनों एक साथ क्यों नहीं मिल सकते
खुद के बच्चे हों
तो सब शिकायत भूल जाये
बहू आए तो बेटे छिन जाएँ
पति जाये, तो घर भी छिन जाये
सब कुछ स्थायी क्यों नहीं रहता
जीवन मिल जाये तो
इतिहास के छोटे टुकड़ों में बांटकर
भी दोबारा औरत का ही जन्म पाने की ख्वाहिश
कि, इस जन्म में तो किश्तों में जिया है
चलो अगले जन्म में ही सही शायद
वो घर हो, जहां छत,
द्वार और सांकल सभी एक साथ हों।

अच्छी है हर बात

तुम हमेशा से रखते रहे हो आसमानों की चाह
पर आज देख लो
उड़ानें हमारी अच्छी हैं

तुम खुश रहते थे और हम जाहिर करते रहे
पर आज देख लो
मुसकानें हमारी अच्छी हैं

तुम हमेशा उसूलों की सिर्फ बातें करते रहे
पर आज देख लो
जिद हमारी भी अच्छी हैं

तुम्हारे हौसले, बहस सिर्फ वक्ती होते रहे
पर आज देख लो
दलीलें हमारी भी अच्छी हैं

तुम्हारे शब्दों की अकड़ हमेशा ऐंठी ही रही
पर आज देख लो
जज्बातों की स्याही हमारी अच्छी है

तुम होगे बेहतर सिर्फ बाहर बाहर से ही
पर आज देख लो
अंदर बाहर पकड़ हमारी अच्छी है

तुम सोचते हो खुद को कृष्ण हर युग में
पर आज देख लो
सुर और बांसुरी तो हमारी ही अच्छी है

देर से ही सही पर मान तो लिया तुमने
इसीलिए तो आज
हर बात तुम्हारी भी अच्छी है

✠✠✠

तीस जनवरी/बापू की याद

डॉ. मोक्षराज

न अस्त्र शस्त्र हाथ था, न भूरि वस्त्र गात था
न राज ठाठ पास था, न आस पास वास था।
न वेद शास्त्र भक्त था, न योग में विभक्त था
न जाति-धर्म गर्व था, न ऊँच नीच रक्त था

उसी विभूति नर का, बखान कर सकूँ अगर
अनंत ज्वार उर में है, शब्दकोश कम मगर

मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

समंदर लौट आया है, किनारे साथ लाया है
जहाँ सागर की लहरों ने, पखारे हों चरण अविरल
वहीं पर आज फिर देखो, जमाना लौट आया है।
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

जहाँ के अन्न धन व वस्त्र से, जग जगमगाता था
स्वदेशी वस्त्र वस्तु से, जहाँ शासन हिलाया था
वहीं चरखे की छाया में, सुदर्शन चक्र आया है
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

जो माँ की बात न समझे, जगत् की बात करता हो
जो हिन्दी को न अपने हिन्द की भाषा समझता हो
तेरे उत्सर्ग के वर्षों, परे अब गुनगुनाता है।
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

सम्पर्क: भारतीय राजदूतावास, वाशिंगटन डीसी, अमेरिका,
ई-मेल:mokshrajacharya@gmail.com

जहाँ चमड़ी के कारण से, सताये जा रहे वर्षों
जहाँ रंग रूप के मद में, दबाये जा रहे अरसों
वहाँ नफरत के तूफाँ में, नेह का गीत गाया है।
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

लगा निज वक्ष से सीना, अछूतों को उठाता जो
पतित पावन प्रभु श्रीराम का, कीर्तन सुनाता जो
'स्वच्छता' धर्म है सबका, यही जिसने बताया है
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

नहीं हिंसा करो कोई, यही उपदेश है जिनका
उदर भरने को न चीरो, उदर उन बेजुबानों का
अहिंसा धर्म मानव का, परम यह सत्य पाया है
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

न चंपारण का रण जाना, न दाण्डी दण्ड लेना है
न अफ्रीका का अँधियारा, न रेलों में धकेला है
न सत्याग्रह कोई करना, न भूखे पेट सोना है
महा मानव धरा के को, हमें मन में बसाना है।
मेरे बापू की यादों का, समंदर लौट आया है

परम वैभव के भव, भारत को, भुविभर में उठाना है
इसी संकल्प के बल से, मुकुट हिम का सजाना है
यही सन्देश लेकर कर में, अपना कर्म करता जो
पुनः नभहिन्द के उर में, सितारा टिमटिमाया है।
मेरे बापू की यादों का समंदर लौट आया है।

✠✠✠

आए थे हम

मधु माहेश्वरी

आए थे हम
इस विराट भूमि पर नए-नए
पहचान अपनी बनाने
राह कोई नई पाने

पहचान बनी
राहें मिली
घर बसे
घरों में ठाकुर सजे

चीड़ ओक मेपल ने
हँस स्वागत किया

पर याद बरगद-पीपल की बनी रही
बरखा आई हर मौसम में

पर कानों में
काले मेघा पानी दे
गाते मोरों की ध्वनि तनी रही

घास वैसी ही हरी थी
माटी वैसी ही सुनहरी
बस हर शाम

आकाश में बहती रंगों की नदी
थोड़ी कम गहरी थी
जल था
बलखाती नदियां थीं
पर किनारों पर घाट न थे
हर हर गंगे कहते
मंत्रों से गूंजते

स्नान न थे
नदियों के नाम थे
पर पुराणों से जुड़े
आख्यान नहीं थे

दूर तलक सघन वन थे
पर उनमें धूनी रमते
भभूत से सने
तपस्वियों के भाल नहीं थे

पहाड़ थे हरियाली से उमगते
बस उन पे
मंदिर के घंटों के निनाद नहीं थे

सुबह थी पूर्व दिशा में
ललछौंही सोने के कण बिखराती
पर उसमें टकराते
मस्जिदों से उठते हुए सुरीले अज़ान न थे

आकाश वही थे
निर्लिप्त योगी सा
पर मन पाखी
दो छोरों में उड़ता रहा

कुछ सपने आए झोली में
पर मन का अहम हिस्सा
ऐ वतन तुझसे जुड़ा रहा

और जीवन पर जब छाया अवसाद
तो मन अमृत के कण
तुझसे पीता रहा
तुझसे दूर होकर भी
यूं तेरे साथ जीता रहा ✠✠✠

सम्पर्क: 7653, Cloud Court, Springfield Virginia-22153, USA

रोमेश जोशी के छह छंद

1. सेंडिल पर सीट

(न्यूयार्क में शिव, गणेश और गायत्री छपे सेंडिलों की बिक्री)

अमरीका को पूजते, करते हो गुणगान।
जगह-जगह लेकिन वहीं पाते हो अपमान।
पाते हो अपमान, सोच कर देखो पल भर।
शिव, गणेश को जगह मिली उनके सेंडिल पर।
कह जोशी कविराय अगर सहते जाओगे।
तो बाहर क्या, घर में भी जूते खाओगे।

2. रूम से बाहर आओ

(सन्दर्भ: एक समाचार: अमरीका में कम्प्यूटर कर्मियों की सामाजिकता नितांत कम हो गई है)

मतलब इंटरनेट का है अन्दर का जाल।
अन्दर-बाहर बाँध कर करे हाल-बेहाल।
करे हाल-बेहाल, जगत से टूटे नाता।
मोनीटर के ऊपर ही सब कुछ हो जाता।
कह जोशी कविराय रूम से बाहर आओ।
दर्शन-मेला करो, मिलो जी भर बतियाओ।

3. जिस दिन काम निकल जाएगा

(अमरीका में 35 प्रतिशत कम्प्यूटर कर्मी भारतीय)

कम्प्यूटर से हो रहे सारे कारोबार।
कम्प्यूटर ही ढो रहे सारे जग का भार।
सारे जग का भार, इन्हीं का भार धरें हम।
अमरीका के डाट काम में खून भरें हम।
कह जोशी कवि जिस दिन काम निकल जायेगा।
अमरीका का रुख भी उस दिन बदल जायेगा।

सम्पर्क: 10046 Parkland Drive Twinsburg, OH. 44087, U.S.A.

4. नर-मादा?

(अमरीका में परिवार टूट रहे हैं)

मुक्त यौन आचरण की अमरीका में छूट।
इस छोटी सी छूट ने लिया सभी कुछ लूट।
लिया सभी कुछ लूट, देह में गोते खाते।
हाथ नहीं कुछ आता, थक कर के पछताते।
कह जोशी कविराय अर्थ है सीधा-सदा।
नर-नारी कुछ और, नहीं केवल नर-मादा।

5. भागम भाग

(अमरीका में भागमभाग की ज़िंदगी और जंक फूड का प्रचलन)

खाने की हो बात तो सब हैं एक समान।
'जंक फूड' खाते सभी निर्धन औ' धनवान।
निर्धन औ' धनवान, तभी हैं सबसे आगे।
भगते-भगते खाते, खाते-खाते भागे।
कह जोशी कविराय जन्म है फिर-फिर पाना।
एक जनम में काम, दूसरे में सुस्ताना।

7. इट इज डिफरेंट

(अमरीका के अलग नाप-तौल, अलग दिखाने की कुंठा)

सारी दुनिया से अलग अमरीका का हाल।
वे कहते सॉकर उसे, हम जिसको फुटबाल।
हम जिसको फुटबाल, सड़क पर चलते दाएँ।
नीचे कर दें स्विच तो बल्ब बंद हो जाएँ।
कह जोशी कवि अलग दीखने की बीमारी।
ये फुट, गैलन; मीटर, लीटर दुनिया सारी।

✠✠✠

सौंदर्य आधार

हरी बाबू बिंदल

चित्रकार के चित्र ये, मूर्तिकार की मूर्ति,
इनको दर्शाये बिना, कब होती है पूर्ति।
कब होती है पूर्ति, झलक ऐसी दिखलाते,
छेनी औ तूलिका, खुद जीवित हो जाते।
ये वीनस के रूप, पिकासो बसी आत्मा,
अनुपम और अनूप, संगमरमर में प्रतिमा।

ऐलोरा और अजंता, खजुराहो की शान,
पत्थर में भी डाल दी, कलाकार ने जान।
कलाकार ने जान, सजाई छत प्राचीरें,
उभराये श्रृंगार, खींच दी ज्यों तस्वीरें।
सागर की लहरें, दर्शित करते हो जैसे,
पत्थर में स्तन भी, है उभरा दिये वैसे।

✠✠✠

सम्पर्क: 7605, Quicksilver Ct. Bowie Maryland, USA

रजनी भार्गव की दो कविताएँ

अनकहे बोल

मेरे मन में अनमने बोल हैं
मन के क्षितिज पर अनकहे बोल हैं
कहती हैं कहानियाँ
यह मेरे मन के चोर हैं
अनबुझी सांस के पोर हैं
जीवन के प्रवाह के छोर हैं
फिर
सासें क्यों नहीं आती
जब गुजरती है मेरी छाया
तुम्हारे कदमों से लिपट के
ढलती है मेरी काया
तुम्हारे नयनों में सिमट के
सोचती है मेरी भाषा
तुम्हारे शब्दों से निखर के।

समय के अवगुंठन
सिन्दूरी क्षितिज की प्रतीक्षा में

जैसे
लहरों के साथ रेतीले कण
हर बार लौट आते हैं
सूरज की परिक्रमा कर
मेरे विराम तुम पर पूर्ण हो जाते हैं

आकाश के विस्तार में तुम्हारे अर्ध सत्य
मेरे सत्य के बोध हो जाते हैं
तुम्हारे जीवन के केन्द्र बिन्दु
मेरे जीवन की परिधि बन जाते हैं

जीवन की अनबुझी सांसों के मौन
मेरे बोल बन जाते हैं ।

सम्पर्क: 16, Dickenson cto Plainsboro NY, USA, e-mail: anoop-bhargva@yahoo.com

छोटे दिन

मौसम के आने-जाने के बीच में
हरी पत्तियाँ जब पीली हो जाती हैं
और पतझड़ छोटे दिन ओढ़ लेता है
तब जेब से गुम बहुत सी चीजें
घर के अन्दर मिलने लगती हैं

जैसे
बार के बाहर रखे खाली कॉफी के कप
कुर्सी पर लटकी नीली जीन्ज पर की धूप
सुस्ताते बाबा की टोपी पर गुड़हल के फूल

और
कोने की मेज पर खिलखिलाती हंसी
एक रूमानी अहसास को भेदती दो अंबियों-सी आंखें
जिसमें रहते हैं
पार्क में हरी बेंत के सिंहासन
राजा, रानी की शतरंज की बिसात
फव्वारे में उड़ते ठंडे पानी के परिंदे
संगीत की धुन पर थिरकते उनके पाँव
कैमरे के लैंस पर पेंट की गई गिटार और सूफी धुन
बजती हुई
लम्हों के शीशमहल में बेतकल्लुफ मौसम सी
मेज पर बिछे मेजपोश पर करीने से रखी रहती हैं

सर्दी के दिन छोटे और
रातें बहुत लम्बी होती हैं।

✠✠✠

अनूप भार्गव की चार कविताएं

1.

मैं और तुम
वृत्त की परिधि के
अलग-अलग कोनों में
बैठे दो बिन्दु हैं,
मैंने तो
अपने हिस्से का
अर्धव्यास पूरा कर लिया,
क्या तुम
मुझसे मिलने के लिये
केन्द्र पर आओगी?

2.

मैंने कई बार
कोशिश की है
तुम से दूर जाने की,
लेकिन मीलों चलने के बाद
जब मुड़ कर देखता हूँ
तो तुम्हें
उतना ही
करीब पाता हूँ
तुम्हारे इर्द-गिर्द
वृत्त की परिधि
बन कर
रह गया हूँ मैं।

3.

मैं और तुम
एक ही दिशा में
न जाने कब से चलती हुई
दो समान्तर रेखाएं हैं ।
आओ,
क्यों न इन
रेखाओं पर
प्यार का एक लम्ब डाल दें?
मैं इसी लम्ब के
घुटने पकड़-पकड़
शायद तुम तक
पहुँच सकूँ!

4.

अंको के गणित
और तर्क की
ज्यामिती के दायरे
में कैद ज़िन्दगी
एक कठिन समीकरण
बन गई थी।
तुम चुपके से आईं
और मेरे कान में
प्यार से
बस इतना ही कहा
'सुनो' .....
मैं मुस्कुरा दिया
और अचानक,
ज़िन्दगी के
सभी कठिन प्रश्न
बड़े आसान
से लगने लगे।

✠✠✠

सम्पर्क: 16, Dickenson cto Plainsboro NY, USA, e-mail: anoop-bhargva@yahoo.com

पारले जी

अभिनव शुक्ल

जब मैं छोटा था,
तो घर पर पारले-जी का पैकेट आता था,
उसमें बारह बिस्कुट होते थे,
माँ, मुझे और मेरे छोटे भाई को,
चार चार बिस्कुट देती थीं,
फिर जब हम जिद करते तो
बाकी के दो दो भी मिल जाते थे,
उनको चाय में डुबो-डुबो कर खाने में
स्वर्ग का आनंद आता था,
अब में बड़ा हो गया हूँ,
मैं अपने माता पिता के साथ नहीं रहता हूँ,
अब मेरा भाई और मैं अलग-अलग रहते हैं,
मेरी पत्नी को पारले जी पसंद नही है,
अब मैं सिएटल के इंडिया स्टोर से सौ बिस्कुट वाला
पारले जी का पैकेट लाता हूँ,
पर वो स्वाद नहीं पाता हूँ,
मैं उनमें स्वाद ढूँढ़ने की कोशिश करता हूँ,
पर हार जाता हूँ,
शायद स्वर्ग बिस्कुट में नहीं,
किसी और चीज में ही होता था।

जब मैं छोटा था,
तब मेरे माता पिता,
दो कमरों के छोटे से घर में रहते थे,
आपस में बातें करते थे,
'देखो, तिवारीजी का लड़का,
इंजीनियर बन कर अमेरिका चला गया है,
राजाजीपुरम मैं क्या बढ़िया घर बनवा रहे हैं,
हमारा शेर क्या कुछ कमाल दिखा पायेगा,
क्या अमेरिका जा पायेगा,
हमारे लिए स्वर्ग ला पायेगा।'

आज वो सात कमरों के अपने घर में अकेले हैं,
फोन के उस पार से आने वाली
आवाजों में ही उनके मेले हैं,
बच्चे पहले रोज फोन करते थे,
फिर दो तीन दिन में एक बार करने लगे,
अब सप्ताह में एक बार करते हैं,
कल महीने में एक बार करेंगे,
माँ जब पारले जी का पैकेट देखती होगी,
तो सोचती होगी,
शायद स्वर्ग किसी और चीज में ही होता था।

✠✠✠

सम्पर्क: kaviabhinav.com

मैं कौन हूँ

सुनीता चांदला
अंग्रेजी से अनुवाद: 'कमलिका' चांदला बदलानी

मैं, 'मैं' से पूछती रही
कौन हूँ किसका अक्स हूँ
कहीं पाक कहीं पापी
बेखबर एक शख्स हूँ

रूह की ओढ़नी
बदन में ब्यान हूँ
सासों से सिकती
भावों की जुबान हूँ

कभी इत्र सी मित्र
राधा सी सखी
सादगी में एक विश्व
प्रकृति का हूँ सरल चित्र

खुशी की कहीं आस
मान हूँ, तो कभी परिहास
प्रेम की प्यास
संवेदनाओं का एहसास

लज्जा का लिबास
बखुदी में निवास
'मैं' को बूझती
प्रभु का विश्वास हूँ

आँखों की रौशनी से छलकती
सर्द की दर्द में पिघलती
दुख-सुख के बोध में
अश्रु बन बहती हूँ

भावों की कलम से
कविता में बसती हूँ

दिल की धड़कन
जीने की चाह
छोटी न बड़ी
बस यूँ ही एक हस्ती हूँ

✠✠✠

दिनांक 15 मार्च 2019 को परिषद में आयोजित कार्यशाला के दौरान आमंत्रित अतिथि वक्ता प्रो. रवि शर्मा द्वारा महानिदेशक महोदय, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद को पुस्तक भेंट की गई।

सम्पर्क: Kamlika Chandla, 429 Power Drive Eldorado Hills, California 95762

अमेरिका हड्डियों में जम जाता है

अंजना संधीर

वे ऊँचे-ऊँचे खूबसूरत हाई-वे
जिन पर चलती हैं कारें तेज रफ़्तार से कतारबद्ध
चलती कार में चाय पीते-पीते
टेलीफोन करते, टू डोर कारों में रोमांस करते-करते
अमेरिका धीरे-धीरे सांसों में उभरने लगता है।

मूंगफली और पिस्ते का एक भाव
पेट्रोल और शराब पानी के भाव
इतना सस्ता लगता है सब्जियों से ज्यादा मांस
कि ईमान डोलने लगता है
महंगी घास खाने से अच्छा है सस्ता मांस खाना
और धीरे-धीरे अमेरिका स्वाद में बसने लगता है।

गर्म पानी के शावर, टेलीविजन की चैनलें
सेक्स के मुक्त दृश्य
किशोरावस्था से वीकेंड में गायब रहने की स्वतंत्रता
डिस्को की मस्ती अपनी मनमानी का जीवन
कहीं भी, कभी भी, किसी के भी साथ
उठने-बैठने की आजादी
धीरे-धीरे हड्डियों में उतरने लगता है अमेरिका।

अमेरिका जब सांसों में बसने लगा
तो अच्छा लगा क्योंकि सांसों को पंखों की उड़ान का
अन्दाजा हुआ
जब स्वाद में बसने लगा अमेरिका
तो सोचा खाओ इतना सस्ता कहाँ मिलेगा?
लेकिन हड्डियों में बसने लगा अमेरिका तो परेशान हूँ

बच्चे हाथ से निकल गये... वतन छूट गया
संस्कृति का मिश्रण हो गया।
जवानी बुढ़ा गई, सुविधायें हड्डियों में समा गयीं
अमेरिका सुविधायें देकर हड्डियों में समा जाता है।

व्यक्ति वतन को भूल जाता है
मजदूरी करता रहता है, असुरक्षित जीता रहता है
और सोचता रहता है
मैं अपने वतन जाना चाहता हूँ
मगर इन सुखों की गुलामी मेरी हड्डियों में बस गयी है

इसीलिये कहता हूँ- तुम नये हो
अमेरिका जब सांसों में बसने लगे,
तुम उड़ने लगो... तो सात समंदर पार
अपनों के चेहरे याद रखना
जब स्वाद में बसने लगे अमेरिका

तो अपने घर के खाने और माँ की रसोई याद करना
सुविधाओं में असुविधायें याद रखना
यहीं से जाग जाना... संस्कृति की मशाल जगाये रखना
अमेरिका को हड्डियों में मत बसने देना
अमेरिका सुविधायें देकर हड्डियों में जम जाता है।

✠✠✠

सम्पर्क: 83-64, Talbott Street, 24 Kew Garden, New York, NY-11415

सर्दी की सुबह और वसंत

सुमन कुमार घई

घर की फेंस पर बैठी
मुटियाई काली गिलहरी
जमा हुआ आँगन, घर का पिछवाड़ा
और नुक्कड़ के पीछे छिपी
धैर्य खोती तेज हवा!
उड़ायेगी बवंडर
झर जाएँगी
पेड़ों से बर्फ की पत्तियाँ
छा जाएगा...
पतझड़ फिर से एक बार!

मैं यहाँ का नहीं हूँ,
अजनबी, अनाम
तभी तो जागता हूँ,
सर्दियों की रातों में
खोजता अपना पता
कहाँ से हूँ, क्यों आया यहाँ

फरवरी का माह है
और मुझे वसन्त का इंतजार है!

मेरे सामने तो श्वेत चादर ओढ़े
समय खड़ा है,
श्वेत और केवल श्वेत
शून्य से नीचे तापमान
मेरी हड्डियों में समा चुका है
और सभी कहते हैं – प्रतीक्षा करो
केवल प्रतीक्षा।

मैं यहाँ प्रतीक्षाकुल खुले में खड़ा
काक भगौड़े सा
हवा में लहराता –
और यहाँ कोई भी नहीं
मैं भी नहीं...
और यह सर्दी की सुबह अन्तहीन क्यों है?

वर्ष 2019 में प्रयागराज में आयोजित कुंभ मेले के दौरान प्रधानमंत्री के साथ समूह फोटो

सम्पर्क: 3421 Fenwick Crescent, Mississauga ON L5L 5N7 Canada, E-mail: sumankghai@gmail.com

राकेश खंडेलवाल की दो कविताएं

याद-पुरानी यादों की गठरी से

फूलों की पांखुर से फिसल रही शबनम सी
साज की मुंडेरों पर थिरक रही सरगम सी

संध्या के आंचल में टांक रहे गुलमोहर
निशिगंधी महकों में लिपट खड़े मधुवन सी

याद कोई सपना बन, आंखों में तैर गई
उस पल पर जीवन की एक सांस ठहर गई

गंगा की धारा में मांझी के गीतों सी
दादी से सुनी हुई पुरखों की रीतों सी
चम्पा के सिरहाने, जूही के गजरों सी
घूंघट से झांक रही दुल्हन की नजरों सी

याद कोई सपना बन आंखों में तैर गई
उस पल पर जीवन की एक सांस ठहर गई

लहरों की दस्तक सी, सरिता के कूलों पर
बरखा की बूंदों सी, सावन के झूलों पर
चांदनी में भीग रहे उपवन के प्रांगण में
पुरबा की सिहरन सी मुस्कराते फूलों पर

याद कोई सपना बन, नयनों में तैर गई
उस पल पर जीवन की एक सांस ठहर गई

सम्पर्क: 14205, Punch Street, Silver Spring, Maryland-20906, U.S.A., E-mail: rakesh518@yahoo.com

अपने को कब तक छलेगा प्रवासी

आज फिर से खो गया प्रतिबिंब की परछाई में मन
और धुंधली हो गई नभ में बिखरती चंद्रिका भी
शून्य तक जाती हुई पगडंडियों पर पांव धरते
और अपने आप को कब तक छलेगा यूं प्रवासी

हो चुकी हैं अपरिचित थी जड़ें जिन क्यारियों में
फूल बनते ही हवाओं ने सभी पाटल उड़ाये
गंध की आवारगी जिन वीथियों में घूमती थी
द्वार उनके जानता है दूर तक थे याद आये

खोलने में आज है असमर्थ पन्ने स्पन्दनों के
उड़ चुकी है रंगतें अब हाथ से संवरी हिना की

जानता इस पंथ में मुड़ देखना पीछे मना है
राह में डाले तिलिस्मों ने निरंतर जाल अपने
मूर्तियों में ढल गये कितने पथिक अब तक डगर में
लग रही हैं गिनतियां भी गिनतियां कर आज थकने

लौट कर आता नहीं इस सिंधु में नाविक पलट कर
थामकर झंझायें ले जाती रहीं उसको सदा ही

खटखटाते द्वार क्षितिजों के तुझे हासिल हुआ क्या
कांच के टुकड़े मरूस्थल के लिये भ्रम दूर तक हैं
खिलखिलाहट की सभी शाखाओं पर पतझर रुके हैं
बोध देने को दिशाओं का तुझे बस सूर अब हैं

उग रहीं कंटकों सी प्यास रह-रहकर अधर पर
सोख बैठी शुष्कियां इस बार सब नमियां हवा की

✠✠✠

अनिल पुरोहित की पांच कविताएँ

आदि मानव

धरोहर है एक – परंपरा
कैसी छोड़ दूं इसे ?
बर्बरता, हिंस्रता, पशुता
और इसमें थोड़ी सी – मानवता।
यही सौंप जाना,
आने वाले – कल को।

आदि मानव मैं–
आदिम – सदियों से
सदियों तक।
अवसर ही ना मिला
सभ्य होने का।
चढ़ा मुखौटे संवारता रहा
बस अपने आपको।

आदिमता जो दिख रही
मुझे अतीत में
वही देखेगा भविष्य
मुझमें।

कहां मांज पाया – परंपरा अपनी
बहती गयी – धारा वक्त की
धोता रहा मुखौटे,
बैठ किनारे–
सदियों से – सदियों तक।

उसके लिए

वो जानता – कहाँ सजाना मुझे
शब्द एक मैं उसके लिये –
नित नए भावों में सजा मुझे
कविता अपनी निखार रहा।

तलाश कर रहा वह – एक नयी धुन
स्वर एक मैं, उसके लिये –
साज पर अपने तरंगों में सजा
कविता में प्राण नए फूंक रहा।

देखा है मैंने उसे – खींचते आड़ी–तिरछी रेखाएं
रंग एक मैं, उसके लिए –
तूली पर अपनी सजा
सपनों को आकार इन्द्रधनुषी दे रहा।

लहरों सा बार–बार भेजता मुझे
कभी सीपी देकर, तो कभी मोती
सब कुछ किनारे धर बेकल सा मैं
बार–बार लौट – समा जाता उसमें।

मुसाफिर

परियों के देश से
जब भी आता वह–
पिस्ते, बादाम, खजूर के साथ
कथा परियों की सुनाता जाता।

सम्पर्क: pakere@gmail.com

आजकल बड़ा उदास रहता वह
पूछो तो –
मुट्ठी भर रेत उड़ाता और
रूह तक मेरी
रुला जाता वह।

कोरा कागज

कोरा कागज लिये फिरता
आंकता जब भी तस्वीर कोई।
साँसे भरता उनमें
और ओझल हो जाती तस्वीर–
अगले पल।
बस मुस्कुरा कर देखता
हवा में तैरती–
धुआँ बन लहराती
गुम होती तस्वीर।

अब भरने लगा कागज कोरे
ख्यालों में उभरते बोल
गूँजते रहते काली गुफा में
गुम हो जाते सूरज के उगते
और रह जाता कोरा कागज
कोरा का कोरा।

सुना है आजकल फिर रहा
वीरान रेगिस्तान में – बन एक मरीचिका।
आड़ी तिरछी – खींचता रहता लकीरें
कभी दूब तो कभी बादल
कभी सितारे तो कभी ताल तलैया।
आँकता रहता और
भरता जाता साँसे उनमें।
यायावरी में बिखेरता जाता
बुने हुए सपने।
पर अब भी साथ उसके
अनेकों ख्याल और कोरा कागज।

टिड्डियों का दल

एक दीवार–घनी अंधियारी

सरकती आ रही – खनखनाती।

छिप गए, कुछ –

भयभीत, लाचार बन।

कुछ – तैयारी में

विनाश का विनाश करने को तत्पर।

कुछ– शांत, नीरव, अनभिज्ञ–

निर्लिप्त नशीले स्वप्न में।

दूर से, दिख रहा

बढ़ता घना अंधियारा –

अपनी ही धुन में, गहराता हुआ।

लपलपाती जीभें,

निगलने को।

अंगारे उगलती, तीसरी आँख–

भस्म करने।

सोच सबकी–एक,

फिर रौंदे जाएंगे

पेड़, पहाड़, नदी, नाले,

बस जाएगी वीरानी ।

अजीब सी गूँज,

कानों को सबके बींधती।

बस दुबक देख रहे, सहमते से –

जाने कब गुजरे यह बदहवासी।

✠✠✠

कैसा मानवाधिकार

श्याम त्रिपाठी

सब के अपने महल हैं आलीशान,

लेकिन, इनका जीवन जैसे शमशान।

यदि इनका इतिहास पढ़ो

हुए हैं, इन पर कितने अत्याचार।

इनकी माँ बहनों की अस्मत लूटी

और पादरियों ने किए हैं, दुराचार।।

इनकी भाषा, धर्म और संस्कृति का किया विनाश,

इन फिरंगी लोगों ने किया है, एक सभ्यता का सर्वनाश।

आज बेचारे अपने ही देश में हैं, अनाथ,,

देश की कोई पार्टी नहीं देती इनका साथ।।

सभी प्रवासी हरे-भरे और हैं, खुशहाल,

केवल आदि निवासियों के हैं बुरे हाल।

जिस देश में हम रहते हैं

उसे कैनेडा कहते हैं।

यूरुप के लोगों ने जबसे किया प्रवेश

इनके घर में घुसकर, इन्हें निकाला,

सब कुछ इनका नोच-खोंचकर

इनका बना दिया यह भेष।।

बदल दिया इनका इतिहास और जोश

और इतना नशा पिलाकर

कर दिया इन्हें बेहोश

किन्तु सभी हैं इनकी हालत पर खाम (खामोश)

आज यहाँ के शासक

हमें सिखाते हैं मानव अधिकार।

पहले अपनी करतूतों को देखें,

हमें तुम्हारी मानवता पर धिक्कार।।

बड़े-बड़े न्यायालय जग में

लेकिन सुनता न इनकी फरियाद

शायद फिर कोई गांधी या लूथर आये धरती पर

जो करवा दे इन्हें पुनः आबाद।

✠✠✠

सम्पर्कः प्रमुख संपादक, हिंदी चेतना, टोरेंटो, कनाडा

सरन घई की दो कविताएं

रुको पथिक, विश्राम तनिक लो

रुको पथिक, विश्राम तनिक लो,
जीवन पथ की राह कठिन है,
पथानुकूल समय भी कम है,
बाधाओं से अटा है जीवन,
ठहरो, पहले राह समझ लो,
रुको पथिक, विश्राम तनिक लो।

भूल गया पिछला जो पल था,
छूट गया जो राह सहल था,
आगे दुर्गम अंधियारा है,
हर जोखिम की थाह समझ लो,
रुको पथिक, विश्राम तनिक लो।

आगे बढ़ना ही जीवन है,
रुक जाना ही अंतिम पल है,
बिना रुके आगे बढ़ जाना,
जोखिम का है काम समझ लो,
रुको पथिक, विश्राम तनिक लो।

रोकें जब रस्ता बाधाएं,
व्याकुल कर दें जब विपदाएं,
पग प्रति पग गतिमान रहे पथ,
पथिक धर्म का मर्म समझ लो,
रुको पथिक, विश्राम तनिक लो।

सम्पर्क: संस्थापक-अध्यक्ष, विश्व हिंदी संस्थान, संपादक-प्रयास, कनाडा, ई-मेल: ghaisaran@gmail.com

तुम्हें पहुंचना है मंजिल पर,
यही धर्म है, यही सत्य है,
इसी प्रेरणा से अनुप्रेरित,
जीवन गति विस्तार समझ लो,
रुको पथिक, विश्राम तनिक लो।

विदेश में होली

न टेसू के फूलों का रंग, ना खुशबू, न महक,
ना पिचकारी की वो दूर तक की तीखी लपक,
ना सुनाई यहाँ देती वो सालियों की चहक,
ना पायल की छन-छन न चूड़ियों की खनक,

ना होली के गीत, न डफ की थाप, ना भीगी चोली,
ना सुरमई नैन, ना बाबुल का अंगना, ना मस्तों की टोली,
ना रंगों से बचने की भाग-दौड़, ना पकड़ो वो भागा जैसा शोर,
यहाँ की होली तो ज्यों कहीं दूर जंगल में नाचा हो मोर,

न रेडियो पर बजते होली गीत, न होलिका-प्रह्लाद की बातें,
ना मोहल्ले की सालियों को रंग देने की चोरी छुपे घातें,
ना ससुराल की होली, ना नाच गाने का रिवाज,
वहाँ कुछ और था समाज, यहाँ कुछ और है समाज,

ना पत्नी लिफ्ट देती है न मोहल्ले वाली,
ना पड़ोसन हाथ लगाने दे और न साली,
ऐसी होली का क्या लाभ, इसे बंद करो,
फेसबुक की तरह ओपन होली का प्रबंध करो।

✠✠✠

अमेरिका में रिटायरमेंट

उमेश अग्निहोत्री

अमेरिका में रिटायर होने की कोई निश्चित उम्र नहीं है। आदमी जब तक चाहे काम करता रह सकता है। अगर 65 वर्ष की आयु में लोग रिटायर होते हैं तो इसलिए कि तब सोशल सिक्योरिटी और मेडिकल एड मिल जाती है। अमेरिकी संविधान के तहत आप आयु के आधार पर भी किसी से भेदभाव नहीं कर सकते। इस बात को ध्यान में रखकर पढ़ें यह लेख।

जब से मैं रिटायरमेंट की बात करने लगा हूं, पता नहीं वह कहां-कहां से कौन-कौन से स्टडी, किस-किस की किताब के हिस्से पढ़ के सुनाने लगी हैं, बताने लगी हैं कि जिसने काम करना छोड़ा, वह चाहे जिस उम्र का हो, वक्त से पहले ही सठिया गया... अब तो सुनने में आ रहा है कि जब तक बच्चे रिटायर होंगे रिटायरमेंट एज 70 हो जाएगी...।

उस दिन मैंने काम से घर आकर कहा कि सोच रहा हूं... ऐलान कर दूं कि मैं रिटायरमेंट ले रहा हूं...। सब चौंक गए...। बोले-क्या मतलब? प्रेस को बुलाकर रिटायरमेंट एनाउंस तो सैनेटर-प्रोफेशनल खिलाड़ी किया करते हैं... जिन्होंने कुछ किया होता है। काफी कमा भी लिया होता है...। बैंक में बीस-तीस मिलियन होते हैं, पर आप? लोगों को भ्रम हो जाएगा कि बैंक में तीन-चार लाख तो होंगे कि रिटायरमेंट ले ली...? जेब में कुछ है नहीं और अदा सैनेटरों वाली... श्रीमती जी बोली और अगर किसी रिपोर्टर ने पूछ ही लिया कि रिटायरमेंट क्यों ले रहे हो, भविष्य में क्या करने का इरादा है... तो क्या कहोगे...? मैंने कहा, ''आई वांट टू डिवोट द रेस्ट ऑफ माई लाइफ टू माई फेमिली।''

वह तो घबरा ही गई...। उनका तो मानना है कि अब तक जो घर ठीक-ठीक चलता रहा उसमें मेरा सबसे बड़ा कांट्रीब्यूशन यह रहा कि मैंने घर में कभी ज्यादा दखल नहीं दिया...। बोलीं, ''आपने रिटायरमेंट ली तो मेरा काम बढ़ जाएगा...।''

मैं अमेरिका में इस बात से बहुत दुखी हूं। सारी उम्र काम करते रहो। आदमी कभी काम से रिटायर ही नहीं हो सकता... कहते हैं पैंसठ के बाद पेंशन ले सकते हैं... लेकिन कितनी? अगर उसके बाद इन्कम बढ़ाने या समय बिताने के लिए ही, या किसी और ही वजह से कोई दूसरा काम करना ही है तो बेहतर है, जो कर रहे हो वही करते रहो।

जब से मुझे यह महसूस हुआ कि अपनी ज़िंदगी में रिटायरमेंट नहीं है, ज़िंदगी बेमानी हो गई। जैसे फ्यूचर में कुछ है ही नहीं.. हम न वकील, न डॉक्टर, न बिजनेसमैन। मैं अपनी पत्नी को समझाता हूं। हम तो नौकरीपेशा आदमी हैं... जिनकी ज़िंदगी में

सम्पर्क: 7881, Winter Cress Lane, Springfield Virginia-22152

अगर कुछ एट्रेक्टिव था तो वह थी रिटायर्ड लाइफ। वह भी न रही तो क्या रहा।

वह कहती हैं-एक आपके बाउ जी थे, जब तक काम करते रहे, यह ही इंतजार करते रहे कि कब 58 के हों और कब रिटायरमेंट ले लें... और अब एक आप? मैं कहता हूं—''देखो बेगम, हम सुप्रीम कोर्ट के जज नहीं हैं कि फॉर लाइफ एपॉइंटमेंट हो'' —वह कहती हैं-''आप जो कहो, मैं तो आपको सुप्रीम कोर्ट का जज ही मानती हूं... न्यायमूर्ति...।''

मैं मिसालें देता हूं-''मिस्टर भास्कर कह रहे थे-आई एम इंज्वाइंग माई रिटायरमेंट...। कोई बंधन नहीं...। मस्ती ही मस्ती है...''

वह बताती हैं-''गदाधर जी जब से रिटायर हुए हैं, उनकी पत्नी कहती है कि वह तो सठिया गए हैं...।''

मैं कहता हूं... ''हमारे ग्रंथों में कितनी अच्छी व्यवस्था थी... ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ... संन्यास...। मनुष्य को हर आश्रम का आनंद लेना चाहिए... यहां अमेरिका में माना उम्र लंबी हो रही है-लेकिन आश्रम हैं सिर्फ दो, ब्रह्मचर्य और गृहस्थ...। ब्रह्मचर्य भी अब नाम का रह गया। एक ही आश्रम बचा है गृहस्थ...। संन्यास न सही, आदमी कम-से-कम वानप्रस्थ तो इंजॉय करे, पुराणों में वानप्रस्थ का चित्रण चाहे जितना भी हताश करने वाला हो, पर यहां वह स्वर्ग है।''

वह कहती हैं-''वानप्रस्थी अंदाज में ही सही, पर काम करते रहो, चंद्रमोहन जी 70 पार कर गए हैं, आज भी कुछ इसी अंदाज में काम करते हैं कि वन में जा रहे हैं... और आपसे ज्यादा तंदुरुस्त हैं...।''

मैं कहता हूं-''कितनी अच्छी परंपराएं थीं। बाप ने कनपटी पर सफेद बाल देखा तो राज-पाट छोड़ने की तैयारी की...।''

वह कहती हैं-''मैंने हार्वड मेडिकल स्कूल की एक स्टडी पढ़ी है जिसमें लिखा है कि बालों के सफेद होने का उम्र से इतना ताल्लुक नहीं है जितना कि कुछ दवाइयों से...। हिरेडिटरी भी हो सकता है... लेकिन कनपटी पर इस तरह की थोड़ी-सी सफेदी हो... तो कुछ लोगों की परसनैलिटी निखर आती है... आदमी इंटलैक्चुअल लगता है...।''

मैं कहता हूं-''भारत से चला था तो सोचा था कि खूब कमाऊंगा और 58 से भी पहले रिटायर हो जाऊंगा।''

वह कहती हैं-''वह जमाना गुजर गया जब 50-60 में ओल्ड एज मानी जाती थी... अब तो यह उम्र ओल्ड एज की जवानी कही जाती है... जब तक हाथ-पांव चलते हैं काम करते रहो वर्ना तेज भागती दुनिया में पीछे छूट जाओगे... अकेलापन खा जाएगा... एलैक्जेंडर टोलसतिख की किताब में लिखा है...।''

जब से मैं रिटायरमेंट की बात करने लगा हूं, पता नहीं वह कहां-कहां से कौन-कौन से स्टडी, किस-किस की किताब के हिस्से पढ़ के सुनाने लगी हैं, बताने लगी हैं कि जिसने काम करना छोड़ा, वह चाहे जिस उम्र का हो, वक्त से पहले ही सठिया गया... अब तो सुनने में आ रहा है कि जब तक बच्चे रिटायर होंगे रिटायरमेंट एज 70 हो जाएगी...।

उन्हें क्या किसी को मेरी बात समझ नहीं आ रही...। मैं चाहता रहा हूं उम्र मेरी चाहे जितनी हो उसमें रिटायर्ड लाइफ का पीरियड लंबा होना चाहिए... जिसमें आदमी जो चाहता है कर सके... अपने मन की... और यहां मेरी ज़िंदग़ी के उन्हीं दिनों पर हमला हो रहा है... और आदमी इसी में खुश है... कि अमेरिका में आदमी 70-80 तक काम करता रह सकता है...।

पर मैं जो कह लूं उनका बिंदु वहीं लेटता है-काम करते रहो... काम करते आदमी अच्छा लगता है! वर्क इज़ वरशिप...।

एक दिन मैं बहुत खामोश, उदास-सा बैठा सोच रहा था-सारी उम्र बीत गई-यही सोचते-सोचते कि यह करूंगा, वह करूंगा, फिर सोचा अभी नहीं, अभी बहुत-सी जिम्मेदारियां हैं... मां-बाप की, बच्चों की... सारे मनसूबे पोस्टपोन करता रहा... सोचता रहा कि रिटायर होने के बाद कुछ कहानियां, नाटक लिखूंगा...

वह पूछने लगीं-क्या सोच रहे हो? मैंने कहा, 'यही अपने दोस्त प्रेमस्वरूप के पिता जी का ख्याल आ गया, कहा करते थे 'मेरी ज़िंदगी बहुत इवेंटफूल रही है। एक नावल लिखूंगा। रिटायर होने के बाद-अपनी आत्मकथा-जब तक रिटायर हुए-ही वॉज टू लेट-ही डाइड...।'

वह बोली, 'तभी तो मैं भी कहती हूं...।' मैंने पूछा, 'क्या?''यही कि रिटायरमेंट ले लो...'

'लो और सुनो...'। ✠✠✠

अशोक सिंह कृत फिर वसंत आये...

प्रमिला सिंह

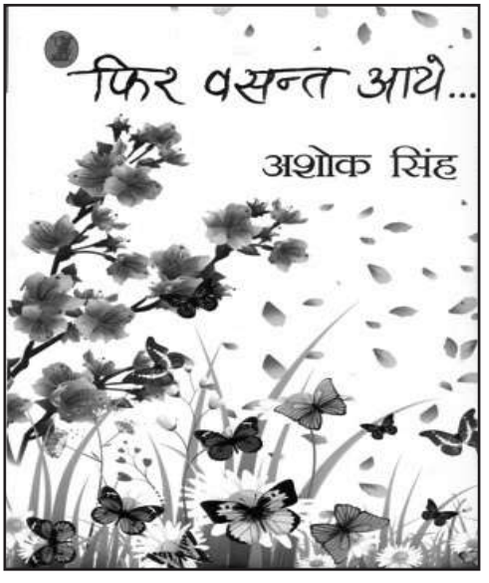

समीक्षित कृति
फिर वसंत आये
लेखक
अशोक सिंह
प्रकाशक
वाणी प्रकाशन
मूल्य: 350 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: ashoksingh@gmail.com मो: +1516695544

भावनाओं के संप्रेषण की कसौटी पर खरी उतरती काव्य कृति...।

साहित्य समस्त जगत को जोड़नेवाला अदृश्य एवं भावात्मक तंत्रजाल है। जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक मानसिक तृप्ति न मिले, हममें गति और शक्ति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य प्रेम न जागृत हो, जो हममें संकल्प और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। महान साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद जी की साहित्यिक कसौटी पर खरी उतरती अशोक सिंह की काव्य कृति 'फिर वसन्त आये' हिंदी काव्य जगत में आगे चलकर मील का पत्थर अवश्य साबित होगी।

कृति में संकलित कविताओं में जीवन की व्यापकता व विचारों की गहराई विद्यमान है। कविताओं में निहित सामाजिक प्रतिबद्धता और एक विशिष्ट रचनात्मक दृष्टिकोण उन्हें एक विशेष धरातल प्रदान करते हैं। 'हूँ मैं कौन' कविता जीवन की क्षणभंगुरता, दुखों की चुभन, सातों सुख पाने की लालसा, जीवन की सार्थकता जैसे शाश्वत प्रश्नों पर विचार करने हेतु बाध्य कर देती है।

वस्तुत: अशोक सिंह की कविताएं कविता की जरूरत को नए संदर्भ और परिवेश में नई ऊर्जा के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ हैं, जिनमें हृदय को द्रवित कर देने वाले भाव परिलक्षित होते हैं। 'कहो न तुम फिर मिलोगे' कविता इन भावों की उत्कृष्टता पूर्णत: वहन करती है। महान दार्शनिक अरस्तू ने कहा है कि काव्य का उद्देश्य एक उच्चस्तरीय आनंद प्रदान करना है 'क्या राह में पलकें बिछाए' कविता इस मांग को पूरा करने में सक्षम प्रतीत होती है। जहां सौंदर्य की भाषा को हृदय समझने में सक्षम हो चला है। जीवन की जड़ता पर प्रहार करने और नए अर्थों की तलाश करने की प्रवृत्ति-'बात गौर से विचारिए तथा 'राह मध्य की ही चुनना' नामक कविताओं में सहजता से महसूस की जा सकती है। उदाहरणार्थ-'नदी के पत्थर सदृश न मर्म से रहना अछूता।'

तथा

'ठहरिए और ठिठकिए माहौल आजमाइए'

जीवन के लिए ही रची गई ये रचनाएं जिनमें भाषा की रवानी और विचारों की सहजता है, प्रतिरोध का स्वर है और आशा की एक नई दिशा भी द्रष्टव्य है। स्पष्ट है कि कवि आम जनता से जुड़ा है। 'रिश्ते' नामक कविता की इन पंक्तियों में ये जुड़ाव स्पष्ट देखा जा सकता है-

'लेकिन एक रिश्ता ही तो है'
जिससे हम समाज और इंसान का दर्शाते स्वभाव हैं।'

इंसानियत तक पहुंचने की भावना में सक्षमता के कारण ही अशोक सिंह की कविताएं इतनी परिपक्व हैं कि बिना किसी विचारधारा के आरोपण के ही सार्थक जीवन मूल्यों और दृष्टि संपन्नता से परिपूर्ण है। 'आदमी की औकात' कविता में 'जीने की जिद' इन्हीं भावों की वाहक बनी है।

अशोक सिंह का अनुभव क्षेत्र काफी विस्तृत है, वे अपनी रचनाओं के मध्य कहीं भी भाषा और शिल्प की एकरूपता के शिकार नहीं हुए हैं। उनकी रचनाओं में सोच से ज्यादा महत्व संवेदनाओं का है। कवि ने आज के समय की नब्ज को पकड़ने और पहचानने का सराहनीय प्रयास करते हुए उसे सटीक ढंग से अभिव्यक्त करने की क्षमता दर्शाई है।

कविताओं में कवि की संवेदना, आस्था, विश्वास, मूल्यधर्मिता और सामाजिक सरोकारों को स्पर्श करने की प्रवृत्ति स्वत: ही उभर कर सामने आ जाती है। 'किसी एक की जागीर नहीं हूं' में जीवन की सहज सच्चाई काव्य मर्मज्ञों के समक्ष स्वत: प्रकट हो जाती है-

''पल भर का हसीं ख्वाब हूं,
कोई पीर नहीं हूँ।''

समाज में सहजता बनाए रखने के लिए परंपरा और आधुनिकता का तालमेल स्थापित होना अत्यावश्यक होता है। 'याद आई है' कविता में-

''बुजुर्गों के जमाए सलीके से तहजीब के पत्थर,
इस उम्र में भी काम नहीं बुनियाद आई है।''

जैसी पंक्तियां प्राचीन मूल्यों के प्रति आस्था जगाने की क्षमता से संपन्न हो आज की नई पीढ़ी के मन में परंपराओं के प्रति आदरभाव भरने में समर्थ है। जहां काव्य दो पीढ़ियों के विचारों में एकरूपता लाने में सफल होता है वहीं उसकी सार्थकता और कालजयी होने का तत्व उसके महत्व को स्वयं बढ़ा देता है। क्योंकि मूल्य प्रत्येक युग में नवीन परिस्थितियों की कसौटी पर खरे उतरने पर है, जो अपने मूल रूप में प्रतिष्ठित हो पाते हैं।

भावों की संप्रेषणीयता की सच्ची शक्ति तब है जब ये लगे कि कृति में जो भाव निहित हैं उनकी मिसाल मिलना थोड़ा कठिन है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए 'नम आंखें' और 'ज़िंदगी का दस्तावेज' कविताएं विशेष रूप से पठनीय हैं। कृतिकार का सर्जन सामर्थ्य एक कुशल कलाकार की तरह काव्य मर्म को प्रभावपरक बनाता है यही उसकी विशेष उपलब्धि है। विवेच्य कृति में 'ताजमहल' जैसी कविताएं अपनी गंभीरता के साथ पुख्ता पहचान कायम करती हैं। प्रस्तुत कृति में कवि ने भावों की सक्षम अभिव्यक्ति के लिए कभी गीत शैली में बात कही तो कभी अतुकांत में, कभी गजल विधा का सहारा लिया और कहीं छंदमुक्त और कहीं-कहीं मुक्त छंद का लिया। आज के मशीनी युग का सत्य तथा जीवन की आपा-धापी की स्थिति 'तुम मिले' कविता में सच के साथ बयां होती है-

'यूं बहुत सी मुश्किलें हैं रोजमर्रा काम में,
जब मिली फुर्सत तसव्वुर में घड़ी भर तुम मिले।

अनुभूति के प्रति समर्पण, मानवीय व्यक्तित्व की सर्जनात्मकता में आस्था, जीवन को समग्रता के साथ देखने का यत्न, युग सत्य के आर-पार जा सकने वाली दृष्टि, शब्द में अर्थ से अधिक सामर्थ्य भरने का प्रयास और सर्वत्र अन्वेषक की सजगता आदि बिंदुओं के सहारे कृतिकार का व्यक्तित्व पर्याप्त साहित्यिक धरोहर को समेटने, उसे और संपन्न बनाने के कार्य में किंचित सफल हो सका है। भाषा की अर्थच्छदियां और विभिन्न शैलियां एक साथ इस कृति में दिखाई देने के कारण निश्चय ही काव्य जगत में इसका स्वागत काव्य मर्मज्ञों द्वारा किया जाएगा। जीवन की वास्तविकता से जुड़कर लिखी गई ये कविताएं अपनी समग्रता में जन जीवन जगत की धरोहर साबित होंगी। कवि के भाव चाहे किसी भी विधा में उभरे हों, हृदय की सच्चाई को अंकित करने में कहीं भी छल का आश्रय नहीं लिया है।

✠✠✠

अनिलप्रभा कुमार कृत कतार से कटा घर

सुधांशु गुप्त

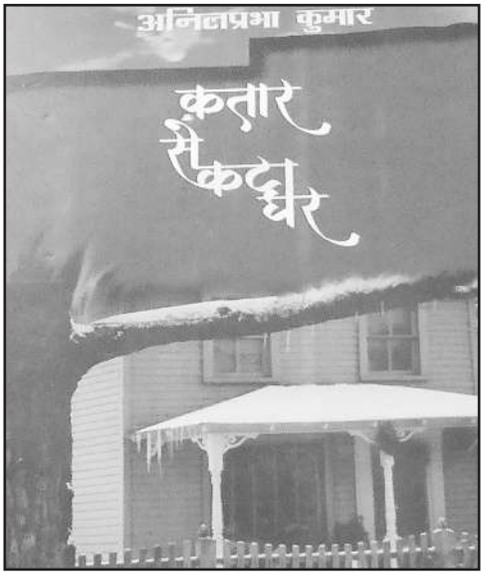

समीक्षित कृति
कतार से कटा घर
लेखक
अनिलप्रभा कुमार
प्रकाशक
भावना प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य: 350 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2018

सम्पर्क: 64सी, डीडीए फ्लैट्स, सत्यम एन्कलेव, झिलमिल कॉलोनी, दिल्ली-110095, मो: 9810936423

सुख नहीं, दुख हमें जोड़ते हैं। और यदि ये स्त्री होने के दुख हैं तो इनमें गहनता और सघनता स्वयमेव ही आ जाती है। दुख ही हैं जो किसी सरहद को नहीं मानते। उनकी अनुभूति जिस तरह भारत में होती है उसी तरह अमेरिका में होती है। दुखों की इस साझी विरासत को ही बयान करती हैं अनिलप्रभा कुमार की कहानियां। उनके दूसरे संग्रह 'कतार से कटा घर' की कहानियां पढ़ते हुए आप एक पल को यह भूल जाते हैं कि आप दशकों से अमेरिका में रह रही किसी लेखिका की कहानियां पढ़ रहे हैं। इन कहानियों के जरिये आप संस्कृति की यात्रा करते हैं और पाते हैं कि आप अपने देश से कितनी भी दूर निकल जाओ, आपके भीतर आपकी संस्कृति बची रहती है। कभी आपके रहन-सहन में, कभी आपकी सोच में और कभी अपने आसपास घट री घटनाओं में। दिलचस्प बात है कि अपनी संस्कृति से दूर होना यानी उसका विदेश में अनुपस्थित होना उसकी उपस्थिति को और घना कर देता है। अनिलप्रभा कुमार की कहानियों में अपने देश की मिट्टी की सुगंध साफ तौर पर महसूस की जा सकती है।

अनिलप्रभा कुमार अपनी कहानियों में किसी चमत्कार या जादुई दुनिया को चित्रित नहीं करतीं। उनकी कहानियों की शुरुआत कहानी के मध्यबिंदु से होती है। बेहद सहजता से वे कहानी को आगे बढ़ाती हैं। पाठक को अहसास ही नहीं होता कि वे कहानी पढ़ रहे हैं। वे न किसी आयातित विमर्श के पचड़े में पड़ती हैं न किसी भाषा या शिल्प के मोह में। यही ईमानदारी उनकी कहानियों की ताकत है। अनिलप्रभा कुमार की कहानियां पढ़ते हुए कई बार तो यह भी नहीं पता चलता कि कहानी जा कहां रही है। किसी नदी के जल की तरह कहानी आगे बढ़ती रहती है। चौंकाने वाले तत्व के पक्ष में भी उनकी कहानियां दिखाई नहीं देतीं। अमेरिका में रहने के बावजूद उनकी कहानियां भारतीय संस्कृति के पक्ष में खड़ी हैं। लेकिन इसके साथ ही वह भारतीय समाज की बुराइयों से लड़ती भी दिखाई पड़ती हैं। शीर्षक कहानी 'कतार से कटा घर' से लगता है कि आप किसी अजनबीपन पर कहानी पढ़ रहे हैं। लेकिन छोटे-छोटे बच्चों के माध्यम से कहानी आपको समलैंगिकता की तरफ ले जाती है। एक बच्चे के घर में पिता नहीं है, उसकी दो माएं हैं और एक छोटी बहन। बच्चे स्कूल में उसे चिढ़ाते हैं। अमेरिका जैसे

समाज में रहने के बावजूद एक साथ रह रही दोनों स्त्रियों को यह दुख झेलना पड़ रहा है। लेकिन इस दुख से वे हारती नहीं बल्कि इसके खिलाफ लड़ाई लड़ती हैं। अंतत: न्यूयार्क में गे मैरिज बिल पास हो जाता है। बच्चे की दोनों माएं विवाह करती हैं। लेकिन कार के पिछले शीशे पर लिखे शब्द न्यूली मैरिड पर कोई अंडा फेंक कर चला जाता है। प्रतीकात्मक अर्थों में उनकी यह लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। यह कहानी पूरी संवेदना के साथ लिखी गई है। बिना समलैंगिकता पर बहस के और बिना जजमैंटल हुए। समलैंगिकता पर ही उनकी एक अन्य कहानी है दीवार के पार। इस कहानी में अनिलप्रभा ने एक मां और उसके समलैंगिक बेटे की कथा बहुत मार्मिक ढंग से कही है। समलैंगिक बेटा आत्महत्या कर लेता है और अंत में मां लिखती है, प्रिय फादर रिल्के, जिस धर्म में मेरे बेटे के लिए स्वीकृति नहीं, आज से मैं उसको ही अस्वीकार करती हूं। मैं अब कभी चर्च नहीं आ पाऊंगी।

ऐसा नहीं है कि अनिलप्रभा कुमार कहानी के लिए अलग कथानक की तलाश करती हैं। कहानियों का उनका कथानक जीवन से ही लिया गया है। महानगर में ही कहीं बेशक न्यूयॉर्क की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है लेकिन दरअसल यह कहानी समय, स्थान और परिवेश को तोड़ती है। यह उस अकेलेपन की कहानी है जो आधुनिकता के अभिशाप के रूप में सामने आ रहा है। यह अकेलापन झेलने को आज हम सभी अपनी-अपनी तरह से विवश हैं। यह कहानी किसी विशेष महानगर की त्रासदी नहीं है, बल्कि एक ऐसी त्रासदी की कहानी है जो कहीं भी किसी के भी साथ घट सकती है, घट रही है। अनिलप्रभा कुमार ने इस कहानी को कहने के लिए जिस डिवाइस का प्रयोग किया है वह बेहद शानदार है और इस महानगरीय त्रासदी को पूरी इंटेंसिटी के साथ चित्रित करता है। संग्रह में कुछ और भी कहानियां हैं, ये कहानियां कहीं न कहीं भारतीय समाज की ही कहानियां दिखाई पड़ती हैं। बस पांच मिनट एक ऐसी महिला की कहानी है जिसे आग में जला दिया गया है। वह उठती है और नये सिरे से ज़िंदग़ी शुरू करती है। उसके साथ तमाम ऐसी महिलाएं जुड़ती चली जाती हैं जो कहीं ये दुख झेल रही हैं। यह कहानी भारतीय समाज में एसिड अटैक की शिकार महिलाओं के दर्द को पूरी शिद्दत से व्यक्त करती है। इसी तरह 'जब मंदिर ढहते हैं' कहानी में एक महिला न्यूयॉर्क से भारत अपनी मां के पास पहुंचती है और देखती है कि किस तरह उसकी मां एक डॉक्टर महादेव नामक एक स्वयंभू संत की भक्त बनती चली जा रही हैं। अंत में मां ही अमेरिका अपनी बेटी के पास चली आती है और पता चलता है कि वह कथित संत अपनी ही पुत्रवधू से बलात्कार के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया है। यह कहानी भारतीय समाज के उन संतों पर तीखा प्रहार है जो अपने ही भक्तों से बलात्कार तक कर डालते हैं। लेकिन इस कहानी में मां और बेटी के रिश्ते का भी महीन चित्रण देखने को मिलता है, जो कहानी की ताकत है। विदेशी जमीन पर रहते हुए कई बार इंसान को कुछ घटनाएं देखकर सांस्कृतिक आघात सा लगता है। 'उसका मरना' कहानी इसी सांस्कृतिक आघात की प्रतिक्रिया है। कहानी में एक तरफ दिखाया गया है कि किसी परिचित की मृत्यु पर अश्रु के साथ श्रद्धांजलि देने की परंपरा पश्चिमी समाज में नहीं है। किस तरह उस समाज की सारी निष्ठा भौतिक लाभ के लिए ही है। भारत में रहते हुए हम सोचते हैं कि कम से अमेरिका में तो लैंगिक असमानता नहीं होगी, वहां तो महिलाओं को अपने साथ पक्षपात नहीं देखना पड़ता होगा। लेकिन 'ऐसे तो नहीं' कहानी में यह लैंगिक असमानता पूरी शिद्दत से दिखाई पड़ती है और साथ ही दिखाई पड़ती है इसके खिलाफ लड़ाई। 'वायवी' कहानी उन सभी महिलाओं के दुखों की साझी कहानी है जिनके पति अपहृत कर लिये जाते हैं या आतताइयों द्वारा मार दिये जाते हैं। स्त्रियों के दर्द को अनिलप्रभा कुमार ने शिद्दत से महसूस किया है। 'मौन राग' प्रौढ़ प्रेम को दर्शाती है।

लेकिन संग्रह की सबसे सशक्त, खूबसूरत और तकलीफदेह कहानी है 'बे-मौसम की बर्फ'। इस कहानी को पढ़कर बरबर ओ हेनरी की विश्व प्रसिद्ध कहानी 'वो आखिरी पत्ता' याद आ जाती है। 'बे मौसम की बर्फ' में पति पत्नी अपनी कैंसर से पीड़ित बेटी को बचाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। बाहर बहुत बर्फबारी हो रही है। मां देखती है कि जिस पेड़ को उनकी बेटी खिड़की के बाहर देखा करती थी वह पेड़ बर्फबारी में नष्ट हो चुका है। जब पिता बेटी को उसी कमरे में लिटाने की कोशिश करता है जहां वह मैग्नीलिया के पेड़ को देखती थी, तो मां बेटी को उनके हाथ से ले लेती है और उसे दूसरे कमरे में लिटाती है। यह कहानी वास्तव में मानवीय रिश्तों की कहानी है जो आपको बाहरी आपदाओं से लड़ने की ताकत देती है।

'कतार से कटा घर' की कहानियों को पढ़ना दो संस्कृतियों के बीच बने या बन रहे उस सेतु पर चलना है, जहां से आपको नये परिवेश में अपने दुखों की महीन ध्वनियां सुनाई देती हैं। बिना किसी पाखंड के बेहद ईमानदारी से लिखी गई ये कहानियां संवेदनशीलता की नयी परतें खोलती हैं और आपको जीने का एक नया नजरिया देती हैं।

✠✠✠

मंचनः नाटक 'उधार का सुख'

शैलजा सक्सेना

यह नाटक मराठी नाटक 'सुखांशीभाडंतीआहि' (लेखकः अभिराम भडकमकर) का हिन्दी रूपांतरण है। रूपांतरणकारः डॉ. शैलजा सक्सेना और श्रीप्रकाशदाते; निर्देशन और प्रकाश व्यवस्थाः श्रीप्रकाशदाते; संगीतः दीपकसंत

हिन्दी राइटर्स गिल्ड ने नवंबर 18, 2018 को सेंट्रल पील हाईसेकेंड्री स्कूल, ब्रैम्पटन, कनाडा के ऑडिटोरियम में नाटक 'उधार का सुख' की प्रस्तुति द्वारा प्रबुद्ध, जागरुक हिन्दी प्रेमियों के सामने रंगमंच का एक नया मानक गढ़ा।

नाटक का प्रारंभ संचालक श्री संजीव अग्रवाल जी ने हिन्दी राइटर्स गिल्ड का संक्षिप्त परिचय देने से किया और स्वयंसेवकों, प्रायोजकों (स्पांसर्स) और मीडिया सहयोगियों को धन्यवाद दिया। उन्होंने ऑटवा से मिले महामहिम हाई कमिश्नर श्री विकास स्वरूप जी की शुभकामनाओं और बधाई संदेश के लिये उनका धन्यवाद किया। तत्पश्चात नाटक के कुछ विचार-सूत्र, प्रश्न रूप में श्रीमती कृष्णा वर्मा जी ने दर्शकों के सामने रखे और फिर भरतमुनि की नाटय-परंपरानुसार रंगभूमि और रंग-देवता की वंदना से यह नाटक प्रारंभ हुआ। इस नाटक में हमारी करनी और कथनी के बीच की खाई और इससे उपजी संवेदनशील मन की व्याकुलता को अनेक स्थितियों और पात्रों के माध्यम से दिखाया गया है।

''दीवार पर गाँधीजी की फोटो लगाकर मेज के नीचे से घूस लेने का युग है यह''! (जीने के लिये हमेशा दो स्तर पर बातें करनी हैं भ्रष्टाचार के विरुद्ध लेकिन दूसरी तरफ डोनेशन देने लिये बराबर पैसे जमा करते रहना!'') पार्वती कहती थी, आधा ही सही, पर वेतन तो मिलता है, उसी से संतोष करो पर पागलपन तो मेरे ही सिर पर सवार था, कहता, ऐसा क्यों? कब तक चलेगा ऐसा? बस, मन को खिलौना मिल गया! पूछता रहता है, ऐसा क्यों?' ऐसे प्रभावशाली संवादों और अनेक उतार-चढ़ाव से भरी अपनी कहानी से इस नाटक ने तीन घंटे तक लगभग 300 लोगों को बाँधे रखा।

स्किजोक्रेनिक रोगी सदाशिवदास वर्मा के रूप में संदीप कुमार ने खंडित व्यक्तित्व का बहुत प्रभावशाली रूप प्रस्तुत किया। उनके हँसने और रोने, सामान्य और बीमार रूपों ने दर्शकों के मन को भीतर तक छू लिया। सायकाइट्रिस्ट डॉक्टर श्रीधर के रूप में विद्याभूषण धर का अपने पात्र-चरित्र पर अद्‌भुत नियंत्रण रहा, अपने रोगी से प्रभावित होकर, अपने सपनों के खोज की उनकी यात्रा को दर्शकों ने बहुत सराहा। डॉक्टर श्रीधर की पत्नी मीता के रूप में डॉ. शैलजा सक्सेना, एक कड़क पत्नी और माँ के रूप में नजर आई जो सदाशिव से उसके आदर्शवाद पर बहस

करती है। सबकुछ पर नियंत्रण करने वाली से टूटकर बिखरने वाली स्त्री तक के रूप की उन्होंने सटीक और बढ़िया प्रस्तुति की और दर्शकों की प्रशंसा ली। नर्स कमलाबाई के रूप में लता पांडे और धनी रोगी मिसेज प्रधान के रूप में रमा जोशी ने दो विपरीत वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हुए बहुत ही अच्छा काम किया और सोचने के लिये कुछ सूत्र देते हुए, हास्य की मिठास भी पैदा की। दर्शकों ने दोनों के काम को बहुत सराहा। भारत छोड़कर अमरीका रहने का निर्णय लेने वाले आधुनिक बेटे के रूप में रोहन झुमानी के संवाद और व्यवहार के अभिनय को भी बहुत प्रशंसा मिली। माँ के रूप में कृष्णा वर्मा का एक ही लंबा संवाद था पर उनकी ममता से भीगी आवाज में जीवन की सीख, लोगों की आँखें नम कर गई। नाटक के सार को प्रस्तुत करता उनका वह संवाद लोगों को बहुत समय तक याद रहेगा। डिंपी शाह झुमानी का डॉक्टर श्रीधर की पूर्व प्रेमिका, सुमन के रूप में किया हुआ एक ही नृत्य था पर डिंपी का लयात्मक नृत्य, गीत में स्त्री-मन का उल्लास तथा छोड़ दिये जाने की पीड़ा का प्रस्तुतिकरण लोगों को बहुत पसंद आया।

यह नाटक मराठी नाटक 'सुखांशीभाडंतीआहि' (लेखक: अभिराम भडकमकर) का हिन्दी रूपांतरण है। रूपांतरणकार: डॉ. शैलजा सक्सेना और श्रीप्रकाशदाते; निर्देशन और प्रकाश व्यवस्था: श्रीप्रकाशदाते; संगीत: दीपकसंत

रंग-सज्जा और मंचसज्जा श्री प्रकाशदाते की इंजीनियरिंग का कमाल थी जो घर और क्लिनिक के दृश्यों को सैकंडों में बदल सकी। स्टेज मैनेजर के रूप में अनुराधा कानूनगो और उनके छह सहायकों ने इस कार्य को बखूबी किया। ध्वनि- नियंत्रक का काम नीला चिंसालकर ने सुचारु रूप से निभाया। वेशभूषा और प्रसाधन का कार्य नमिता दाँडेकर और लीना देवधरे ने कुशलता से किया।

लगभग आठ-नौ महीनों की अथक मेहनत का परिणाम यह तीन घंटे का नाटक था, जो लोगों के मन पर छा गया। प्रत्येक कलाकार के सही और प्रभावी काम ने दर्शकों को समय का पता ही नहीं लगने दिया। हिन्दी राइटर्स गिल्ड की सलाहकार निदेशिकाओं श्रीमती पूनम चंद्रा 'मनु' और श्रीमति आशा बर्मन ने इस नाटक के सुन्दर निर्देशन के लिये श्री प्रकाशदाते जी का धन्यवाद करते हुये उन्हें उपहार दिये। इसी अवसर पर ''इन्डीडवीकैन'' संस्था ने भी पूर्व घोषित ''मिरेकल मॉम'' का अवार्ड डॉ. शैलजा सक्सेना को उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिये दिया।

हिन्दी राइटर्स गिल्ड के सह-संस्थापक निदेशक श्री विजयविक्रांत और श्री सुमन कुमार घई ने नाटक बनने की पूरी प्रक्रिया को बहुत मेहनत से सँभाला। श्री सुमन घई जी ने कार्यक्रम पुस्तिका बनाकर कलाकारों के परिचय को लोगों तक पहुँचाया तो श्री विजयविक्रांत जी ने टिकट का काम सँभाला। श्रीमती पूनम चंद्रा 'मनु' ने मीडिया द्वारा नाटक की सूचना लोगों तक पहुँचाई तो श्रीमती आशा बर्मन जी ने संस्थाओं और लोगों से संपर्क किया। श्री दीपक राजदान ने कैमरे से वे अद्‌भुत पल सँभाले। अनेक स्वयंसेवकों की मदद से यह नाटक अपने उत्तम रूप को पा सका। यह उल्लेखनीय है कि इस नाटक में अनेक युवाओं ने स्वयंसेवकों के रूप में अपना समय दिया और नाटक को सराहा भी। गिल्ड ने उन सबका मंच पर बुलाकर धन्यवाद दिया।

यह दिन कलाकारों, दर्शकों और हिन्दी राइटर्स गिल्ड के लिये अत्यधिक संतुष्टि और उपलब्धि का दिन रहा। इस नाटक की कहानी और संस्था की गतिविधियों को जानने के लिये देखें, वेबसाइट: www.hindiwritersguild.com

✠✠✠

अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद वाराणसी द्वारा प्रवासी भारतीयों का सम्मान

अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद वाराणसी ने प्रवासी भारतीयों के स्वागत व सम्मान के लिए आईएमए कैंपस में एक समारोह का आयोजन किया। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में नगर की मेयर मृदुला जायसवाल, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के महासचिव श्याम परांडे व समारोह के अध्यक्ष पद्मभूषण पं. छन्नू लाल मिश्र, मिस इंडिया अर्थ डॉ. संगीता सिंह एवं सीएमओ डॉ. वी.बी. सिंह व परिषद वाराणसी के अध्यक्ष पं. राम गोपाल मोहाले, डॉ. के.पी. अग्रवाल, रो. चंद्रशेखर कपूर और विशिष्ट अतिथि अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष पूर्व राजदूत वीरेंद्र गुप्ता थे।

समारोह का शुभारंभ दीप प्रज्जवलित करके किया गया, जिसमें अतिथियों के अतिरिक्त गाजीपुर के सीडीओ हरिकेश चौरसिया, डॉ. बेला सैगल, श्री श्याम परांडे उपस्थित रहे। इस कार्यक्रम में दुनिया भर से आये सौ से ज्यादा प्रवासी भारतीयों ने भाग लिया। जिसमें सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, दुबई, मॉरीशस, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा एवं ब्रिटेन आदि से उपस्थित थे। जिसमें प्रवासी भारतीय सम्मान विजेता डॉ. मालिनी रंगनाथन (फ्रांस) भी विशेष रूप से उपस्थित थीं। कार्यक्रम में सम्मानित अतिथि डॉ. संगीता सिंह (मिस इंडिया अर्थ) ने कहा कि दुनिया भर में नारी का सशक्तिकरण बहुत जरूरी है। यह प्रसन्नता की बात है कि विदेशों में रहने वाली भारतीय मूल की महिलाएं संसार में नया कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के अध्यक्ष पूर्व राजदूत वीरेंद्र गुप्ता ने प्रवासी भारतीय दिवस में भाग लेने के लिए विदेशों से आए भारतीयों के सम्मान में स्वागत समारोह आयोजित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद वाराणसी शाखा को बधाई देते हुए कहा कि प्रवासी भारतीय विश्व भर में भारत की शान बढ़ा रहे हैं। परिषद के महासचिव श्री श्याम परांडे ने प्रवासी भारतीयों के भारत से बढ़ते संबंध का उल्लेख करते हुए कहा कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद भारत और प्रवासी भारतीय के बीच के संबंधों को बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है।

✠✠✠

साभार: अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद, बुलेटिन

अमेरिका की राजधानी में हिंदी कवियों की धूम

अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी सी और उससे सटे मैरीलैंड और वर्जीनिया राज्यों का मिला जुला वार्षिक होली कवि सम्मेलन/बसंतोत्सव इस वर्ष भी हर वर्ष की तरह बहुत बढ़िया रूप से मानाया गया।

इस वर्ष कवियों का विशेष कार्यक्रम दुर्गा मंदिर सीनियर सिटिजन ग्रुप ''मेरे अपने'' के लिए आयोजित किया गया। ''मेरे अपने'' सीनियर ग्रुप हर माह के तीसरे रविवार को मिलता है और अलग-अलग तरह के कार्यक्रमों का आयोजन करता है।

सत्रह मार्च को हुए इस कवि सम्मेलन में अठारह स्थानीय कवियों ने काव्य पाठ किया। होली के रंगों की ही तरह कविताओं के रंग भी बहुत सारे थे। जहाँ एक कवि ने पुलवामा के शहीदों को याद किया तो एक कवयित्री ने बरसाने की होली की याद दिलाई। देश की यादों में श्रोता कई बार झूमे, रिश्तों की पेचीदगियों से कई बार उलझे तो कभी ठहाकों से आह्लादित हुए।

करीब-करीब दो सौ श्रोताओं से भरा भवन प्रसन्नचित्त होकर घर लौटा।

कवियों में विद्यमान थे, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के विद्वान डॉ. सत्यपाल आनंद जिन्होंने कई बार दुष्यंत कुमार जी के साथ अपने किस्से सुनाए और कई बार कविता की बारीकियों पर ध्यान उकेरा। श्री नरेन्द्र टंडन मैरीलैंड के कवि हैं जो पिछले बीस सालों से इस सम्मेलन का आयोजन करते आये हैं। रेखा मैत्रा जिनकी कम से कम बारह कविताओं की पुस्तक छप चुकी हैं और जिनकी कविताओं की प्रशंसा गुलजार जी ने भी खुले मन से की हैं, वह विशेषकर कैलीफोर्निया से उपस्थित हुईं। स्थानीय वरिष्ठ लेखक डॉ सुमन वरदान, मीडियाकर्मी श्री कृष्ण छाबड़ा, हिन्दी उर्दू में लिखने वाली श्री मति सुकेश चोपड़ा, फौजी भाईयों के लिए लिखने वाली श्रीमति शशि पाधा, मीडिया कर्मी शशि अग्रवाल, दूतावास में भारतीय संस्कृति के वाहक के रूप में आए डॉ. मोक्षराज, अमेरिका के रिपोर्टरों में प्रसिद्ध श्रीमति सुरेखा विज, बहुमुखी प्रतिभा की धनी श्रीमति विनीता तिवारी, रेखाचित्र और कविता दोनों में ही माहिर श्रीमति प्रीति गोविंदराज, पेशे से इंजीनियर लेकिन कवि हृदय मनीश दुबे जी और अम्बर शर्मा जी स्थानीय कविगण में थे। ''मेरे अपने'' ग्रुप के कार्यकर्ता और सदस्यों में से श्रीमति साधना जी, श्रीमति अर्चना जी और श्रीमति सपना रस्तोगी जी ने भी काव्य पाठ किया।

इस कार्यक्रम का सफल संचालन किया स्थानीय कवयित्री व हिन्दी प्राध्यापिका डॉ. आस्था नवल ने।

✠✠✠

'दरीचों से झांकती धूप' लोकार्पित

वीणा विज 'उदित'

विदेश में रहने से स्वदेश जहन में हर वक्त साँस लेता रहता है। हम दोनो बेटों के पास रहते हैं बारी-बारी। इस बार बसंत-पंचमी पर ''ग्लोबल हिन्दी ज्योति'' की ओर से अनिता जी का निमंत्रण था ''खुला मंच'' प्रोग्राम में पधारने, सम्मानित होने और साथ ही मेरे नवीनतम काव्य-संग्रह के विमोचन हेतु।

सैनफ्रांसिस्को के ''सनीवेल'' में स्थित 'शिव-दुर्गा मंदिर' के बड़े हॉल में आदर सहित (दा से बा) पल्लव नीरज (जो गो.दा. नीरज के पौत्र हैं), आचार्य श्री कृष्ण, श्री वैद्य, मुझे, अनिता कपूर एवम् अंजना गुप्ता को मंच पर आसीन करवाया गया। मां शारदा की वंदना के पश्चात् कुछ नए कवियों को प्रथम बार मंच मिला और उसके उपरांत गेरूए वस्त्र और भेंट से मेरा स्वागत सम्मान किया गया। तदोपरांत मेरे नवीनतम काव्य- संग्रह ''दरीचों से झाँकती धूप'' का विमोचन किया गया। और उसमें से कविता सुनाने का आग्रह होने पर मैंने कविता एवम् अपनी लिखी एक गजल भी सुनाई। मेरे दोनों बेटे भी पहुँच गए थे। रोहित और मोहित (एक दिन के लिए लोवसिनिया से माँ को सम्मानित होता देखने आया था)। भारतीय खबरनामा ''यूएस भारत टुडे'' में वरिन्दर ऊबी जी ने पूरी खबर छापी। संजय व रीना माथुर जी इसे प्रोमोट कर रहे हैं! वहाँ नम्रता युहाना, कामाक्षा माथुर, सपना, विपिन सामर, कलामू चाचे (अफ्रीकन कवयित्री) गुरदीप कौर चावला (ओबामा की हिन्दी अनुवादक) आदि कई लोग थे।

अगले हफ्ते 18 फरवरी को ''विश्व हिन्दी ज्योति'' की ओर से नीलू गुप्ता जी और मंजु मिश्रा जी का निमंत्रण था। वे स्वयं आकर मुझे अपने साथ ''मिलपिटास'' लता मालवीय जी के निवास स्थान पर ले गईं। वहाँ यथोचित सम्मान दे कर सब ने मेरी पुस्तकों के विषय में जानकारी लेकर उनको वहाँ सुसज्जित किया। फिर मेरी कविताओं का रसास्वादन किया। दो से तीन घंटे काव्य गोष्ठी चली। बहुत से कवि और साहित्यकारों से विचार सांझे हुए। शकुंतला बहादुर, शोनाली, अर्चना (रेडियो ज़िंदगी) चलाती हैं, (अर्चना भटनागर, निर्मला, संजय-रीना माथुर, मनीष आदि बहुत लोग थे। सभी अमेरिका में रहते हुए भी अपने भारत की मिट्टी से पूरी तरह सराबोर हैं। अमेरिका में बसे भारतीयों की यही बात दिल को छू लेती है।

टैक्सास में भी भारतीयों की रूह में ''भारत'' ही बसता है। मेरी कॉलेज की सहेली मंजु गुप्ता ने ह्यूस्टन (टैक्सास) से मुझे आमंत्रित किया और 100 लोगों को काव्य-गोष्ठी के निमित्त निमंत्रित कर लिया। चुनांचे अब जाना लाजमी ही था। 11 मार्च की संध्या को नामी-गिरामी लोगों की भीड़ उसके महलनुमा घर में आने लगे। यहाँ व्यवसायी ही हैं अधिकतर। ऊषा मेहरा ने माईक सँभाला और मेरे परिचय के छपी सामग्री बाँटकर दर्शकगणों का ध्यान खींचकर कुछ कहने को कहा। पूर्ण नीरवता।

हल्की सी मुस्कान व चंद अल्फाज से सबका अभिवादन कर मैंने अपनी पहली काव्य पुस्तक ''सन्नाटों के पहरेदार'' से मुख्य गाना गाकर सुनाया। ऐसा समा बँधा कि फिर मुझे ढेरों कविताएँ, गजलें और नज्में सुनानी पड़ीं!

सेंट्रल लाइब्रेरी हाउसटन के संयोजक श्री अरुण प्रकाश व कुछ अन्य लोगों ने भी काव्य-पाठ किए। अरुण जी ने मेरी सभी पुस्तकें लायब्रेरी के लिए ले लीं। पहले भी वहाँ के चारों विश्वविद्यालयों में मेरी पुस्तकें हैं।

इतनी ढेर, यादगार शामें अपने नाम दर्ज करवा ली हैं मैंने अभी-अभी।

विनय भाव लिए हुए। ✠✠✠

सम्पर्क: BatonRouge, Louisiana, U.S.A. Cell. 225-288-7670

कैलिफोर्निया में भारतीय मेयर निर्वाचित

अमेरिकी कारोबारी हैरी सिंह सिद्धू, कैलिफोर्निया राज्य के बड़े शहरों में से एक अनाहिम के मेयर चुने गए हैं। सिद्धू, (2002 से 2012) के बीच 8 साल तक अनाहिम सिटी काउंसिल के सदस्य रहे हैं। उन्होंने 6 नवंबर को हुए मध्यावधि चुनाव में एशलेघ एटकेन को हराया। वह शहर में पहले भारतीय मूल के मेयर होंगे। चुनाव में जीत के बाद सिद्धू ने कहा, मैं उत्साहित और रोमांचित महसूस कर रहा हूँ कि अपने शहर को एकजुट रखने और नेतृत्व करने का मुझे मौका मिल रहा है। भारत में जन्मे सिद्धू 1974 में अमेरिका गए और फिलाडेल्फिया में बस गए।

सिद्धू से पहले अमेरिका में रविंदर सिंह भल्ला और प्रीत दिदबाल ने भी मेयर पद का चुनाव जीतकर सुर्खियां बटोरी थी। भल्ला होबोकन से तो प्रीत यूबा सिटी से मेयर रहे थे। पब्लिक पॉलिसी फॉर द नेशनल सिख कैंपेन के डायरेक्टर जस सज्जन ने कहा कि सिद्धू को इतने बड़े शहर का मेयर बनता देख बहुत उत्साहित हूँ।

अमेजॉन पॉली अब हिंदी टेक्स्ट भी सुनाएगी

अमेजॉन वेब सर्विस (एडब्ल्यूएस) की क्लाउड सर्विस अमेजॉन पॉली में अब हिंदी सपोर्ट भी होगा। कंपनी ने इसकी जानकारी दीं अमेजॉन पॉली एक मशीन लर्निंग सेवा है। यह टेक्सट को वॉइस में बदलकर उसके यूजर्स तक एकदम रियल आवाज में पहुंचाती है। कंपनी ने पिछले साल ही अंग्रेजी में भारतीय आवाज को अमेजॉन पॉली में जोड़ा था। लॉचिंग के मौके पर अमेजॉन इंटरनेट सर्विस प्राइवेट लिमिटेड के हेड ऑफ बिजनेस डिवेलपमेंट नवदीप ने कहा कि टेक्सट इनपुट चाहे देवनागरी में लिखा हो, चाहे रोमन हिंदी में, अमेजॉन पॉली के यूजर्स को वह रियल और साफ आवाज में सुनाई देगा। इंग्लिश और हिंदी साथ भी लिखी गई हों, उसे भी अमेजॉन पॉली एक साथ अपने यूजर्स तक सटीकता से पहुंचाएगा। कंपनी ने कहा है कि दुनियाभर में हिंदी बोलने वालों की संख्या 50 करोड़ से ज्यादा है। अमेजॉन पॉली में हिंदी सपोर्ट होने से उसके भारतीय ग्राहकों का अनुभव बढ़ेगा। कई कंपनियां इन नई अंग्रेजी और हिंदी आवाज का इस्तेमाल अपने बिजनेस में कर रही हैं।

भारतवंशी को मिला राष्ट्रपति मेडल

भारतीय मूल की अमेरिकी महिला मीनल पटेल डेविस को अमेरिका के प्रतिष्ठित प्रेजिडेंशियल मेडल से सम्मानित किया गया। अमेरिकी विदेश मंत्री माइ पॉम्पियों ने उन्हें ह्यूस्टन में मानव तस्करी से लड़ने में उत्कृष्ट योगदान के लिए राष्ट्रपति मेडल से सम्मानित किया। मीनल ह्यूस्टन के मेयर की विशेष सलाहकार भी हैं।

गूगल होम हिंदी में भी

गूगल ने अपनी वॉयस असिस्टेंट डिवाइस गूगल होम को अब हिंदी समझने के लिए भी तैयार कर लिया है। यानी ओके गूगल कहने के बाद आप इसे हिंदी में कमांड दे सकते हैं, जिनका जवाब यह हिंदी में देगा। गूगल होम एमेजॉन की एलेक्सा जैसी डिवाइस है। आपके पूछे गए सवालों का वह इंटरनेट से ढूंढ़कर जवाब देती है। साथ ही आप इसका प्रयोग म्यूजिक प्ले करने और इंटरनेट रेडी डिवाइस के लिए कमांड देने के लिए करते हैं। हिंदी में गूगल असिस्टेंट मोबाइल फोन पर पहले ही आ चुका है। गूगल होम एप पर जाने के बाद आपको अकाउंट आइकन में जाकर सेंटिग्स में हिंदी को पहली भाषा के तौर पर सेट करना होगा। ✠✠✠

उनकी नजरों में हम

हरीश नवल

दुनिया के हर औसत आदमी की तरह जो पढ़-लिखकर दुनिया देखना चाहता है, मेरे मन में भी संयुक्त राज्य अमेरिका देखने की चाह थी। जी हाँ, अमेरिका देखना दुनिया देखने के बराबर ही है। यह एक ऐसा वृहद् राष्ट्र है जहाँ विश्व के लगभग हर कोने के नागरिक अपनी सभ्यता, अपने संस्कार और संस्कृति लेकर आराम से जीवनयापन करते देखे जा सकते हैं।

सन् 1992 के अप्रैल के सुखद माह में मुझे अमेरिका आने का सुअवसर लगे हाथों मिला था। त्रिनिडाड में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में भाग लेने का स्वर्णिम निमंत्रण मिला था, लौटते हुए रास्ते में अमेरिका ठहरने का चंद दिन का वीजा पाकर मैं धन्य था। न्यूयॉर्क के समीप जैक्सन हाईट्स में रुकने का प्रबंध हुआ था। अमेरिका को कुछ दिन जी सकूँगा, कल्पनाओं का ज्वार मन में उमड़ा था, पर एक अज्ञात भय भी था। भय था कि जाने अमेरिका मुझे पसंद करेगा भी कि नहीं। वे हमें पसंद नहीं करते, ऐसी बातें सुन रखी थीं। अकेले घूमने की हिम्मत नहीं थी, त्रिनिडाड से मेरे अभिन्न मित्र डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण मेरे साथ आए थे। वे त्रिनिडाड के भारतीय दूतावास में भाषा व संस्कृति देखते थे, यहाँ उन्हें केवल मुझे देखना था, अमेरिका उन्होंने अनेक बार देखा, समझा हुआ था, अत: मैं निश्चिंत था।

न्यूयॉर्क की 42वीं स्ट्रीट पर घूमते हुए अचानक उनके चेहरे पर भय की लहरें उमड़ती दिखाई दी थीं, उन्होंने मेरे हाथ जोर से दबाकर फुसफुसाते हुए कहा, 'सड़क के दूसरी पार चलो, इस तरफ डर है... और वे मुझे लगभग खींचते हुए दूसरी पार ले गए। उस पार मैंने पूछना चाहा कि क्यों इस ओर आए हैं तथा क्या डर था, देखने के लिए मुड़कर पिछली पार देखा... चार-पाँच लंबे-तगड़े युवा हमें घूरते नजर आए, अधिक न देख सका, क्योंकि दुनिया देखे अनुभवी मित्र ने शीघ्र ही मुझे भीड़ का हिस्सा बना दिया। पता चला कि मेरे हाथ का बैग छीनना उन युवकों का कर्म बन सकता था। सचमुच डर था। ट्यूब में एक सीट खाली देख जैसे ही मैं उस पर अपने को टिका पाया, तुरंत बड़ी तेजी और हिकारत भरी दृष्टि से एक अमेरिकी यात्री दूसरी सीट खाली करके खड़ा होकर बड़बड़ाने लगा... 'दीज इंडियंज...' शेष ट्यूब सफर मैंने और मित्र ने चुपचाप सहमते हुए से ही किया। ऐसा व्यवहार या रुख उसी एक दिन में दो-तीन बार देखने को मिला। डॉलर के मूल्य के सामने रुपया तब भी चित्त था। छब्बीस रुपये का एक डॉलर था, अत: विंडो शॉपिंग ही कर सकता था। एक इलेट्रॉनिक्स की दुकान के खूबसूरत शो-विंडो को निहारते-निहारते शायद ज्यादा समय गुजर गया था, दुकानदार के इशारे पर उसका एक व्यक्ति मेरे पास आकर चुपचाप मेरा निरीक्षण या कहें जासूसी करने लगा, मेरी प्रश्नवाचक मुद्रा पर वह धीमे से पूछ उठा था... 'यू आर एशियन। इंडियन और पाकिस्तानी?' मेरी काली दाढ़ी जो अब सफेद हो चुकी है, के कारण भारत-पाकिस्तान का भ्रम पैदा होता रहा है। मैं स्वयं को अपमानित-सा महसूस कर वहाँ से हट गया।

कह सकता हूँ कि वह प्रथम अमेरिकी यात्रा बेहद रोमांचक थी। बहुत कुछ देखा मगर डरते-डरते। संवेदना के क्षणों में हँसी और आँसू दोनों को ही पीना पड़ा था तब।

अमेरिका देखने का दूसरा मौका लगभग दस साल बाद सन् 2001 में मिला। डरते-डरते कदम डलस एयरपोर्ट के बाहर

सम्पर्क: संपादक 'गगनांचल'

पड़े। मुद्रा अपेक्षाकृत गंभीर थी। इस बार जीवन-संगिनी और मेरी पुत्री मेरे साथ थी। उनके साथ होने से सर्वविदित जानकारी प्रसारित हो जाती है कि हम भारतीय हैं।

उसी न्यूयॉर्क के भीड़ भरे बाजारों से होते हुए जब हम घूम रहे थे, मैं डॉ. ऋतुपर्ण की भांति उनको सावधान कर रहा था, पर वे दोनों 'क्यों?' की मुद्रा में होती थीं। बिना छत की डबल-डैकर बस में हमने न्यूयॉर्क का नजारा देखा—लगा कि पहली बार देख रहा हूँ। बस में बैठते ही आकर्षक परिचारिका ने आह्लादित स्वर में कहा था, ''ओह इंडियन, वेलकम...'' लग गया था उसका 'वेलकम' कहना केवल औपचारिकता नहीं थी। शो-विंडो में झाँकने की हिम्मत नहीं हो रही थी, पर एक दुकानदार ने स्वागत की मुद्रा में कहा, 'नमस्ते इंडिया, प्लीज ब्राउज इनसाउड'... उसके कथन में सत्यता का आभास होते ही हमारे कदम भीतर मुड़ गए थे।

ट्यूब में सफर इस बार भी था। खाली सीट देख उमंग नहीं उठ रही थी, नजर अगल-बगल जा रही थी—पत्नी और बेटी बैठ चुकी थी, सहयात्री अमेरिकन ने हँसते हुए स्वागत कर कहा, ''प्लीज सिट, आयम जेम्स, यू आर फरोम इंडिया? मेरे संकोच से बैठते ही जेम्स की वाणी दोबारा गूँजी, 'ओन टूर और टू सर्व अमेरिका? मैं कुछ समझ पाता कि पुनः उसी आवाज ने दिलकश अंदाज में कहा, 'यू इंडियन अमेजिंग, यू हैव प्रूव्ड योअर बर्थ ऑन टू थाउसंड के...''

सचमुच अमेजिंग... कितना परिवर्तन हो चुका था। जहाँ हालिवुड की फिल्मों में भारतीयों का चरित्र हास्य और फूहड़ता से भरा होता था, वहाँ अब 'इंटेलिजेंट' के प्रतीक रूप में हो रहा था। भारतीय मतलब 'आई.टी. एक्सपर्ट, यानी जीनियस, स्मार्ट। ब्रेनी...

भारतीय डॉक्टर, इंजीनियर, गणितज्ञ, भाषाविद्, योगाचार्य, महान संगीतज्ञ तथा कंप्यूटरविद्... शनैः-शनैः उनकी नजरों में हमारा ग्राफ बढ़ रहा है, इज्जत बढ़ रही है...

कहाँ नौ-दस साल तक अमेरिका आने की हिम्मत नहीं होती थी और कहाँ 2001 के बाद मौका मिलते ही अब तक आठ बार और अमेरिका घूम चुके हैं। बस मौका मिलना चाहिए...

...मौके मिलते गए और हम उनकी नजरों में बसते गए।

ओबामा की तरह ट्रंप भी यदि भारतीयों के प्रति सौजन्यता दिखाते रहेंगे हम और वे और करीब आते जायेंगे।

✠✠✠

विगत दिनों हमने कुछ प्रखर साहित्यिक विभूतियों को खो दिया।

मूर्धन्य आलोचक डॉ. नामवर सिंह, उत्कृष्ट कवि श्री विष्णु खरे,

ग़जल/व्यंग्यालोचक डॉ. शेरजंग गर्ग, नारीविमर्शदात्री श्रीमती रमणिका

गुप्ता, विचारक संपादिका डॉ. अर्चना वर्मा और अन्य को

'गगनांचल' की विनम्र श्रद्धांजलि!!

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद गतिविधियां

हिंदी पखवाड़े के दौरान कवि सम्मेलन का आयोजन

परिषद द्वारा हिंदी पखवाड़े के दौरान हिंदी कार्यशाला का आयोजन

परिषद द्वारा हिंदी पखवाड़े के दौरान हिंदी टाइपिंग प्रतियोगिता का आयोजन

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद गतिविधियां

परिषद द्वारा हिंदी पखवाड़े के दौरान
समापन व पुरस्कार वितरण समारोह

परिषद द्वारा आयोजित हिंदी पखवाड़े के दौरान सामान्य
हिंदी प्रतियोगिता और निबंध प्रतियोगिता का आयोजन

परिषद द्वारा हिंदी पखवाड़े के दौरान
समापन व पुरस्कार वितरण समारोह

''लोकतंत्र की गोष्ठी'' व्याख्यान से संबंधित झलकियां

परिषद के माध्यम से 11 जनवरी 2019 से 22 फरवरी 2019 तक विश्व के सात देशों (हॉस्टन, बर्लिन, दुबई, केनबरा, वाशिंगटन, लंदन व न्यूजर्सी) में ''लोकतंत्र की संगोष्ठी'' विषय पर व्याख्यान आयोजित किया गया। जिसमें भाग लेने के लिए भारत वर्ष से चयनित बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों तथा राजनीतिक विशेषज्ञों को भेजा गया।

कैनबरा

जर्मनी

दुबई

न्यू जर्सी

ह्यूस्टन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष	₹	500	(भारत)		
		US$	100	(विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200	(भारत)		
		US$	250	(विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%			
	पुस्तक विक्रेता		25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम.....

पद.....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 41 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228 23378662
उप-महानिदेशक (पी)	:	23370784
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
भारतीय सांस्कृतिक केंद्र अनुभाग	:	23379274
अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति अनुभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति अनुभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति (अफगान अनुभाग)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3358, 3347

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

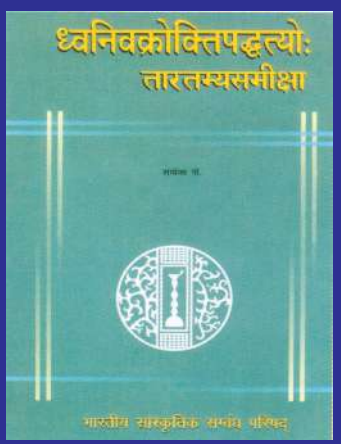

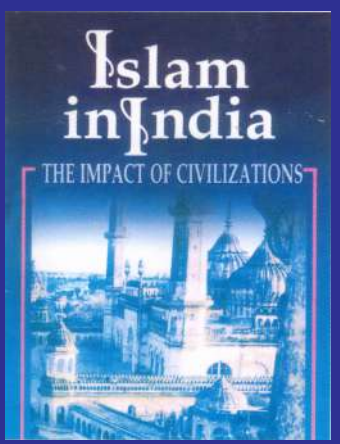

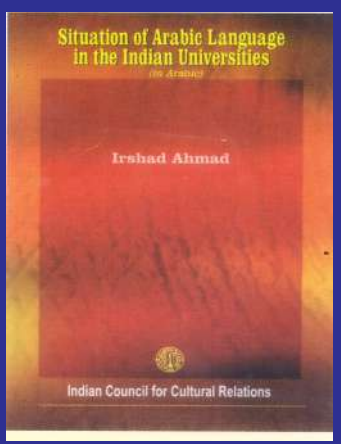

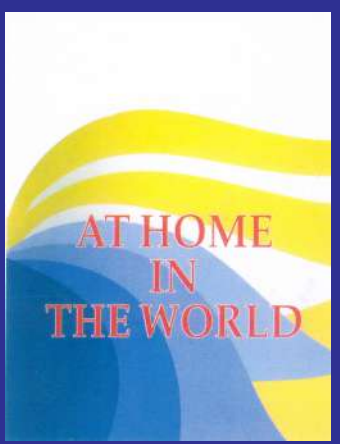

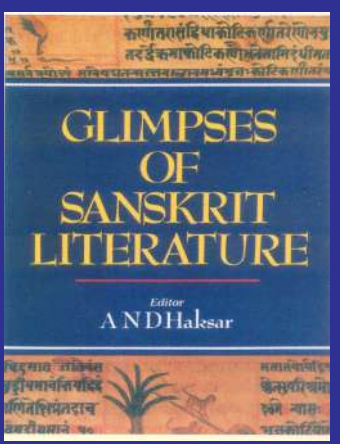

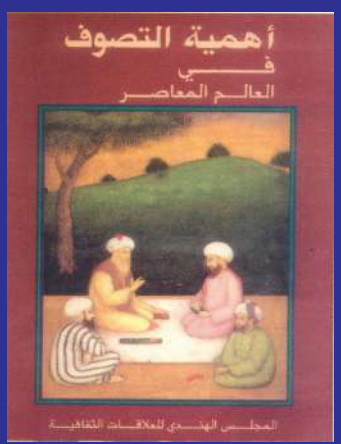

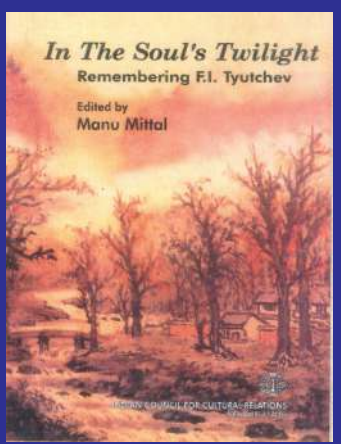

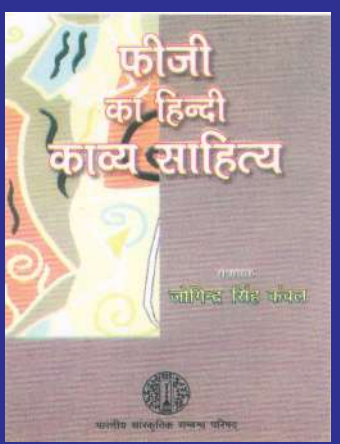

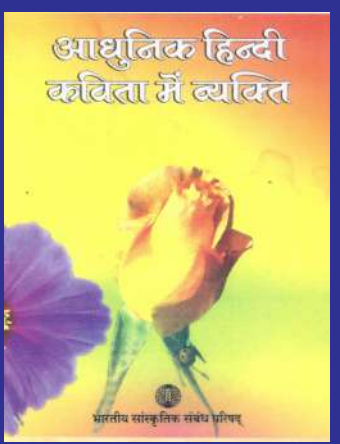

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका